निरुक्त कोश

वाचना-प्रमुख
आचार्य तुलसी

प्रधान-संपादक
युवाचार्य महाप्रज्ञ

संपादक
साध्वी सिद्धप्रज्ञा
साध्वी निर्वाणश्री

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

निरुक्त कोश

साध्वी सिद्धप्रज्ञा
साध्वी निर्वाणश्री

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

आर्थिक सौजन्य :
रामपुरिया चेरिटेबल ट्रस्ट
कलकत्ता

प्रबन्ध-सम्पादक :
श्रीचन्द रामपुरिया
निदेशक :
आगम और साहित्य प्रकाशन
(जैन विश्व भारती)

प्रथम संस्करण : १९८४

पृष्ठांक : ४००

मूल्य : ४०.००

मुद्रक :
मित्र परिषद् कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से स्थापित
जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं (राजस्थान)

NIRUKTA KOŚA

Vācanā Pramukha
ĀCĀRYA TULSĪ

Chief Editor
YUVĀCĀRYA MAHĀPRAJÑA

Editors

Sādhvī Siddhaprajñā
Sādhvī Nirvāṇaśrī

JAINA VISHVA BHARATI
LADNUN (RAJASTHAN)

स्वकथ्य

प्रस्तुत ग्रन्थ आगम कल्पवृक्ष की एक उपशाखा है। जैसे-जैसे समय बीता, वैसे-वैसे आगमवृक्ष का विस्तार होता गया। आगम शब्दकोश की कल्पना आगम सपादन कार्य के साथ-साथ हुई थी, किन्तु उसकी क्रियान्विति उसके पचीस वर्षों के बाद हुई। इस कार्य के लिए हमने शताधिक ग्रन्थो का चयन किया और वह कार्य प्रारम्भ हो गया। इस विशाल कार्य मे निरुक्त, एकार्थक शब्द, देशी शब्द आदि का पृथक् वर्गीकरण किया गया। इस आधार पर उस महान् कोश मे से प्रस्तुत कोश का अवतरण हो गया। इस अवतरण कार्य मे अनेक साध्वियो, समणियो और मुमुक्षु बहिनो ने अपना योग दिया है। इसे कोश का रूप दिया है **साध्वी सिद्धप्रज्ञा** और **साध्वी निर्वाणश्री** ने। मुनि दुलहराज की श्रम-सयोजना और कल्पना ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह एक सुखद सयोग है कि आगम शब्दकोश तथा उसकी शाखा-विस्तार का सारा कार्य महिला जाति के द्वारा सपन्न हुआ है।

वैदिक और बौद्ध साहित्य मे निरुक्त अथवा एकार्थक शब्दो पर कार्य हुआ है, किन्तु जैन आगम साहित्य पर इस प्रकार का कार्य नही हुआ था। समीक्षात्मक और तुलनात्मक दृष्टि से इसमे कार्य करने का पर्याप्त अवकाश है, फिर भी प्रारंभिक स्तर पर जिस सामग्री का संकलन हुआ है वह कम मूल्यवान् नही है।

जिन-जिन व्यक्तियो ने इस कार्य में अपना योग दिया है, उन्हे साधुवाद और उनके लिए मंगल भावना है कि उनकी कार्य-क्षमता उत्तरोत्तर बढ़े और समग्र आगम शब्दकोश की सपन्नता मे उनका कर्तृत्व और अधिक निखार पाए।

लाडनूं
२१-१-८४

—आचार्य तुलसी
—युवाचार्य महाप्रज्ञ

प्राक्कथन

छह् वेदाङ्गों के अन्तर्गत निरुक्त को एक विशेष स्थान प्राप्त है। प्राचीन भारत में निरुक्तों की एक लंबी परंपरा थी। इस क्षेत्र में चौदह प्रयास हुए थे, जिनमे आज हमारे सामने केवल अंतिम प्रयास ही भगवान् यास्क के निरुक्त के रूप में उपलब्ध है।

आचार्य यास्क ने निर्वचन के कुछ ठोस सिद्धान्त बताए हैं जिनका संक्षिप्त उल्लेख करते हुए हम प्रस्तुत ग्रंथ से उदाहरण देकर उन्हें स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

१. जिन शब्दो में उदात्त आदि स्वर एवं व्याकरण से सिद्ध परिवर्तन अर्थ के अनुकूल हों तथा उचित धातु के विकारों से युक्त हो, उन शब्दों का निर्वचन उस प्रकार से ही करें। यथा—अंगतीत्यङ्गम्। अङ्ग शब्द गत्यर्थक अम् धातु से निष्पन्न है।

२. जब स्वर तथा व्याकरण की प्रक्रिया अर्थ की व्याख्या के अनुकूल न हो तथा व्याकरण सिद्ध धातु के विकार आदि उपलब्ध न हों, उस परिस्थिति मे मात्र अर्थ के आधार पर ही निर्वचन करें। इसमे कृत्, तद्धित, धातु, समास आदि किसी भी वृत्ति का उपयोग करें। व्याकरणशास्त्र में शब्द की प्रधानता है जबकि निरुक्तशास्त्र अर्थ-प्रधान होता है। यथा—रुक्ख। रुत्ति पुहवी खत्ति आगास तेसु दोसु वि जहा ठिया तेण रुक्खा।

३. यदि कोई वृत्ति उपलब्ध न हो तो उस शब्द के किसी अक्षर या वर्णमात्र के आधार पर निर्वचन करें। निर्वचन तो अवश्य करें ही, व्याकरण प्रक्रिया का आदर न करें—(न सस्कारमाद्रीयेत)। जितनी भी वृत्तियां हैं वे सब सशयग्रस्त ही हैं—(विशयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति)। यथा—खेल। 'खे ललणाओ खेलो'—जो खे/शून्य मे घूमता है, वह खेल/श्लेष्म है।

४. प्रकरण से विविक्त किसी पद का निर्वचन न करें। किसी शब्द के अर्थ का निर्धारण प्रकरण की अपेक्षा से करना चाहिए। प्रकरण भेद से शब्द के अर्थ मे बहुधा परिवर्तन होना स्वाभाविक है। जिस पद का व्याकरण

अवगत न हो, उसका निर्वचन प्रकरण या परिचायक किसी अन्यपद के आधार पर किया जा सकता है। इसीलिए यास्क ने कहा है—नैकपदानि निर्ब्रूयात्। यथा भ्रात, भवान्त, भयान्त, भजन्त, भदन्त, भात, भ्राजन्त आदि सभी शब्दो का प्रकरण से भगवान् अर्थ किया गया है।

५. भाषा की स्वच्छद प्रवृत्ति को ध्यान मे रखना आवश्यक है। नैरुक्त के लिए यह आवश्यक है कि वह शब्द-प्रयोग मे लोगो की सामान्य प्रवृत्तियो से परिचित रहे। यथा—पवा। 'पिबिस्सति पेहियादि सा पवा'—जहा पथिक पानी पीते है, वह प्याऊ है।

६. नैरुक्त को व्याकरणशास्त्र से अभिज्ञ होते हुए भी वैयाकरण नहीं होना चाहिए। यथा—जुवाण। 'यौवनस्थोऽहमित्यात्मान मन्यते य. भवति जुवाणो। व्याकरण शास्त्र के ज्ञाता होते हुए भी यहा चूर्णिकार ने किसी प्रकार की धातु का निर्देश नही किया है।

७. शब्दो की प्रवृत्ति किसी अर्थ मे सर्वत्र व्युत्पत्ति के अनुसार नही होती है। सामान्य नियम के अनुसार पदो के अर्थ विकसित होते है। यथा—शूर। 'शवत्यसौ युद्ध मुचति वा तमिति शूर'—जो युद्ध मे शक्ति-प्रयोग करता है, वह शूर है। यहा 'मुच्' धातु का 'शू' धातु से कोई सबध नही है।

पाणिनी से पूर्व युग मे निरुक्तशास्त्र के प्रति विद्वानो मे विशेष आदर था। प्रारभिक काल मे निरुक्तशास्त्र का विषय केवल वैदिक देवविद्या की सेवा करना था। यास्क ने देव शब्द के निर्वचन द्वारा देवताओ के स्वरूप की व्याख्या इस प्रकार की है—'देवदानात् वा, दीपनात् वा, द्योतनात् वा, द्युस्थानो भवतीति वा। इसी प्रकार शाकपूणि के अनुसार अग्नि देवता का निरूपण तीन धातुओ से किया गया है। इ धातु से अ, अञ्ज् या दह् धातु से ग, नी धातु से नि गृहीत है। अग्निदेवता इन तीन क्रियाओ को करता है अतः इसे देवता कहा गया है। इन निर्वचनो द्वारा वेदो मे वर्णित देवताओ के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। वैदिक देवताओ पर कई पाश्चात्य विद्वानो ने काफी ऊहापोह किया है। निरुक्तशास्त्रो द्वारा भी हम देवताओ के सही रूप को हृदयगम कर सकते हैं। परन्तु आगे चलकर इसका मुख्य उद्देश्य भाषाशास्त्रीययोग मे परिणित हो गया। यद्यपि वह सदैव अर्थ-प्रधान ही रहा, न कि व्याकरण की तरह शब्द-प्रधान।

यास्क के पश्चाद्वर्ती आचार्यों में बृहद्देवता के प्रणेता आचार्य शौनक का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने निर्वचन के क्षेत्र में यास्क के कार्यों को आगे बढ़ाया है। वे देवताओं के स्वरूप निरूपण मे निरुक्तशास्त्र की उपयोगिता एवं अनिवार्यता इतनी अधिक मानते थे कि निर्वचन द्वारा देवताओ के स्वरूप का जिज्ञासु व्यक्ति चाहे दुष्कर्म करनेवाला ही क्यो न हो वह ब्रह्मरूप का साक्षात्कार करता है। शौनक के मत में सभी नामशब्द क्रिया-निष्पन्न हैं। (सर्वाण्येतानि नामानि कर्मतस्त्वाह शौनक:।) शब्द में जितनी भी धातुओ के चिह्न तथा अभिधेय अर्थ मिलें उतनी ही धातुओं से उस शब्द का निर्वचन करना चाहिए। यथा—कुशल। 'कुसे लुणातीति कुसलो।' 'कुच्छिते सलतीति कुशलं।'

शौनक के अनुसार शब्द पांच प्रकार के होते हैं—

१. धातु से उत्पन्न (कृदन्त)
२. धातु से उत्पन्न शब्द के द्वारा उत्पन्न (तद्धित)
३. समस्त पद
४. वाक्य से निष्पन्न (इतिहास—इति ह आस)
५. अनवगत—जिसका अर्थ नि:संदिग्ध रूप से ज्ञात नही हो।

शौनक के अनुसार निर्वचन करने मे इन पांच बिंदुओ को ध्यान में रखना चाहिए —

१. शब्द का रूप
२. शब्द का अर्थ
३. व्युत्पत्ति
४. शब्द का आधार (धातु आदि)
५. शब्द के आधार मे प्रत्ययजन्य विकार।

ये पांच बिंदु अनेक अर्थो को प्रगट कर सकते हैं। निर्वचन का उद्देश्य शब्दों के अज्ञात अर्थ को स्पष्ट करना है।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि यास्क पाणिनी से पूर्ववर्ती हैं। उनकी निरुक्त पद्धति के कुछ निदर्शन प्राकृत एवं पालि साहित्य में उपलब्ध हैं। यद्यपि ये निर्वचन उस समय में प्रचलित अर्थों के आधार पर किए गए हैं।

उदाहरणार्थ—इन्द्रवाचक शब्दो का निर्वचन संयुक्त-निकाय में इस प्रकार किया गया है—

चूंकि पूर्व मनुष्यभव मे उसका नाम मघ था, अतः वर्तमान (शक्र) भव मे उसे मघवा कहा जाता है। उसने पुरो—नगरों मे दान दिया था (पुरे दानमदासित्) इसीलिए उसे पुरिंदद (पुरदर का तद्भव) कहा जाता है। सत्कारपूर्वक दान देने से वह सक्क कहलाता है। आवसथों का दान दिया था इसीलिए वासव कहा गया है। एक मुहूर्त मे सहस्र अर्थों का चिंतन करता था, अतः सहस्सक्ख कहा गया।

अब हम इन्द्र वाचक शब्दो के निर्वचन प्राकृत साहित्य के आधार पर दे रहे है—महामेघ जिसके वशवर्ती हैं, वह मघवा है। जो असुरो के पुरो/नगरो का विदारण करता है, वह पुरदर है। जो शक्तिसपन्न है, वह शक्र है। जो पाक नामक शत्रु को शासित करता है, वह पाकशासन है। जिसके हजार आखें अर्थात् पाच सौ मत्री है, वह सहस्राक्ष है।

उपर्युक्त निरुक्तो पर विचार करने से यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि दोनो ही परपराए लौकिक मान्यताओ का प्रतिनिधित्व कर रही है।

पालि साहित्य मे निर्वचन के आधार पर कुछ शब्दो के अर्थों में प्रचलित अर्थों से सर्वथा विपरीत अर्थों का प्रतिपादन किया गया है (उदाहरणार्थ—अरसरूप, णिब्भोग, अकिरियवाद, उच्छेदवाद, जेगुच्छी, वेनयिक, तपस्सी, अपगब्भ शब्दो को, जो निदार्थक थे, प्रशस्त अर्थ मे परिणत किया गया। अरसरूप का अर्थ रूखासूखा है, परन्तु उसका प्रशस्य अर्थ रूप, रस के प्रति अनासक्त भाव के रूप मे किया गया है। इसी प्रकार 'णिब्भोग' का अर्थ सत्वहीन व्यक्ति था। उसे बदलकर सभी प्रकार के भोगो में अनासक्त—इसे ग्रहण किया गया है। इसी प्रकार अन्य शब्दो के निन्दार्थक अर्थों को प्रशसित अर्थ मे परिवर्तित किया गया है। इस प्रकार के प्रयोग कही-कही प्रस्तुत ग्रथ मे भी देखे जा सकते हैं—यथा—उन्मार्ग। 'उम्मग्गणं उम्मग्गो (प ४७)। जो उत्/ऊचा मार्ग है वह उन्मार्ग/प्रशस्त मार्ग है।

जैन शास्त्रकारो ने निरुक्तो के माध्यम से विशेष-विशेष शब्दो का निरुक्त कर निर्वचन विद्या की जो सेवा की है, उसका एक स्पष्ट रूप प्रस्तुत निरुक्त-कोश से हमारे सामने उभर आता है। इस कोश के निर्माण की योजना आचार्यश्री व युवाचार्यश्री द्वारा की गई, जिसको साध्वी-द्वय ने मूर्तरूप

प्रदान किया है। यह कार्य अत्यन्त सराहनीय है। इसमे कितने परिश्रम, चिंतन की अपेक्षा थी, उसकी कल्पना पाठक स्वयं ही करेगा। हमारे संघ में अनेक विद्वान् एवं विदुषियों का निर्माण आचार्यश्री ने किया है, जैसा अन्यत्र प्रायः दुर्लभ है। शोधकार्य में निरत इतना विशाल विद्वन्मंडल विश्वविद्यालयों मे भी दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रभूत अर्थसाध्य शोधकार्य का निःशुल्क सम्पादन तेरापंथ धर्म मे ही संभव है।

प्रस्तुत कोष का सम्पादन कर साध्वीश्री सिद्धप्रज्ञाजी एवं साध्वीश्री निर्वाणश्रीजी ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य को संपन्न किया है। मुझे पूरा विश्वास है कि सुधी समाज मे यह ग्रन्थ आदर प्राप्त करेगा।

डा० नथमल टाटिया
डाइरेक्टर—शोध विभाग
जैन विश्व भारती

प्रस्तुति

प्रेरणा और कार्यारम्भ

युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के वाचना-प्रमुखत्व और युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के निर्देशन मे आगम-सपादन के क्षेत्र मे तीन दशको से निरन्तर कार्य हो रहा है। उसी शृंखला मे विक्रम सवत् २०३७ चैत्रशुक्ला त्रयोदशी के दिन 'आगमकोष' के निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारभ हुआ। इस कार्य मे अनेक साध्विया, समणिया और मुमुक्षु बहिनें व्यापृत हुईं।

'आगम-कोश' का निर्माण मुख्य था, किन्तु इसके अन्तर्गत अनेक उप-कोशो का निर्माण कार्य भी हाथ मे ले लिया गया। वे कोश इस प्रकार हैं—

१. एकार्थक कोश
२. निरुक्त कोश
३. देशीशब्द कोश।

कार्य द्रुतगति से चला और लगभग तीन वर्षों की अल्पावधि मे इन तीन कोशो के लिए पर्याप्त सामग्री संकलित कर ली गई। यद्यपि इन तीन वर्षों की अवधि मे कार्य करने वालो की सख्या मे एकरूपता नही रही, पर कार्य की निरन्तरता सदा बनी रही। इसी कारण से लगभग सौ ग्रथो (आगम तथा आगमेतर) से सामग्री का संचयन करने मे सफल हो सके। इनमे मूल आगम, निर्युक्तिया, भाष्य, चूर्णिया, टीकाए तथा अन्यान्य ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं।

निरुक्त कोश मे काम आने वाले हजारो शब्दो के भिन्न-भिन्न कार्ड तैयार कर लिए। इस कार्य को अतिम रूप देने से पूर्व सभी ग्रन्थो के निरुक्त-स्थलो का पुनर्निरीक्षण करना अनिवार्य था। बड़ी तत्परता और उत्साह के साथ दो मास की अवधि में यह कार्य सम्पन्न कर लिया गया। इससे मूल निरुक्त पाठ, उनके प्रमाण-स्थल और अधिक प्रामाणिक हो गए। यत्र-तत्र अवशिष्ट निरुक्त भी संगृहीत कर लिए गए। अब कार्य को अतिम रूप देकर

आवश्यक था। पर अभी निरुक्तो के हिन्दी अनुवाद का कार्य अवशिष्ट था। उसे पूरा करना जरूरी था। सभी ग्रंथों के संदर्भ देख-देख कर उन शब्दों का हिन्दी अनुवाद हो सके, इसलिए अब अंतिम दायित्व हम दो साध्वियों को सौंपा गया। हमने यह कार्य प्रारम्भ किया। हमारे सम्पूर्ण कार्य का निरीक्षण मुनिश्री दुलहराजजी ने किया। उन्होने लम्बी अवधि तक अपने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों को गौण कर हमारा मार्ग-दर्शन किया। इस प्रयत्न के बाद भी कुछेक शब्द ऐसे थे जिनके अर्थ-निर्धारण मे मूल ग्रथ तथा सहायक ग्रन्थ अपर्याप्त सिद्ध हो रहे थे। ऐसे शब्दो के अर्थ-निर्धारण में युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने हमे समय प्रदान किया और हमारा अवरोध समाप्त हो गया। वे कुछेक शब्द ये थे— बादर, वडार, सेना आदि-आदि।

निरुक्तकोश की रूपरेखा

निरुक्त कोश में मूल शब्द प्राकृत भाषा के हैं। वे मोटे व गहरे टाइप मे क्रमाक से अनुगत हैं। उनके सामने कोष्ठक में सस्कृत छाया दी गई है। देश्य शब्दो का सस्कृत रूपान्तर नहीं होता। ऐसे देशी शब्दो को हमने कोष्ठक मे 'दे' से निर्दिष्ट किया है। कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनका एक अश देशी है और शेष सस्कृत का है। ऐसे शब्दो की छाया मे देशी अंशों को ' ' इस चिन्ह के अन्तर्गत दिया है। मूल शब्द और सस्कृत छाया के निर्देश के पश्चात् उसका निरुक्त गहरे छोटे अक्षरो मे निर्दिष्ट है। निरुक्त प्राकृत और संस्कृत— दोनो भाषाओ मे है। निरुक्त के सामने कोष्ठक मे उसके प्रमाण-स्थल का निर्देश है। सभी प्रमाण-स्थलो का निर्देश सक्षिप्तिकरण मे किया गया है। उनकी विस्तृत जानकारी 'प्रयुक्त ग्रन्थ-संकेत सूचि' के अन्तर्गत उपलब्ध है। एक शब्द मे, एक ही स्थल के दो भिन्न-भिन्न निरुक्तो का प्रमाण-स्थल का निर्देश एक साथ दिया गया है। एक ही शब्द मे जहां अनेक प्रकार के निरुक्त उपलब्ध हैं, उनका निर्देश ग्रथ के कालक्रम से किया गया है। सभी निरुक्तो, मूलगत तथा पाद-टिप्पणगत, का हिन्दी अनुवाद किया गया है। जहां एक ही भाव के संवादी दो या अधिक निरुक्त हैं, केवल वाक्य रचना मे भेद अथवा अर्थ की स्पष्टता मात्र है, ऐसे निरुक्तों का अनुवाद एक साथ दिया गया है। इसके लिए 'आवस्सग', 'ओहि', 'कल्याण', 'कुंभ' आदि शब्द द्रष्टव्य हैं।

ऐसे शब्द जिनका प्राकृत रूप एक होने पर भी संस्कृत रूपान्तर भिन्न है, उनका अनुक्रम एक साथ न होकर अलग-अलग है, जैसे—आस (अश्व), आस (आस्य)। कुछ ऐसे शब्द, जिनका प्राकृत और सस्कृत रूप एक है, पर

अर्थ में भिन्नता है, उनका अनुक्रम अलग-अलग है, जैसे—आदाण (१७१), आदाय (१८०), आयाण (२१०), आयाण (२११) आदि। एक ही तात्पर्यार्थ के अनेक शब्द, जिनका प्राकृत और संस्कृत रूप भिन्न-भिन्न है, उनका अनुक्रम भी एक साथ नहीं है, जैसे—अरिह (अर्हत्), अरहंत (अरथान्त), आवस्सय (आवश्यक), आवासय (आवासक) आदि।

निरुक्त कोश को समृद्ध बनाने की दृष्टि से पाद-टिप्पणों में अनेक निरुक्तों का समावेश किया गया है। मूल अर्थ को स्पष्ट करने के लिए यत्र-तत्र आगम के व्याख्या ग्रन्थो के संदर्भ हिन्दी अनुवाद सहित दिए गए हैं, जैसे—आयरिय, आवासय, आसायणा आदि। आगम व्याख्या ग्रन्थों के अतिरिक्त इस ग्रन्थ मे संस्कृत, पाली के अनेक कोशों तथा व्याकरणों का उपयोग पाद-टिप्पण मे किया गया है। मूल निरुक्त के संवादी तथा भिन्नार्थ वाले अन्यान्य निरुक्तो का निर्देश किया गया है। अर्थ की स्पष्टता के लिए अनेक स्थलों मे धातुओं का निर्देश भी है।

निरुक्तों के प्रकार

वैयाकरणाचार्यों ने निरुक्त के पांच प्रकार बताए हैं। वे सभी प्रस्तुत ग्रथ मे सोदाहरण उपलब्ध हैं, यथा—

१. वर्णागम—वे निरुक्त जिनमें वर्ण का आगम होता है। यथा—हंस। 'हसतीति हसः।'
२ वर्णविपर्यय—वे निरुक्त जिनमे वर्ण का विपर्यय होता है। यथा—सिंह। 'हिनस्तीति सिंहः।'
३. वर्णविकार—वे निरुक्त जिनमें वर्ण मे विकार उत्पन्न होता है। यथा—विपाक। 'विपचनं विपाकः।'
४ वर्णनाश—वे निरुक्त जिनमें वर्ण नष्ट होते हैं। यथा—ओदन। उदत्ति तमिति ओदनम्।
५. धात्वर्थातिशय—वे निरुक्त जो धातु के अर्थ की विशिष्टता प्रकट करते हैं। यथा—भ्रमर। 'भ्रमति च रौति च भ्रमरः।'

उपर्युक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त प्रस्तुत कोश में संगृहीत निरुक्तों को चार भागों मे विभक्त किया जा सकता है—

१. व्युत्पत्तिजन्य
२. पारिभाषिक

३. विशेषणात्मक

४. वृत्यात्मक

व्योत्पत्तिक—व्युत्पत्तिजन्य निरुक्त के दो प्रकार हैं। एक वे निरुक्त हैं जो सपूर्णपद की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं और एक वे हैं जो अक्षरो की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। संपूर्णपदव्याख्यात्मनिरुक्त, जैसे—खण। 'खीयते इति खणो—जो क्षीण होता है, बीतता है, वह क्षण है।

अक्षरव्याख्यात्मकनिरुक्त प्रत्येक अक्षर की अलग-अलग व्याख्या करते हुए सपूर्णपद का एक विशेष अर्थ प्रस्तुत करते हैं, जैसे—खध। स्कन्दन्ति—शुष्यन्ति धीयन्ते च पोष्यन्ते च पुद्गलानां विघटनेन चटनेन स्कन्धाः। जो पुद्गलो के विघटन से क्षीण और संघटन से पुष्ट होते हैं, वे स्कन्ध हैं।

पारिभाषिक— इस श्रेणी मे उन सभी निरुक्तों का समाहार किया जा सकता है जो एक परिभाषा प्रस्तुत करते हैं। जैसे—खेयण्ण। 'खेद. अभ्यासस्तेन जानातीति खेदज्ञ.'—जो खेद/अभ्यास से आत्मा को जानता है, वह खेदज्ञ है। जो खेद/जन्ममरण के श्रम को जानता है, वह खेदज्ञ है।

विशेषणात्मक—ऐसे शब्द जिनमे विशेषण जोडकर विशेष अर्थ का निर्धारण किया जाता है, वे विशेषणात्मक निरुक्त हैं, जैसे—कुकुटी। 'कुत्सिता कुटी कुकुटी'—जो कुत्सित पदार्थों से भरा हुआ कुटीर है, वह कुकुटी/शरीर है।

वृत्यात्मक—कुछ निरुक्त समास, तद्धित, कृदन्त आदि से निष्पन्न हैं। समास से निष्पन्न होने वाले निरुक्तो मे तृतीया, पचमी, सप्तमी आदि विभक्तियो के समस्त-पदो की प्रधानता है। 'क्षत्रेण धर्मेण जीवन्ति इति क्षत्रिया.'—जो क्षात्रधर्म से जीवित रहते हैं, वे क्षत्रिय हैं। तद्धित से निष्पन्न निरुक्त, जैसे—आदित्य आदौ भव आदित्य·।

कृदन्त जन्य निरुक्तों के लिए परिशिष्ट १ द्रष्टव्य है।

निरुक्तो की परम्परा बहुत प्राचीन है, जिसका निर्देश भूमिका में किया गया है। मूल आगमग्रन्थो—सूत्रकृताग, भगवती, नदी, अनुयोगद्वार आदि मे भी इसके बीज उपलब्ध होते हैं, जैसे—आणमइ-पाणमइ तम्हा पाणे (भगवती २/१५)। व्याख्याग्रथो मे निरुक्तो की दृष्टि से उत्तराध्ययनचूर्णि सर्वाधिक समृद्ध प्रतीत होती है।

इस प्रकार प्रस्तुत कोश में १७५४ निरुक्त संगृहीत हैं। इसमें दो परिशिष्ट हैं। पहले परिशिष्ट में कृदन्तपरक निरुक्त हैं। जैसे—गमनं गतिः। विचयनं विचत्ती। जननं जातिः। ये सभी निरुक्त अनट् प्रत्यय से निष्पन्न हैं। वाक्यरचना संक्षिप्त है। इनकी एकरूपता शृंखलाबद्ध चले, अनुक्रम का सौंदर्य सुरक्षित रह सके, इस दृष्टि से इन्हें मूल निरुक्तो से पृथक् परिशिष्ट-१ में रखा गया है। ऐसे निरुक्तों के हिन्दी अनुवाद की अपेक्षा इसलिए महसूस की गई कि चूर्णिकारो व टीकाकारो के विशिष्ट मन्तव्य को मात्र व्युत्पत्ति से नहीं समझा जा सकता। इसके साक्ष्य में एक निरुक्त का निदर्शन पर्याप्त होगा। यथा—अवधानं अवधिः। जो समाधान देता है, वह अवधिज्ञान है अथवा जो एकाग्रता से उत्पन्न होता है, वह अवधिज्ञान है।

दूसरा परिशिष्ट तीर्थंकरो के नामो के अन्वर्थ निरुक्त का है। इससे चौबीस तीर्थंकरो के नामकरण की विशेष जानकारी प्राप्त होती है।

इस प्रकार प्रस्तुत कोश में १७५४+२०८+२४=१९८६ निरुक्त हैं। इनके पारायण से मूलशब्दगत अर्थगरिमा को पकड़ने में सुविधा होगी और स्वज्ञान वृद्धि के साथ-साथ प्राचीन ज्ञान वैभव को आत्मसात् करने में पाठक सक्षम होगा।

सबसे पहले हम आचार्यश्री तथा युवाचार्यश्री के प्रति श्रद्धावनत हैं और यह मानती हैं कि इसमे जो कुछ है, वह सारा उन्हीं का अवदान है। हम तो मात्र इसके संचयन की निमित्त बनीं और एक ग्रन्थ रूपायित हो गया। हम बार-बार उनके श्रीचरणो मे अपनी कोमल अभिवंदनाएं प्रस्तुत करती हैं और आगे के लिए और अधिक सक्षम होकर कार्य मे व्यापृत होने की कामना करती हैं।

हम साध्वीप्रमुखा महाश्रमणी कनकप्रभाजी के हार्दिक वात्सल्य और स्नेह की ऋणी हैं। उनकी सतत प्रेरणा के कारण ही हमने कार्य को करने का संकल्प किया और उनके आशीर्वाद से सफलतापूर्वक उसे संपन्न किया। हम उनके चरणो मे श्रद्धावनत हैं।

हम मुनिश्री दुलहराजजी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हैं जिन्होंने सतत हमारा सफल मार्गदर्शन किया। अनेकान्त शोधपीठ के निदेशक डॉ० नथमल टाटिया के सहयोग को भी नहीं भुलाया जा सकता जिन्होंने समय-समय पर अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव देकर और प्राक्कथन लिखकर इस ग्रंथ के

गौरव को बढ़ाया है। इस ग्रंथ-संपादन में श्रीचंदजी रामपुरिया के भी अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव प्राप्त हुए हैं।

अंत में हम उन सभी साध्वियों, समणियों और मुमुक्षु बहिनों के सहयोग का स्मरण करती हुई, उनके अवदान का मूल्यांकन करती हैं।

आगम कोश कार्य मे संपृक्त साध्वियों, समणियो और मुमुक्षु बहिनों में कुछ साध्वियां और समणियां कोश के लिए उपयुक्त शब्दों का चयन करवातीं और उनका भिन्न-भिन्न कोशो के लिए विभाग निर्दिष्ट करतीं। समग्र साधिकाओं में से कुछ निरन्तर इस कार्य मे व्यापृत रही हैं और कुछ ने सावधिक समय तक सहयोग किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

निर्देशिका	ग्रन्थ
१. साध्वी कनकश्री	निशीथ
२. ,, यशोधरा	व्यवहार
३. ,, अशोकश्री	आचारांग, दशाश्रुतस्कन्ध, पंचाशक, सूर्यप्रज्ञप्ति
४. ,, जिनप्रभा	सूत्रकृतांग (प्रथम श्रुतस्कन्ध)
५. ,, कल्पलता	दशवैकालिक
६. ,, विमलप्रज्ञा	आवश्यक (द्वितीय भाग), उत्तराध्ययन, प्रज्ञापना, नवीनकर्मग्रन्थ
७. ,, सिद्धप्रज्ञा	सूत्रकृतांग (द्वितीय श्रुतस्कध), स्थानांग, बृहत्-कल्प, पिण्डनिर्युक्ति, प्रज्ञापना
८. ,, निर्वाणश्री	आवश्यक (प्रथम भाग), विशेषावश्यकभाष्य, पञ्चसग्रह, सूत्रकृताग (प्रथमश्रुतस्कंध)
९. समणी कुसुमप्रज्ञा	भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, विपाकश्रुत, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति, अगविज्जा, अनुयोगद्वार, नंदी, प्रश्न-व्याकरण, ओघनिर्युक्ति, जीतकल्पभाष्य, प्राचीनकर्मग्रन्थ, प्रवचनसारोद्धार

विशेष सहयोगी—

१. समणी स्मितप्रज्ञा	४. मुमुक्षु मंजु
२. ,, उज्ज्वलप्रज्ञा	५. ,, राकेश
३. ,, सुप्रज्ञा	६. ,, निरंजना

सहयोगी—

1. साध्वी शारदाश्री
2. „ जगत्प्रभा
3. „ शशिकला
4. „ कमलयशा
5. साध्वी अमितश्री
6. „ मर्यादाश्री
7. „ प्रज्ञाश्री
8. „ गवेषणाश्री
9. समणी स्थितप्रज्ञा
10. „ मधुरप्रज्ञा
11. „ मुदितप्रज्ञा
12. „ चिन्मयप्रज्ञा
13. समणी अक्षयप्रज्ञा
14. „ सहजप्रज्ञा
15. मुमुक्षु पुखराज
16. „ ज्योति

विनयावनत:
साध्वी सिद्धप्रज्ञा
साध्वी निर्वाणश्री

१-२-८४
बीदासर

प्रयुक्त ग्रन्थ-संकेत सूची

१. अंवि— अंगविज्जा (प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, बनारस, सन् १९५७)

२. अचि— अभिधान चिंतामणि कोश (श्री जैन साहित्य वर्धक सभा, अहमदाबाद वि०सं० २०२५)

३. अनुद्वा— अनुयोगद्वार (हस्तलिखित)

४. अनुद्वाचू— अनुयोगद्वारचूर्णि (श्री ऋषभदेवजी केसरीमल श्वे. संस्था रतलाम, सन् १९२८)

५. अनुद्वामटी—अनुयोगद्वार मलधारीय टीका (श्री केसरबाई ज्ञानमंदिर पाटण, सन् १९३९)

६. अनुद्वाहाटी—अनुयोगद्वार हारिभद्रीया टीका (सेठ देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, मुबंई, सं. १९७३)

७. आचू— आचारांग चूर्णि (श्री ऋषभदेवजी केसरीमल श्वे. संस्था रतलाम, सन् १९४१)

८. आटी— आचारांग टीका (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् १९७८)

९. आनि— आचारांगनिर्युक्ति (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् १९७८)

१०. आप्टे— आप्टे संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, (प्रसाद प्रकाशन पूना, सन् १९५७)

११. आवचू १— आवश्यकचूर्णि १ (श्री ऋषभदेवजी केसरीमल श्वे. संस्था रतलाम, सन् १९२८)

१२. आवचू २— आवश्यकचूर्णि २ (वही, सन् १९२९)

१३. आवनि— आवश्यकनिर्युक्ति (वही, सन् १९२९)

१४. आवनिदी— आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका (विजयदानसूरीश्वर जैन ग्रन्थ माला, सूरत, सन् १९३९)

१५. आवमटी— आवश्यक मलयगिरिटिका (आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९२८)

१५. आवहाटी १–आवश्यक हारिभद्रीया टीका १ (भैरूलाल कन्हैयालाल कोठारी धार्मिक ट्रस्ट, बंबई, संवत् २०३८)

१७. आवहाटी २–आवश्यक हारिभद्रीया टीका २ (वही)

१८. उचू— उत्तराध्ययनचूर्णि (देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सन् १९३३)

१९. उपाटी— उपासकदशाटीका (श्री हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय, कोटा, सन् १९४६)

२०. उशाटी— उत्तराध्ययन शान्त्याचार्यटीका (देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, स० १९७३)

२१. ओटी— ओघनिर्युक्तिटीका (आगमोदय समिति, बम्बई सन् १९१९)

२२. औटी— औपपातिकटीका (पंडित दयाविमलजी ग्रन्थमाला, द्वितीय संस्करण, वि०सं० १९९४)

२३. काल— कालूस्मृति ग्रन्थ (श्री कालूगणी जन्म शताब्दी समारोह समिति, छापर, सन् १९७७)

२४. जंटी— जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीका (नगीनभाई घेलाभाई झवेरी, बम्बई, सन् १९२०)

२५. जीटी— जीवाभिगमटीका (देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सं० १९९५)

२६. जीतभा— जीतकल्प भाष्य (बबलचंद्र केशवलाल मोदी, अहमदाबाद, सं० १९९४)

२७. ज्ञाटी— ज्ञाताधर्मकथाटीका (श्री सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, सूरत, सन् १९५२)

२८. दअचू— दशवैकालिक अगस्त्यसिंह स्थविर चूर्णि (प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, सन् १९७३)

२९. दजिचू— दशवैकालिक जिनदास चूर्णि (श्री ऋषभदेव केसरीमल श्वे. संस्था, रतलाम, सन् १९३३)

३०. दटी— दशवैकालिक टीका (देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थांक ४७)

३१. दनि— दशवैकालिक निर्युक्ति (प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, सन् १९७३)

३२. दभा— दशवैकालिक भाष्य (देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थांक ४७)

३३. दश्रुचू— दशाश्रुतस्कन्ध चूर्णि (पंन्यास श्री मणिविजयजी गणि ग्रंथ-माला, भावनगर सं० २०११)

३४. धातु— धातुपारायणम् (जैन श्वे० मू० संघ, अहमदाबाद, सन् १९७१)

३५. नं— नंदी सूत्र (हस्तलिखित)

३६. नंचू— नंदी चूर्णि (प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, बनारस, सन् १९६६)

३७. नंटि— नंदी टिप्पणक (वही, सन् १९६६)

३८. नंटी— नंदी टीका (वही, सन् १९६६)

३९. नक— नवीन कर्मग्रन्थटीका (जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सन् १९३४)

४०. नि— निघण्टु तथा निरुक्त (मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९६७)

४१. निचू— निशीथ चूर्णि (सन्मति ज्ञानपीठ, दूसरा संस्करण, सन् १९८२)

४२. निभा— निशीथ भाष्य (वही, सन् १९८२)

४३. पटी— पंचाशकप्रकरणटीका (ऋषभदेव केसरीमल श्वे० संस्था, रतलाम, सन् १९४१)

४४. पंसंटी— पंचसंग्रहटीका (श्री खुबचन्द पानचंद, डभोई, (गुजरात सन् १९३७)

४५. पा— पालि इंग्लिश डिक्शनरी (पालि टेक्स्ट सोसायटी, लंदन, सन् १९७२)

४६. पिटी— पिण्डनिर्युक्तिटीका (देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सन् १९१८)

४६. प्रज्ञाटी— प्रज्ञापनाटीका (आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९१८)

४७. प्रटी— प्रश्नव्याकरणटीका (वही, सन् १९१९)

४८. प्रसाटी— प्रवचनसारोद्धार टीका (देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, द्वितीय सस्करण, स० १९८१)

४९. प्रा— प्राकृत व्याकरण (हेमचन्द्र) (जैन दिवाकर दिव्यज्योति कार्यालय, ब्यावर, सं० २०१६)

५०. प्राकटी— प्राचीन कर्मग्रन्थ टीका (जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० स० १९७२)

५१. बृचू— बृहत्कल्पचूर्णि (हस्तलिखित, लाडनू भंडार)

५२. बृटी— बृहत्कल्प टीका (जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सन् १९३६)

५३. बृभा— बृहत्कल्प भाष्य (वही, सन् १९३६)

५४. भ— भगवती (अगसुत्ताणि भाग २, जैन विश्व भारती लाडनूं सन् १९७४)

५५. भटी— भगवतीटीका १ (आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९१८)
भगवतीटीका २ (ऋषभदेव केसरीमल श्वे० संस्था, रतलाम, द्वितीय सस्करण, सन् १९४०)

५६. राटी— राजप्रश्नीयटीका (गूर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, अहमदाबाद, वि०सं० १९९४)

५७. वा— वाचस्पत्यम् ६ भाग (चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी, तृतीय संस्करण, सन् १९६९)

५८ वि— विसुद्धिमग्ग (वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९६९)

५९. विटी— विसुद्धिमग्गटीका, (वही, सन् १९६९)

६०. विपाटी— विपाक टीका (आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९२०)

६१. विभा— विशेषावश्यकभाष्य (दिव्यदर्शन कार्यालय. अहमदाबाद, वीर सं० २४८९)

६२. विभाकोटी—विशेषावश्यकभाष्य कोट्याचार्यटीका (श्री ऋषभदेव केसरीमल रतलाम, सन् १९३६)

६३. विभाग्रहेटी—विशेषावश्यकभाष्य मलधारीय टीका (दिव्यदर्शन कार्यालय, अहमदाबाद, वीर संवत् २४८९)

६४. व्यभा— व्यवहार भाष्य (वकील केशवलाल प्रेमचन्द, अहमदाबाद, सन् १९२६)

६५. व्यभाटी— व्यवहार भाष्य टीका (वही, सन् १९२६)

६६. शब्द— शब्दकल्पद्रुम ५ भाग, तीसरा संस्करण (चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी, सन् १९६९)

६७. सं— ए कन्साइज इटिमोलोजिकल संस्कृत डिक्शनरी (हुरडलबर्ग, सन् १९६३)

६८. सू— सूत्रकृतांग (अंगसुत्ताणि भाग १, जैन विश्व भारती लाडनूं, सन् १९७४)

६९. सूचू १— सूत्रकृतांगचूर्णि प्रथम श्रुतस्कन्ध (प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी वाराणसी, सन् १९७५)

७०. सूचू २— सूत्रकृतांगचूर्णि द्वितीय श्रुतस्कन्ध (ऋषभदेव केसरीमल श्वे० संस्था, रतलाम, सन् १९४१)

७१ सूटी १— सूत्रकृतांग टीका प्रथम श्रुतस्कन्ध (आगमोदय समिति बम्बई, सन् १९१९)

७२. सूटी २— सूत्रकृतांग टीका, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, (श्री गोडी पार्श्वनाथ जैन ग्रथमाला, सन् १९५३)

७३. सूर्यटी— सूर्यप्रज्ञप्ति टीका (आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९१९)

७४. स्थाटी— स्थानांगटीका (सेठ माणेकलाल चूनीलाल, अहमदाबाद, सन् १९३७)

अनुक्रम

निरुक्त कोश

१. अंग (अङ्ग)

अंगतीत्यंगम् ।[1] (उचू पृ १७५)

जो प्रवृत्ति करता है, वह अंग है ।

अज्यते व्यक्तीक्रियते अस्मिन्नित्यङ्गम् । (आटी प ५)

जिसमे (पराक्रम) व्यक्त किया जाता है, वह अंग है ।

२. अंगण (अङ्गन)

अंगंति तस्मिन्निति अंगनं ।[2] (उचू पृ १५८)

जिसमे घूमा जाता है, वह आगन है ।

३. अंगप्पभव (अङ्गप्रभव)

अङ्गात्—दृष्टिवादादेः प्रभव—उत्पत्तिरेषामिति अङ्गप्रभवानि । (उशाटी प ५)

जो दृष्टिवाद आदि अंगश्रुत से उत्पन्न होते हैं, वे अंगप्रभव/आगम हैं ।

---

१. (क) **अग्—गत्यार्थौ ।** (बा पृ ७२)

(ख) 'अंग' शब्द के अन्य निरुक्त—

अमति बुद्धिमङ्गतीति वा अङ्गम् । (अचि पृ १२७)

जो बढ़ता है, वह अंग है । जो प्रवृत्ति करता है, वह अंग है ।

२. 'अंगण' शब्द का अन्य निरुक्त—

अगि—गतौ । अङ्ग्यते गृहान्निःसृत्य गम्यते अत्र अङ्गणम् । (बा पृ ७५)

कमरे से निकल कर जिसमें घूमा जाता है, वह आंगन (courtyard) है ।

४. अंतग (अन्तक)

अंतं करोतीति अंतकः । (सूचू १ पृ १६२)

जो अन्त करता है, वह अंतक/मृत्यु है ।

५. अंतगर (अन्तकर)

अन्तं भवस्य कुर्वन्तीति अन्तकराः । (अंटी प १५५)

जो भव का अन्त करते हैं, वे अंतकर/मुक्तिगामी हैं ।

६. अंतराय (अन्तराय)

अन्तरा—दातृप्रतिग्राहकयोरन्तर्विघ्नहेतुतयाऽयते गच्छतीत्यन्तरायम् । (उशाटी प ६४१)

दाता और प्रतिग्राहक के अंतरा/मध्य में जो विघ्न बनकर आता है, वह अतराय है ।

७. अंतलिक्ख (अन्तरिक्ष)

अन्तः मध्ये ईक्षा—दर्शनं यस्य तदन्तरीक्षम् ।[1] (भटी प १४३१)

जो (आकाश और पृथ्वी के) मध्य मे देखा जाता है, वह अन्तरिक्ष/आकाश है ।

८. अंतिय (अन्तिक)

अंतेसु गामादीणि वसंतीति अंतिया । (सूचू २ पृ ३५७)

जो ग्राम आदि के अंत मे रहते हैं, वे अंतिक हैं ।

---

१ 'अंतरिक्ष' के अन्य निरुक्त—

अन्तर्मध्ये ऋक्षाण्यस्य द्यावापृथिव्योरन्तरीक्षते वा अन्तरिक्षम् । (अचि पृ ३७)

जिसके मध्य मे ऋक्ष/नक्षत्र होते हैं, वह अतरिक्ष है । जो आकाश और पृथ्वी के बीच देखा जाता है, वह अतरिक्ष है ।

अन्तरा द्यावापृथिव्योः क्षान्तं अवस्थितं भवति । (आप्टे पृ १२५)

जो आकाश और पृथ्वी के बीच अवस्थित है, वह अन्तरिक्ष है ।

९. अंतेवासि (अन्तेवासिन्)

अन्ते—गुरोः समीपे वस्तुं शीलमस्यान्तेवासी। (स्थाटी प २३४)

जो गुरु के अंत/समीप में वास करता है, वह अंतेवासी/शिष्य है।

१०. अंधयार (अन्धकार)

अन्धमिवान्धं चक्षुःप्रवृत्तिनिवर्तकत्वेनार्थात् जनं करोतीत्यन्धकारः। (उशाटी प ५१०)

जो मनुष्य को अन्धे की भांति अंधा कर देता है, वह अंधकार है।

११. अंबर (अम्बर)

अम्बेव—मातेव जननसाधर्म्यादम्बा—जलं तस्य राणाद्—दानादम्बरम्।[1] (भटी प १५३१)

जो अम्बा/माता के सदृश जननधर्मा है, अनेक पदार्थों की उत्पत्ति का कारण है, वह अम्बा/जल है। जो जल का दान करता है, वह अंबर/आकाश है।

१२. अकयण्णु (अकृतज्ञ)

कृतमुपकारं न जानातीत्यकृतज्ञः। (स्थाटी प २७५)

जो किए हुए उपकार को नहीं जानता, वह अकृतज्ञ है।

१३. अकिंचण (अकिञ्चन)

नत्थि जस्स किंचणं सोऽकिंचणो। (दअचू पृ ११)

जिसके पास कुछ भी नहीं है, वह अकिंचन/मुनि है।

१४. अकुय (अकुच)

न कुचतीत्यकुचः।[2] (व्यभा ८ टी प १६)

जो स्पन्दन नहीं करता, वह अकुच है।

---

१ 'अंबर' शब्द के अन्य निरुक्त—

(क) अमन्त्यत्र देवा अम्बरम्—जहां देवता अमन/गमन करते हैं, वह अंबर है।

(ख) अम्बते शब्दायते (इति अम्बरम्)—जो शब्द करता है, वह अंबर है। (अचि पृ ३७)

२. कुच्-स्पन्दने।

१५. अक्कोस (आक्रोश)

आक्रुस्यते यतस्स आक्रोशः । (उचू पृ ७०)

जिससे भर्त्सना की जाती है, वह आक्रोश है ।

१६. अक्ख (अक्ष)

अश्नुत इत्यक्षः । (उचू पृ १३५)

अश्नीते नवनीतादिकमित्यक्षः । (उशाटी प २४७)

जो नवनीत आदि चिकने पदार्थों से व्याप्त होता है, वह अक्ष/धुरा है ।

१७. अक्ख (अक्ष)

असु वावण[1] धाऊओ अक्खो जीवो उ भण्णए णियमा ।
अं वावयए भावे णाणेणं तेण अक्खो त्ति ॥
अस भोयणम्मि[2] अहवा सव्वदव्वाणि भोगमेतस्स ।
आगच्छंती जम्हा पालेइ य तेण अक्खोत्ति ॥

(जीतभा १२, १३)

जो ज्ञानात्मा से अर्थों को जान लेता है, वह अक्ष/जीव है ।

जो सब द्रव्यों का भोग करता है, वह अक्ष है ।

१८. अक्खर (अक्षर)

न खरतित्ति अक्खरं ।[3] (बृभा ४३)

जो क्षरित/नष्ट नहीं होता, वह अक्षर है ।

अर्थान् क्षरति न च क्षीयते इत्यक्षरम् । (आवहाटी १ पृ १६)

जो अर्थों का क्षरण/प्रकटन करता है, पर स्वयं क्षीण नहीं होता, वह अक्षर है ।

---

१. असु—व्याप्तौ ।

२. अशश्—भोजने ।

३. एत्थक्खर सद्दो सचलणे वट्टइ, अकारो पडिसेहे, जम्हा णोक्खरति अओ अक्खर । (आवचू १ पृ २५)

न क्षरति—न चलत्यनुपयोगेऽपि न प्रच्यवत इत्यक्षरम् ।

(नंदि पृ १५८)

जो अनुपयोग अवस्था में भी क्षरित/विस्मृत नही होता, वह अक्षर है ।

१९. अक्खात (आख्यातृ)

आख्यातीत्याख्याता । (सूचू २ पृ ३१७)

जो कथन करता है, वह आख्याता है ।

२०. अक्खाय (आख्यात)

आ—मर्यादया जीवाजीवलक्षणतारूपया अभिविधिना वा समस्तवस्तु-विस्तारव्यापनालक्षणेन कथितं आख्यातम् । (स्थाटी प ७)

मर्यादापूर्वक विस्तार से कथन करना आख्यात है।

२१. अक्खीण (अक्षीण)

यद्दीयमानं न क्षीयते स्म तदक्षीणम् । (स्थाटी प ५)

जो देने पर क्षीण नही होता, वह अक्षीण है ।

२२. अक्खेवणी (आक्षेपणी)

आक्षिप्यते मोहात् तत्त्वं प्रत्याकृष्यते श्रोताऽनयेत्याक्षेपणी ।

(स्थाटी प २०४)

जिससे श्रोता तत्त्व/ज्ञान और चारित्र के प्रति आकृष्ट होता है, वह आक्षेपणी (कथा) है ।

२३. अग (अग)

अगमणाद् अगा । (दअचू पृ ७)

न गच्छंतीति अगा । (आचू पृ २३)

जो गति नही करते, वे अग/वृक्ष हैं ।

२४. अगम (अगम)

न गच्छंतीति अगमा । (दजिचू पृ ११)

जो गति नही करते, वे अगम/वृक्ष हैं ।

२५. अगम (अगम)

गमनक्रियारहितत्वेनागमम् । (भटी प १४३१)

जो गति नहीं करता, वह अगम/आकाश है ।

२६. अगार (अगार)

अगाः वृक्षास्तैः कृतत्वाद् आ समन्तात् राजते इति अगारम् ।[1] (आवमटी प ४३४)

जो सपूर्ण रूप से काष्ठ निर्मित है, वह अगार/गृह है ।

२७. अगारत्थ (अगारस्थ)

अगारे चिट्ठतीति अगारत्थो । (आचू पृ ३०१)

जो अगार/गृह मे रहता है, वह अगारस्थ/गृहस्थ है ।

२८. अग्गह (आग्रह)

आङ् मर्यादया ग्रहः स्वीकार आग्रहः । (बृटी पृ १८०)

जो मर्यादित स्वीकरण/अभिनिवेश है, वह आग्रह है ।

२९. अग्गि (अग्नि)

अंगतीत्यग्निः ।[2] (उचू पृ १८२)

जो ऊर्ध्व गति करती है, वह अग्नि है ।

---

१. 'अगार' के अन्य निरुक्त—

अग्यतेऽस्मिन्नगारम् अगान् वृक्षान्निर्यति वा । (अचि पृ २१६)

जिसमे रहा जाता है, वह अगार है ।

जो वृक्ष से निर्मित है, वह अगार है ।

२. 'अग्नि' के अन्य निरुक्त—

अगत्यूर्ध्वं याति अग्निः । (अचि पृ २४५)

जो ऊर्ध्व गति करती है, वह अग्नि है ।

अग्रणीर्भवति । अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते । (नि ७/१४)

जो यज्ञ मे सर्वप्रथम प्रणीत होती है, वह अग्नि है ।

३०. अग्गेणीय (अग्रायणीय)

अग्गं—परिमाणं वण्णिज्जइ त्ति अग्गेणीतं । (नंचू पृ ७५)

जिसमें अग्र/परिमाण का वर्णन है, वह अग्रायणीय (दूसरा पूर्व) है ।

३१. अचल (अचल)

अचलतीति अचलो । (आचू पृ २९२)

जो चलित नहीं होता, वह अचल है ।

३२. अच्चा (अर्चा)

अच्चीयते तमिति अच्चा । (आचू पृ १४४)

जिसकी पूजा की जाती है, वह अर्चा/शरीर है ।

अर्चयन्ति तां विविधैराहारैर्वस्त्राद्यलङ्कारैश्चेत्यर्चा । (सूचू १ पृ २२५)

जो विविध प्रकार के आहार, वस्त्र और अलकारो से अर्चित—पूजित होता है, वह अर्चा/शरीर है ।

३३. अच्चिमालि (अर्चिमालिन्)

रस्सीओ—अच्चीओ तासिं माला अच्चिमाला । सा जस्स अत्थि सो अच्चिमाली । (दअचू पृ २१०)

जिसके अर्चि/रश्मि रूप माला है, वह अर्चिमाली/सूर्य है ।

३४. अच्चंत (अत्यन्त)

अन्तमतिक्रान्तोऽत्यन्तः । (उशाटी प ६१२)

जिसने अत का अतिक्रमण कर दिया, वह अत्यत है ।

३५. अच्छि (अक्षि)

अश्नोतीत्यक्षिः । (उचू पृ २०८)

जो व्याप्त होती है, वह अक्षि/आंख है ।

जो विषयों/पदार्थों को ग्रहण करती है, वह अक्षि है ।

३६. अच्छिज्ज (आच्छेद्य)

आच्छिद्यते—अनिच्छतोऽपि दानाय परिगृह्यते यत् तदाच्छेद्यम् । (पिटी प ३५)

जो बलात् छीनकर दिया जाता है, वह आच्छेद्य/भिक्षा का एक दोष है।

३७. अच्छेर (आश्चर्य)

आ—विस्मयतश्चर्यन्ते—अवगम्यन्त इत्याश्चर्याणि। (स्थाटी प ५००)

जो विस्मयपूर्वक जाने जाते हैं, वे आश्चर्य हैं।

३८. अजिण (अजिन)

अजति तेनेत्यजिनम्।[1] (उचू पृ १३८)

जो रज आदि को फेंकता है, वह अजिन/चर्म है।

३९. अज्झत्थ (अध्यात्म)

अत्ताणं अधिकिच्च वट्टति तं अज्झत्थं। (आचू पृ ३९)

जो आत्मा मे बरतता है, वह अध्यात्म है।

आत्मानं प्रति यद्वर्तते तदध्यात्मम्। (उचू पृ २२६)

जो आत्मा के प्रति होता है, वह अध्यात्म है।

४०. अज्झयण (अध्ययन)

अज्झप्पस्स आणयणं अज्झयणं।[2] (अनुद्वा ६३१)

जो अध्यात्म का आनयन/लाभ है, वह अध्ययन है।

जेण सुहप्पज्झयणं अज्झप्पाणयणमहियमयण वा।
बोहस्स संजमस्स व मोक्खस्स व तो तमज्झयणं॥ (विभा ९६०)

जिससे बोधि, संयम और मोक्ष का अधिक अयन/लाभ होता है, वह अध्ययन है।

---

१ (क) अज—क्षेपणे च, चकाराद् गतौ।
(ख) 'अजिन' शब्द का अन्य निरुक्त—
अजन्ति तदिति अजिनम् (अचि १४२)
जो खीची/उतारी जाती है, वह अजिन है।

२ इह निरुक्तविधिना प्राकृतत्वाभाव्याच्च पकारस्सकारआकारणकार-लक्षणमध्यगतवर्णचतुष्टयलोपे अज्झयणमिति भवति।
(अनुद्वामटी प २३२)

अधीयते वा—पठ्यते आधिक्येन स्मर्यते गम्यते वा तदित्यध्ययनम् ।
(स्थाटी प ५)

जो पढ़ा जाता है, अधिक स्मृत और ज्ञात किया जाता है, वह अध्ययन है ।

अधीयन्ते—ज्ञायन्ते यैस्तान्यध्ययनानि । (सूयंटी प १४६)

जिनसे जाना जाता है, वे अध्ययन है ।

४१. अज्झावय (अध्यापक)

अध्यापयतीति अध्यापकः । (उचू पृ २०७)

जो अध्यापन कराता है, वह अध्यापक है ।

४२. अज्झोयर (अध्यवतर)

अहियं उदरं अज्झोयरं । (जीतभा १२८३)

अधि—आधिक्येनावपूरणं स्वार्थदत्ताधिश्रयणादेः साध्वागमनमवगम्य तद्योग्यभक्तसिद्ध्यर्थं प्राचुर्येण भरणमध्यवपूरः । (प्रसाटी प १४४)

पकाते समय (साधुओं के निमित्त) अधिक ऊरना/डालना अध्यवतर (दोष) है ।

४३. अज्झोवण्ण (अध्युपपन्न)

अधिकं उपपण्णा अज्झोवण्णा । (सूचू १ पृ ७०)

जो अत्यधिक उपपन्न/आसक्त है, वे अध्युपपन्न हैं ।

४४. अट्ट (आर्त्त)

ऋतं—दुःखं तन्निमित्तं दुरज्झवसातो अट्टं । (दअचू पृ १६)

जो अध्यवसाय ऋत/दुःख का कारण है, वह आर्त्त (ध्यान) है।

४५. अट्ट (अट्ट)

अट्यते—अतिक्राम्यतेऽनेनेत्यट्टः । (भटी प १४३१)

जिसके द्वारा गमन-आगमन किया जाता है, वह अट्ट/आकाश है ।

४६. अट्ठ (अर्थ)

इयर्त्ती इच्छति वा अर्थः । (उचू पृ १६७)

जो प्राप्त किया जाता है, वह अर्थ/धन है ।

जिसकी इच्छा की जाती है, वह अर्थ/धन है ।

४७. अट्ठकर (अर्थंकर)

अर्थान्—हिताहितप्राप्तिपरिहारादीन् राजादीनां विद्यादौ तथोपदेशतः करोतीत्यर्थंकरः । (स्थाटी प २३३)

जो अर्थ/हित की प्राप्ति और अहित के परिहार का उपदेश करता है, वह अर्थंकर/मंत्री/नैमित्तिक है ।

४८. अट्ठजात (अर्थजात)

अर्थेन अर्थितया जातं कार्यं यस्य सोऽर्थजातः । अर्थः प्रयोजनं जातो ऽस्येत्यर्थजातः । (व्यभा ४/२ टी प ४६)

जिसका अर्थ/प्रयोजन सिद्ध हो गया है, वह अर्थजात है । अपने अर्थ/प्रयोजन के लिए जिसका कार्य निष्पन्न हो गया, वह अर्थजात (भिक्षु) है ।

४९. अणंतघाइ (अनन्तघातिन्)

अनन्ते—ज्ञानदर्शने हन्तु शीलं येषां तेऽनन्तघातिनः ।

(उशाटी प ५८०)

जो अनन्त—ज्ञान-दर्शन का हनन करता है, वह अनन्तघाति है ।

५०. अणंतणाण (अनन्तज्ञान)

अणंतं जेण नज्जइ णाणेणं तं अणंतनाणं । (दजिचू पृ ३०६)

जिस ज्ञान के द्वारा अनन्त को जाना जाता है, वह अनन्तज्ञान है ।

५१. अणंतहितकाम (अनन्तहितकाम)

अणत हितं कामयतीति अणंतहितकामए । (दजिचू पृ ३३४)

जो अनन्तहित/मोक्ष की कामना करता है, वह अनन्तहितकाम है ।

५२. अणंताणुबंधि (अनन्तानुबन्धिन्)

अनन्तं संसारमनुबध्नन्तीत्येवंशीला अनन्तानुबन्धिनः ।

(प्रज्ञाटी पृ ४६८)

जो अनन्त ससार का अनुबन्ध करते हैं, वे अनन्तानुबंधी (कषाय) हैं ।

५३. अणकर (ऋणकर)

ऋणं—पापं करोतीति ऋणकरः । (प्रटी प ७)

जो ऋण/पाप करता है, वह ऋणकर है ।

५४. अणगार (अनगार)

अगारं—घरं तं जस्स नत्थि सो अणगारो । (दअचू पृ ८५)

जिसके अगार/घर नहीं है, वह अनगार/मुनि है ।

५५. अणण्णवित्ति (अनन्यवृत्ति)

न विद्यते अन्या भिक्षामात्रात् व्यतिरिक्ता वृत्तिर्येषा ते अनन्यवृत्तयः । (व्यभा २ टी प ४)

भिक्षा के अतिरिक्त जिनकी कोई दूसरी वृत्ति/आजीविका नहीं है, वे अनन्यवृत्ति हैं ।

५६. अणापुच्छियचारि (अनापृच्छ्यचारिन्)

गणं अनापृच्छ्य चरति क्षेत्रान्तरसंक्रमादि करोतीत्येवंशीलोऽनापृच्छ्यचारी । (स्थाटी प २९१)

जो गण को बिना पूछे क्षेत्रान्तर मे विहरण करता है, वह अनापृच्छ्यचारी है ।

५७. अणावाय (अनापात)

न विद्यते आपातः अभ्यागमः परस्य अन्यस्य स्वपक्षस्य परपक्षस्य वा यस्मिन् तदनापातम् । (प्रसाटी प २०४)

जहां किसी का आवागमन नहीं होता, वह अनापात/एकांत स्थान है ।

५८. अणिल (अनिल)

अणिलयणाद् अणिलः ।[1] (दअचू पृ १५१)

---

१. 'अनिल' के अन्य निरुक्त—

अनन्यनेन अनिलः न मिलति वा । (अचि पृ २४६) ।

जिससे श्वास/प्राण ग्रहण करते हैं, वह अनिल है ।

जो हल्का होता है, वह अनिल है । (णिलत्—गहने)

निलयो जस्स नत्थि सो अणिलो । (दजिचू पृ २२५)

जिसके निलय/स्थान नहीं है, वह अनिल/पवन है ।

५९. अणु (अणु)

अणतीत्यणु । (उचू पृ १५६)

जो सदा अपने अस्तित्व को बनाए रखता है, वह अणु है ।

६०. अणुंधरि (अणुन्धरिन्)

अणु सरीरं धरेति अणुधरी । (दश्रुचू प ६५)

जो अणु/लघु शरीर को धारण करता है, वह अणुंधरी/सूक्ष्मजीव है ।

६१. अणुगम (अनुगम)

अनुगम्यतेऽनेनास्मिश्चेति अनुगम । (उचू पृ ६)

जिसके द्वारा सूत्र का अनुसरण अथवा सूत्र के अर्थ का स्पष्टीकरण किया जाता है, वह अनुगम/व्याख्या है ।

अत्थातो सुत्तं अणु, तस्स अणुरूवगमणत्ताओ अनुगमो ।
(अनुद्वाचू पृ १८)

अर्थ से सूत्र अणु/लघु होता है । उसके अनुरूप गमन करना अनुगम है ।

सूत्रार्थानुकूलगमनं वा अनुगमः । (अनुद्वाचू पृ २३)

सूत्र और अर्थ के अनुकूल गमन करना अनुगम है ।

सूत्रपठनादनुपश्चाद् गमनं—व्याख्यानमनुगमः ।
अनुसूत्रमर्थो गम्यते—ज्ञायते अनेनेत्यनुगमः ।।
(अनुद्वामटी प ५४)

सूत्र पढ़ने के पश्चात् गमन/व्याख्यान करना अनुगम है ।
जिसके द्वारा सूत्रानुसारी ज्ञान होता है, वह अनुगम है ।

६२. अणुगामि (अनुगामिन्)

अणुगमणसीलो अणुगामितो । (नंचू पृ १५)

जो अनुवर्त्तन करता है, वह अनुगामिक है ।

गच्छन्तमनुगच्छतीत्यनुगामिकः । (सूटी २ प ६१)

जो चलने वाले का अनुगमन करता है, वह अनुगामिक है।

६३. अणुग्गह (अनुग्रह)

अनुगृह्यते इति अनुग्रहः । (व्यभा २ टी प १०)

अनुग्रहण/अभीष्ट सम्पादन करना अनुग्रह है।

६४. अणुजुत्ति (अनुयुक्ति)

अनुयुज्यते इति अनुयुक्ति.। अनुगता अनुयुक्ता वा युक्ति अनुयुक्तिः।
(सूचू १ पृ ६३)

अनुयोजन करना अनुयुक्ति है।

अनुरूपा युक्तिः अनुयुक्तिः । (सूचू १ पृ १६७)

अनुरूप कथन करना अनुयुक्ति है।

६५. अणुजोग (अनुयोग)

अणुणा जोगो अणुजोगो । (बृभा १६०)

अणु/सूत्र के साथ अर्थ का योजन अनुयोग है।

जोगोत्ति वावारो जो सुत्तस्स सोऽणुरूवो अणुकूलो वा अनुयोगः ।
(अनुद्वाचू पृ ५)

सूत्र के अनुरूप या अनुकूल योग/प्रवृत्ति करना अनुयोग है।

६६. अणुण्णा (अनुज्ञा)

अनुज्ञायते वाऽनयेति अनुज्ञा । (नटी पृ १७०)

जिससे जाना जाता है, वह अनुज्ञा/गुरुवचन है।

६७. अणुतावि (अनुतापिन्)

अनु—पश्चात् हा दुष्ठुकृतं हा दुष्ठुकारितमित्यादिरूपेण तपति सन्तापमनुभवतीत्येवंशीलोऽनुतापी । (व्यभा ३ टी प ११०)

जो अनु/बाद में संताप का अनुभव करता है, वह अनुतापी है।

६८. अणुत्तर (अनुत्तर)

न विद्यन्ते उत्तराः प्रधानाः स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविभिरेभ्योऽन्ये देवा इत्यनुत्तराः । (उपाटी प ७०२)

जिनसे दूसरे देव उत्तर/प्रधान नहीं हैं, वे अनुत्तर देव हैं।

६९. अणुत्तर (अनुत्तर)

नत्थि जतो उत्तरतरो विसिट्ठतरो सो अणुत्तरो । (दअचू पृ १९५)

जिससे कोई उत्तर/विशिष्ट नहीं होता, वह अनुत्तर है ।

७०. अणुपुव्विग (आनुपूर्विग)

आनुपूर्वी—क्रमस्तं गच्छतीत्यानुपूर्विगः । (आटी प २६२)

जो क्रम के अनुसार चलता है, वह आनुपूर्विक है ।

७१. अणुमाण (अनुमान)

अनु—लिङ्गग्रहणसम्बन्धस्मरणस्य पश्चान्मीयते—परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति अनुमानम् । (अनुद्वामटी पृ १९६)

लिंग/चिह्न या संकेत की स्मृति के अनु/पश्चात् होने वाला ज्ञान अनुमान है ।

७२. अणुरंगिणी (अनुरङ्गिनी)

अनुरज्यते—अनुकारं विदधातीत्येवंशीलाऽनुरङ्गिनी । (सूर्यटी प १३६)

जो शरीर का अनुकरण करती है, वह अनुरंगिनी/छाया है ।

७३. अणुसासण (अनुशासन)

अनुशास्यते येन तद् अनुशासनम् । (सूचू १ पृ ७४)

जिसके द्वारा अनुशासित किया जाता है, वह अनुशासन/श्रुतज्ञान है ।

७४. अणुसासिअ (अनुशासित)

अणुकूलं सास्यते स्म अनुशासितः । (उचू पृ २८)

जो (गुरु के) अनुकूल शासित होता है, वह अनुशासित है ।

७५. अणुसोयचारि (अनुस्रोतश्चारिन्)

अनुस्रोतसा चरतीत्यनुस्रोतश्चारी । (स्थाटी प २६३)

जो स्रोत/प्रवाह के पीछे-पीछे चलता है, वह अनुस्रोतचारी है ।

७६. अणुसंसरण (अनुसंसरण)

अणुगओ कम्मेहिं संसरति अणुसंसरति । (आचू पृ १३)

कर्मों से अनुगत होकर संसरण/जन्म-मरण करना अनुसंसरण है ।

७७. अणुस्सार (अनुस्वार)

अणुस्सारं नाम पम्हुट्ठे अत्थे सतं संभरिते अण्णेण वा संभारिते जं अक्खरविरहितं सद्दकरणं तमणुस्सारं भण्णइ । (आवचू १ पृ ३०)

विस्मृत अर्थ का स्वयं द्वारा स्मरण करने पर अथवा दूसरे द्वारा कराए जाने पर जो अक्षर रहित शब्द किया जाता है, वह अनुस्वार है ।

७८. अण्णगिलायग (अन्नग्लायक)

अन्नं भोजनं बिना ग्लायति अन्नग्लायकः । (औटी पृ ७४)

जो अन्न/भोजन के बिना ग्लान होता है, वह अन्नग्लायक है ।

७९. अण्णतरग (अन्यतरक)

एकस्मिन् काले आत्मपरयोरन्यमन्यतरं तारयन्तीति अन्यतरकाः । (व्यभा ३ टी प ३)

जो एक समय मे स्व या अन्य—दोनों में से एक को तारते हैं, वे अन्यतरक हैं ।

८०. अण्णव (अर्णव)

अतरणशीलो अण्णवो ।[1] (उचू पृ १९३)

जिसे तैरना संभव नहीं, वह अर्णव/समुद्र है ।

८१. अण्णातचरक (अज्ञातचरक)

अज्ञातः—अनुपर्दाशतस्वाजन्यर्द्धिमत्प्रव्रजितादिभावः सन् चरति—भिक्षार्थमटतीत्यज्ञातचरकः । (स्थाटी प २८७)

जो अज्ञात रहकर भिक्षाचरण करता है, वह अज्ञात चरक है ।

---

१. 'अर्णव' का अन्य निरुक्त—

अर्णांसि सन्त्यस्य अर्णवः । (अचि पृ २३८)

जिसमें अर्ण/जल होता है, वह अर्णव है ।

८२. अण्णायएसि (अज्ञातैषिन्)

अज्ञातमज्ञातेन एषते—मिलते असौ अज्ञातैषी । (उचू पृ २३५)

जो अज्ञात रहकर अज्ञात कुलों मे एषणा करता है, वह अज्ञातैषी है।

८३. अतर (अतर)

न तरितु शक्यत इति अतरः । (बृटी पृ ६१०)

जिसे तरना सभव नही, वह अतर/समुद्र है।

८४. अतिगमण (अतिगमन)

अतिक्रम्य गमनं—प्रवेशमतिगमनम् । (व्यभा ४/१ टीप २३)

अतिक्रमण कर गमन/प्रवेश करना अतिगमन है।

८५. अतिमाण (अतिमान)

अतिक्राम्यते येन चारित्रं सोऽतिमाणं । (सूचू १ पृ २०३)

जिसके द्वारा चारित्र का अतिक्रमण किया जाता है, वह अतिमान है।

८६. अतिवात (अतिपात)

अतिवाविज्जति जेण सो अतिवादो । (आचू पृ ३०७)

जिसके द्वारा अतिपतन/विनाश होता है, वह अतिपात/हिंसा है।

८७. अतिवातसोय (अतिपातस्रोतस्)

अतिपतति ससारातो अतिपातसोय । (आचू पृ ३०७)

जो ससार से निकालता है, वह अतिपातस्रोत (ईर्यापथिक क्रिया) है।

८८. अत्त (आप्त)

ज्ञानदर्शनचारित्राणि येनाप्तानि स भवत्याप्तः ।

जिसने ज्ञान, दर्शन और चारित्र को प्राप्त कर लिया है, वह आप्त है।

ज्ञानादिभिराप्यते स्म आप्तः । (व्यभा १० टी प ३५)

जो ज्ञान आदि से व्याप्त है, वह आप्त है।

८९. अत्त (आत्र)

आ—अभिविधिना त्रायन्ते दुःखात् संरक्षन्ति सुखं चोत्पादयन्तीति आत्राः। (भटी पृ १२०४)

जो दुःख से त्राण/रक्षा करते हैं और सुख उत्पन्न करते हैं, वे आत्र/आप्त हैं।

९०. अत्तगवेसि (आत्मगवेषिन्)

अत्ताणं गवेसतीति अत्तगवेसिओ। (दजिचू पृ २९२)

जो आत्मा की गवेषणा करता है, वह आत्मगवेषी है।

९१. अत्तपण्णेसि (आत्मप्रज्ञैषिन्)

आत्मप्रज्ञामेषयन्तीति आत्मप्रज्ञैषिणः। (सूचू १ पृ १५२)

जो आत्मप्रज्ञा/आत्मज्ञान की खोज करते हैं, वे आत्मप्रज्ञैषी हैं।

९२. अत्तव (आत्मवत्)

णाणदंसणचरित्तमयो जस्स आया अत्थि सो अत्तवं। (दअचू पृ १९७)

जिसकी आत्मा ज्ञान, दर्शन और चारित्रमय है, वह आत्मवान् है।

९३. अत्थ (अर्थ)

अर्थ्यत इत्यर्थः। (अनुद्वाचूपृ २२)

जिसको जानने की इच्छा की जाती है, वह अर्थ है।

अर्यतेऽधिगम्यतेऽर्थ्यते वा याच्यते बुभुत्सुभिरित्यर्थः। (स्याटी प ४९)

जो जिज्ञासु द्वारा जाना जाता है अथवा जिज्ञासु जिसको जानने की याचना करता है, वह अर्थ है।

९४. अत्थाणंतरचारि (अर्थानन्तरचारिन्)

अर्थं—शब्दादाविन्द्रियव्यापारादनन्तरं चरति—व्याप्रियत इत्येवंशीलमर्थानन्तरचारि। (नूटी पृ १६)

जो अर्थ/शब्द आदि विषयों में इन्द्रियों की प्रवृत्ति के पश्चात् प्रवृत्त होता है, वह अर्थानन्तरचारी/मन है।

१९५. अत्थोग्गह (अर्थावग्रह)

अर्यते—अधिगम्यतेऽर्यते वा अन्विष्यत इत्यर्थः, तस्य सामान्यरूपस्य अशेषविशेषनिरपेक्षानिर्देश्यस्य रूपादेरवग्रहणं—प्रथमपरिच्छेदनमर्थावग्रहः। (स्थाटी प ४९)

सभी विशेषणो से निरपेक्ष, सामान्यरूप से अर्थ/पदार्थ का अवग्रहण करना अर्थावग्रह है।

१९६. अदत्तहारि (अदत्तहारिन्)

अदत्तं हरतीति अदत्तहारी। (सूचू १ पृ १२७)

जो अदत्त का हरण करता है, वह अदत्तहारी/चोर है।

१९७. अद्द (अर्द्द)

अर्द्दते—गम्यतेऽनेनेत्यर्द्दः। (भटी पृ १४३१)

जिसमे गति की जाती है, वह अर्द्द/आकाश है।

१९८. अद्धा (अध्वन्)

अत्ति प्राणानित्यध्वा। (उचूपृ १८३)

जो प्राणो का भक्षण करता है, वह अध्वा/मार्ग है।

१९९. अधम्मपलज्जण (अधर्मप्ररञ्जन)

अधर्मप्रायेषु कर्मसु प्रकर्षेण रज्यन्त इति अधर्मप्ररक्ताः।

(सूटी २ प ७२)

जो अधार्मिक कार्यों में अत्यन्त रक्त/आसक्त हैं, वे अधर्मप्ररक्त हैं।

२००. अपुव्वकरण (अपूर्वकरण)

अपूर्वामपूर्वां क्रियां गच्छतीत्यपूर्वकरणम्। (आटी प २९७)

जो नई-नई क्रियाओं/अवस्थाओं को प्राप्त होता है, वह अपूर्वकरण है।

२०१. अप्प (आत्मन्)

अतति—सन्ततं गच्छति शुद्धिसंक्लेशात्मकपरिणामान्तराणीत्यात्मा।

(उशाटी प ५२)

जो विविध भावों में परिणत होती है, वह आत्मा है।

१०२. अप्परिस्सावि (अपरिस्राविन्)

न परिस्रवतीत्येवंशीलोऽपरिस्रावी । (व्यभा ३ टी प १८)

जो परिस्रवित नहीं होता/झरता नहीं, वह अपरिस्रावी है।

१०३. अब्भ (अभ्र)

अपो बिभ्रतीति अभ्राणि ।[1] (राटी पृ ६५)

जो जल को धारण करते हैं, वे अभ्र/बादल हैं।

१०४. अब्भागमिय (अभ्यागमिक)

अभिमुखं आगमिकं अभ्यागमिकं । (सूत्र १ पृ ७५)

जो सम्मुख आता है, वह अभ्यागमिक/आगंतुक है।

१०५. अब्भासवत्ति (अभ्यासवर्तिन्)

गुरोरभ्यासे समीपे वर्तते इत्येवंशीलोऽभ्यासवर्ती ।
(व्यभा १ टी प ३१)

जो गुरु के पास रहता है, वह अभ्यासवर्ती है।

१०६. अब्भुट्ठाण (अभ्युत्थान)

आभिमुख्येनोत्थानमभ्युत्थानम् । (आवहाटी २ पृ २२)

सम्मुख आते हुए को देखकर उठना अभ्युत्थान है।

१०७. अब्भोवगमिया (आभ्युपगमिकी)

या स्वयमभ्युपगम्यते, अभ्युपगमेन स्वयमङ्गीकारेण निर्वृत्ता आभ्युपगमिकी । (प्रज्ञाटी प ५५७)

जिसका स्वयं अभ्युपगमन/स्वीकरण किया जाता है, वह आभ्युपगमिकी (वेदना) है।

---

१. 'अभ्र' का अन्य निरुक्त—

अभ्रतीति अभ्रं, आप्नोति सर्वा दिश इति वा अभ्रम् । (अचिपृ ३८)

जो गति करता है, वह अभ्र है। (अभ्र-गतौ)

जो सब दिशाओं में व्याप्त होता है, वह अभ्र है।

१०८. अभयंकर (अभयङ्कर)

अभयं करोतीति अभयङ्करः । (सूचू १ पृ १४६)

जो अभय करता है, वह अभयकर है ।

१०९. अभयद (अभयद)

अभयं ददतीत्यभयदाः । (जीटी प २५५)

जो अभय देते हैं, वे अभयदाता हैं ।

११०. अभिग्गह (अभिग्रह)

अभिगृह्यन्ते इति अभिग्रहाः । (आवहाटी २ पृ २१०)

जिनको संकल्परूप मे ग्रहण किया जाता है, वे अभिग्रह/प्रतिज्ञाए हैं ।

१११. अभिजोग (अभियोग)

अभियुज्यत इत्यभियोगः । (सूचू २ पृ ४५२)

जो आरोपित किया जाता है, वह अभियोग है ।

११२. अभिज्झा (अभिध्या)

अभि—व्याप्त्या विषयाणां ध्यानं तदेकाग्रत्वमभिध्या ।

(भटी पृ १०५२)

इन्द्रिय-विषयो मे विशेष रूप से एकाग्र होना अभिध्या/लोभ है।

११३. अभिणिबोह (अभिनिबोध)

अत्थाभिमुहो नियतो बोधो अभिनिबोधः । (नचू पृ १३)

जो अर्थाभिमुख ज्ञान होता है, वह अभिनिबोध/मतिज्ञान है ।

११४. अभिणिसेज्जा (अभिनिषद्या)

अभि रात्रिमभिव्याप्य स्वाध्यायनिमित्तमागता निषीदन्त्यस्यामित्यभिनिषद्या । (व्यभा ३ टी प ५२)

जहा रात्रि के समय मुनि स्वाध्याय के लिए बैठते हैं, वह अभिनिषद्या/स्वाध्याय भूमि है ।

११५. अभित्थुअ (अभिष्टुत)

आभिमुख्येन स्तुता अभिष्टुताः। (आवहाटी २ पृ ११)

जिनकी प्रधान रूप से स्तुति की जाती है, वे अभिस्तुत/तीर्थंकर हैं।

११६. अभिलप्प (अभिलाप्य)

अभिलाप्यते वस्त्वभिलाप्यमनेनेति अभिलापः। (बृटी पृ ५)

जिससे वस्तु का अभिलाप/कथन किया जाता है, वह अभिलाप है।

११७. अभिहड (अभिहृत)

अभि—साध्वभिमुखं हृतं—स्थानान्तरादानीतम् अभिहृतम्। (पिटी पृ ३५)

जो आहार आदि दूसरे स्थान से साधु को देने के लिए लाया जाता है, वह अभिहृत/भिक्षा का दोष है।

११८. अमणाम (दे)

न मनसा अम्यन्ते—गम्यन्ते पुनः पुनः स्मरणतो ये तेऽमणामाः। (भटी प ७२)

जिनका मन के द्वारा बार-बार स्मरण नही किया जाता, वे अमणाम/अमनोज्ञ हैं।

११९. अमणुण्ण (अमनोज्ञ)

मनसा न ज्ञायन्ते—नाभिलष्यन्ते अमनोज्ञाः। (उपाटी पृ २४३)

जिनकी मन के द्वारा आकांक्षा नही की जाती, वे अमनोज्ञ हैं।

१२०. अमर (अमर)

ण जेसिं मरो अत्थि ते अमराः। (दअचू पृ २५७)

जिनके मर/मरण नहीं है, वे अमर हैं।

१२१. अय (अज)

अजतीत्यजः।[1] (उचू पृ १६०)

जो बलि/यज्ञ के लिए ले जाया जाता है, वह अज/बकरा है।

१. अजति वातमजा (अचि पृ २८५)

१२२. अरह (अरहस्)

नास्य रहस्यं ति विद्यते वा अरहा ।[1] (सूचू १ पृ ७६)

जिनके लिए कोई रहस्य नहीं है, वे अ-रह/अर्हत् हैं ।

१२३. अरहंत (अरथान्त)

अविद्यमानो रथः—स्यन्दनः सकलपरिग्रहोपलक्षणभूतोऽन्तश्च विनाशो जराद्युपलक्षणभूतो येषां ते अरथान्ताः । (भटी प ३)

जिन्होंने परिग्रहरूपी रथ का तथा जरा-मरण आदि का अंत/नाश कर दिया है, वे अरथान्त/अर्हत् हैं ।

१२४. अरिहंत (अर्हत्)

अरिणो हंता रयं हंता अरिहंता ।[2] (आवनि १०७६)

जो क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करते हैं, वे अरिहंत है ।

जो कर्म-रज का नाश करते हैं, वे अरिहंत है ।

---

१. 'अरह' के अन्य निरुक्त—

ये सच्छकत सद्धम्मा अरिया सुद्धगोचरा ।
न तेहि रहितो होति नाथो तेन अरह मतो ॥
रहो वा गमन यस्स ससारे नत्थि सब्बसो ।
पहीन जातिमरणो अरह सुगतो मतो ॥ (विटी पृ ४२२)

जो आर्य-धर्मों से रहित नही है, वह अरह/अर्हत् है । जिसने ससार का रह/गमन मिटा दिया है, वह अरह/अर्हत् है ।

२. (क) **कोहाई उ अरी ऊ अहव रयं कम्मं होइ अट्ठविहं ।**
अरिणो व रयं हंता तम्हा उ हवंति अरिहंता । (जीतभा ९८३)

(ख) 'अरिहंत' का अन्य निरुक्त—

अरा संसारचक्कस्स हता आणासिना यतो ।
लोकनाथेन तेनेस अरहं ति पवुच्चति ॥ (वि ७/११)

जिसने ज्ञान रूपी तलवार के द्वारा संसाररूपी चक्र के आरों का नाश कर दिया, वह अरहा/अरिहंत है ।

अरह पूयाए[1] धातु पूयामरिहंति तेण अरिहंता ।
अरिहंति वंदण नमंसण च तम्हा उ हुवंति अरिहंता ॥

(जीतभा ९८२)

जो पूजा के योग्य हैं, वे अर्हत् हैं ।

जो वन्दन-नमस्कार के योग्य हैं, वे अर्हत् हैं ।

१२५. अरुह (अरुह)

न रोहन्ति भूयः समुत्पद्यन्ते इत्यरुहाः । (प्रसाटी प ४४७)

जो बार-बार उत्पन्न नहीं होते, वे अरुह/सिद्ध हैं ।

१२६. अलंकार (अलङ्कार)

अलंक्रियते—भूष्यतेऽनेनेत्यलङ्कारः । (स्थाटी प २७६)

जो अलकृत/विभूषित करता है, वह अलंकार/आभूषण है ।

१२७. अल्लीण (आलीन)

न चलति त्ति अल्लीणो । (आवहाटी १ पृ १३१)

जो चलता नहीं, वह आलीन/निश्चेष्ट है ।

१२८. अवगाहणा (अवगाहना)

अवगाहन्ते—अवतिष्ठन्ते जीवा अस्यामित्यवगाहना ।

(अनुद्वामटी प १५१)

जीव जितने स्थान का अवगाहन करता है, वह अवगाहना/शरीर-परिमाण है ।

१२९. अवड्ढ (अपार्ध)

अपगतमर्द्धं यस्य सोऽपार्द्धः । (प्रज्ञाटी प ३८४)

जो आधे भाग से अपगत/रहित है, वह अपार्द्ध है ।

---

१. (क) अर्ह—पूजायाम् ।

(ख) गुणेहि सविसो नत्थि यस्मा लोके सदेवके ।
तस्मा पासंसियत्तापि अरहं ह्रिपवुत्तमो ॥ (विटी पृ ४२२)

जो लोक में अपने असाधारण गुणों से अर्ह/प्रशसनीय है, वह अर्ह/अर्हत् है ।

१३०. अवदालि (अवदारिन्)

अवदारयति शकटं स्वस्वामिनं वा विनाशयतीत्येवंशीलोऽवदारी ।

(उशाटीप ५४८)

जो स्वामी और शकट का अवदारण/विनाश करता है, वह अवदारी/दुष्ट बैल है ।

१३१. अवमाण (अवमान)

अवमीयते—परिच्छिद्यते खाताद्यनेनेति अवमानम् ।

(अनुद्वामटी प १४२)

जिसके द्वारा परिखा आदि का माप किया जाता है, वह अवमान है ।

१३२. अवलावि (अपलापिन्)

अपलपति गूहतीत्येवंशीलोऽपलापी । (व्यभा ३ टी प १८)

जो अपलपन करता है—छिपाता है, वह अपलापी/असत्य-भाषी है ।

१३३. अवहि (अवधि)

अवधीयते इति अधोऽधो विस्तृतं परिच्छिद्यते, मर्यादया वेति ।

(आवहाटी १ पृ ५)

जिससे उत्तरोत्तर विस्तार से जाना जाता है, वह अवधि (ज्ञान) है ।

जो अवधि/सीमाबद्ध ज्ञान है, वह अवधि (ज्ञान) है ।

१३४. अवाय (अपाय)

अप अयः—सामस्त्येन परिच्छेदोऽपायः । (नटी पृ १४५)

जो सम्पूर्णरूप से अवबोध होता है, वह अपाय/निश्चय (ज्ञान) है ।

१३५. अवायदंसि (अपायदर्शिन्)

अपायान्—अनर्थान् पश्यतीत्येवंशीलः, सम्यगनालोचनायां वा दुर्लभ-बोधिकत्वादीन् अपायान् शिष्यस्य दर्शयतीति अपायदर्शी ।

(स्थाटी प ४०६)

जो अपाय/अनर्थों को देखता है, वह अपायदर्शी है। जो अपायों को दिखाता है, वह अपायदर्शी है।

इहलोकापायान् परलोकापायांश्च दर्शयतीत्येवंशीलोऽपायदर्शी। (व्यभा ३ टी प १८)

जो इहलोक और परलोक के अपाय/दोषों को दिखाता है, वह अपायदर्शी है।

१३६. अवादाण (अपादान)

अपादीयते अपायतो— विश्लेषत आ— मर्यादया दीयते[1]— खण्ड्यते— भिद्यते आदीयते वा गृह्यते यस्मात्तदपादानम्। (स्थाटी प १४०)

जिससे अपाय/विश्लेषण और मर्यादापूर्वक भेदन या आदान/ग्रहण किया जाता है, वह अपादान (कारक) है।

१३७. असण (अशन)

आसु छुहं समेई असणं। (आवनि १५८८)

जो भूख का आशु/शीघ्र शमन करता है, वह अशन/भोजन है।

असिज्जइ छुहितेहिं जं तमसणं। (दजिचू पृ १५२)

जो भूखे व्यक्तियों द्वारा खाया जाता है, वह अशन है।

१३८. असब्भ (असभ्य)

असभाजोग्गमसब्भं। (बृभा ७५३)

जो सभा के योग्य नहीं है, वह असभ्य है।

१३९. असुर (असुर)

अस्यस्यसावित्यसुरः।[2] (उचू पृ ९६)

जो देवों को फेंकते हैं, वे असुर हैं।

---

१. दोंच्—अवखण्डने।

२. (क) अस्यन्ति देवान् असुरा., सुराया अपानाद् वा (अचि पृ ५८)

जो देवों को फेंक देते हैं, वे असुर हैं। जो सुरा/मदिरा-पान नहीं करते, वे असुर हैं।

अस्यति क्षिपति देवान् असुरः। (वा पृ ५५६)

१४०. असंलोय (असंलोक)

न विद्यते संलोको—दर्शनं वृक्षादिच्छन्नत्वाद्यत्र परस्य तदसंलोकम् ।
(प्रसाटी प २०४)

आवरण के कारण जहां कुछ दिखाई न दे, वह असंलोक है ।

१४१. असंविभागि (असंविभागिन्)

असंविभयणसीलो असंविभागी । (दअचू पृ २१८)

जो सम विभाग नहीं करता, वह असंविभागी है ।

१४२. अस्स (अश्व)

अश्नाति अश्नुते वा अध्वानमिति अश्वः । (उचू पृ १३२)

जो मार्ग को खा जाता है/पार कर जाता है, वह अश्व है ।

जो मार्ग को व्याप्त कर लेता है, वह अश्व है ।

१४३. अहाकम्म (आधाकर्मन्)

साधु प्रधानकारणमाधाय—आश्रित्य कर्माण्याधाकर्माणि ।
(सूटी २ प १२३)

साधु को प्रधान कारण मानकर किये जाने वाले पचन-पाचन आदि कार्य आधाकर्म हैं ।

१४४. अहासंविभाग (यथासंविभाग)

अहत्ति—यथासिद्धस्य स्वार्थनिर्वर्तितस्य अशनादेः समिति—सङ्गतत्वेन पश्चात्कर्मादिदोषपरिहारेण विभजनं साधवे दानद्वारेण विभागकरणं यथासंविभागः । (उपाटी पृ ५३)

(ख) 'असुर' के अन्य निरुक्त—

अस्ताः प्राच्याविताः देवैः स्थानेभ्यः ।

जो देवों द्वारा स्थानच्युत किये जाते हैं, वे असुर हैं ।

अ सुरताः स्थानेषु न सुष्ठुरताः स्थानेषु चपला इत्यर्थः ।

जो अच्छे स्थानों मे आनन्द नहीं लेते और चपल होते हैं, वे असुर हैं ।

असुः प्राणः तेन तद्वन्तो भवन्ति रो मत्वर्थे । (आप्टे पृ २६५)

जो असु/प्राणवान् होते हैं, वे असुर हैं ।

स्वयं के लिए निर्मित आहार आदि का सम्यक् प्रकार से विभाग कर साधुओं को दान देना यथासंविभाग (व्रत) है।

१४५. अहिगम (अधिगम)

अधिगम्यन्ते—परिच्छिद्यन्ते पदार्था येन सोऽधिगमः।

(आवहाटी २ प २७)

जिसके द्वारा पदार्थों को जाना जाता है, वह अधिगम है।

१४६. अहिगरण (अधिकरण)

अधिकं अतिरित्तं उत्सूत्रं करणं अधिकरणम्। (निचू३ पृ ३८)

सूत्र (शास्त्रविहित आचार) का अत्यधिक अतिक्रमण अधिकरण है।

अधिक्रियत इति अधिकरणम्[1]। (सूचू २ पृ ३६७)

जिससे पाप में प्रवृत्ति होती है, वह अधिकरण है।

१४७. अहिगरणकर (अधिकरणकर)

अधिकरणं करोतीति अधिकरणकरः। (सूचू १ पृ ६५)

जो अधिकरण/कलह करता है, वह अधिकरणकर है।

१४८. अहिताव (अभिताप)

अभिमुखं तापयतीति अभितापः। (सूचू १ पृ ८०)

जो अभितप्त करता है, वह अभिताप है।

१४९. अहिप (अधिप)

अधिकं पातीत्यधिपाः। (सूचू १ पृ ५३)

जो अधिक व्यक्तियों का पालन/रक्षण करते हैं, वे अधिप/राजा हैं।

१५०. अहिमर (अभिमर)

अभिमुखं परं मारयन्ति तेऽभिमराः। (प्रटी प ४६)

जो अभिमुख शत्रु को मारते हैं, वे अभिमर हैं।

---

१. अधिक्रियते आत्मा नरकादिषु येन तदधिकरणम्। (स्थाटी प ३८)

१५१. अहियगामिणी (अहितगामिनी)

अधितो संसारो तं गमयतीति अधितगामिणी । (दअचू पृ १६७)

जो अहित/संसार की ओर ले जाती है, वह अहितगामिनी (भाषा) है ।

१५२. अहीकरण (अधीकरण)

अधी—अबुद्धिमान् पुरुषः स तं करोतीत्यधिकरणम् । (निचू ३ पृ ३८)

जिसे अ-धी/बुद्धिहीन मनुष्य करता है, वह अधिकरण/कलह है ।

१५३. अहोकरण (अधःकरण)

अधो अधस्तात् आत्मनः करणं अहोकरणम् । (निचू ३ पृ ३८)

जो आत्मा का पतन करता है, वह अध करण/कलह है ।

१५४. आइच्च (आदित्य)

आदौ अहोरात्रसमयादीनां भव आदित्यः ।[1] (भटी पृ १०६१)

जिससे रात, दिन आदि का काल-विभाग प्रारम्भ होता है, वह आदित्य/सूर्य है ।

१५५ आइण्णा (आचीर्णा)

साधुभिराचर्यते या सा आचीर्णा । (निचू २ पृ ८४)

मुनि जिसका आचरण करते हैं, वह आचीर्णा/आचारविधि है ।

---

१. 'आदित्य' के अन्य निरुक्त—

आदत्ते रसान् । आदत्ते भासं ज्योति ज्योतिषाम् । आदीप्तो भासेति वा । अदितेः पुत्र इति वा । (नि २/१३)

जो रसो को लेता है, वह आदित्य है ।

जो ज्योतिष्पिंडो के प्रकाश को अपने मे समाहित कर लेता है, वह आदित्य है ।

जो चमक से अत्यन्त दीप्त है, वह आदित्य है ।

जो अदिति का पुत्र है, वह आदित्य है ।

१५६. आइण्ण (आकीर्ण)

आकीर्यते व्याप्यते विनयादिभिः गुणैरिति आकीर्णः ।
(उशाटी प ४६)

जो विनय आदि गुणों से आकीर्ण/संपन्न होता है, वह आकीर्ण/जातिमान् अश्व है ।

१५७. आउ (आयुष्)

प्रतिसमयभोगत्वेन आयातीत्यायुः । (निचू ३ पृ २३७)

जिसका प्रतिक्षण उपभोग होता है, वह आयु है ।

एति—गच्छति गत्यन्तरमनेनेत्यायुः । (प्राक १ टी पृ ६)

जिससे जीव एक गति से दूसरी गति में जाता है, वह आयु/आयुष्यकर्म है ।

१५८. आउज्ज (आवर्ज)

अभिमुखीक्रियते मोक्षोऽनेनेति आवर्जः । (प्रज्ञाटी प ६०४)

जो मोक्ष को अभिमुख/निकट करता है, वह आवर्ज/शुभ प्रवृत्तिविशेष है ।

१५९. आउत्त (आयुक्त)

अच्चत्थं जुत्तो आउत्तो । (निचू १ पृ २५)

जो अत्यन्त युक्त/जागरूक है, वह आयुक्त/अप्रमत्त है ।

१६०. आउर (आतुर)

अच्चत्थं तुरति आतुरो । (आचू पृ १०८)

जो अत्यंत आकुल-व्याकुल होता है, वह आतुर है ।

अत्यर्थं तरतीत्यातुरः ।[1] (उचू पृ ५४)

जो अत्यधिक त्वरता/शीघ्रता करता है, वह आतुर है ।

---

१. तुर—त्वरणे सौत्रः आतोरति आतुरः । (अचि पृ १०५)

१६१. आउवेद (आयुर्वेद)

आयुः—जीवितं तद्विदन्ति रक्षितुमनुभवन्ति वोपक्रमरक्षणे विदन्ति वा—लभन्ते यथाकालं तेन तस्मात्तस्मिन् वेत्यायुर्वेदः ।
(स्थाटी प ४१०)

जिसके द्वारा आयु/जीवन के रक्षण और पोषण का ज्ञान होता है, वह आयुर्वेद/चिकित्सा शास्त्र है ।

१६२. आउस (आयुष्मत्)

आयुः—जीवितं तत्संयमप्रधानतया प्रशस्तं प्रभूतं वा विद्यते यस्यासावायुष्मान् । (स्थाटी प ७)

जो प्रशस्त आयु/जीवन वाला है, वह आयुष्मान् है । जो दीर्घायु है, वह आयुष्मान् है ।

१६३. आउह (आयुध)

आयुध्यतेऽनेनेत्यायुधम् । (राटी प २८०)

जिससे युद्ध किया जाता है, वह आयुध/शस्त्र है ।

१६४. आएस (आदेश)

आगतो आदेसं करोतीति आएसो ।[1] (निचू ३ पृ ३६)

जो आकर आदेश देता है, वह आदेश/अतिथि है ।

आदिश्यते यस्मिन्नागते संभ्रमेण परिजनस्तदासनदानादिव्यापारे स आदेशः । (सूटी २ प ३९)

जिसके आने पर परिजनों को त्वरता से आसन आदि देने के लिए आदेश दिया जाता है, वह आदेश/अतिथि है ।

आयासकर आदेशः ।

जो आयास/श्रम पैदा करता है, वह आदेश/अतिथि है ।

आवेश्यते सत्कारपुरस्सरमाकार्यत इत्यावेशः । (व्यभा ६ टी प १)

जिसे सत्कारपूर्वक पुकारा जाता है, वह आदेश/अतिथि है ।

१६५. आगंतार (आगन्त्रगार)

आगंतु जत्थ आगारा चिट्ठंति तं आगंतारं । (आचू पृ ३१२)

जहां आकर गृहस्थ ठहरते हैं, वह आगंत्रगार/धर्मशाला है ।

---

१. आवेश आवेशो वा नाम ज्ञातिकाः स्वजनः सुहृद् मित्रं प्रभुर्वा नायकः परतीर्थिको वा । (व्यभा ६ टी प १)

प्रसंगायाता आगत्य यत्र तिष्ठन्ति तदागन्त्वागारम् । (आटी प ३०६)

प्रयोजनवश आए हुए लोग जहां ठहरते हैं, वह आगन्त्वागार/धर्मशाला है ।

१६६. आगम (आगम)

गम्मंति अत्था जेण सो आगमो ।[1] (आवचू १ पृ ३५)

जिसके द्वारा पदार्थों का अवबोध होता है, वह आगम है ।

अत्तस्स वा वयणं आगमो । (अनुद्वाचू पृ १६)

जो आप्तवचन है, वह आगम है ।

गुरुपारम्पर्येणागच्छतीत्यागमः । (अनुद्वामटी प २०२)

जो गुरु-परंपरा से आता है, वह आगम है ।

१६७. आगर (आकर)

आकुर्वन्ति तस्मिन्नित्याकरः । (उशाटी प ६०५)

जो खोदा जाता है, वह आकर/खान है ।

१६८. आगसण (आकर्षण)

आकृष्यत इति आगसणं । (निचू २ पृ १७६)

जिसके द्वारा आकृष्ट किया जाता है, वह आकर्षण है ।

१६९. आगार (आकार)

आक्रियन्त इत्याकाराः । (आवहाटी २ पृ २३३)

जो (ग्रहण) किए जाते हैं, वे आकार/अपवाद हैं ।

१७०. आगास (आकाश)

आ—मर्यादया तत्संयोगेऽपि स्वकीय स्वरूपेऽवस्थानतः सर्वथा तत्स्वरूपत्वाप्राप्तिलक्षणया प्रकाशन्ते—स्वभावलाभेन अवस्थिति-

---

१. आ—समन्तात् गम्यन्ते—ज्ञायन्ते जीवादयः पदार्था अनेनेति वा आगमः । (अनुद्वामटी प २०२)

करणेन च दीप्यन्ते पदार्थसार्था यत्र तदाकाशमिति ।[1]

(अनुद्वामटी प ६७)

आकाश से संयुक्त होकर भी जहा पदार्थ उसके स्वरूपगत गुणो से अप्रभावित होते हुए अपने मूल रूप मे अवस्थित और अभिव्यक्त रहते हैं, वह आकाश है।

१७१. आघविय (अर्घापित)

अर्घः—पूजा तस्य आपः प्राप्तिर्जाता यस्य तदर्घापितं अर्घं वा आपितं प्रापितं यत्तदर्घापितम्। (प्रटी प ११३)

जिसने अर्घा/पूजा को प्राप्त किया है, वह अर्घापित है।

१७२. आचाल (आचाल)

आचाल्यतेऽनेनातिनिबिडं कर्मादीत्याचालः। (आटी प ५)

जिसके द्वारा अति सघन कर्मों को आचालित/प्रकम्पित किया जाता है, वह आचाल/आचार है।

१७३. आजाति (आजाति)

आजायन्ते तस्यामित्याजातिः। (आटी प ५)

जिसमे (प्राणी) उत्पन्न होते हैं, वह आजाति है।

१७४. आजीविय (आजीविक)

आजीवन्ति ये अविवेकतो लब्धिपूजाख्यात्यादिभिश्चरणादीनि इत्याजीविकाः। (प्रज्ञाटी प ४०६)

जो भिक्षु पूजा-प्रतिष्ठा के लिए संयमजीवन यापन करते हैं, वे आजीविक/पाखंडी है।

१७५. आजोजिया (आयोजिका)

आयोजयन्ति जीवं संसारे इत्यायोजिकाः। (प्रज्ञाटी प ४४५)

जो जीव को संसार में आयुक्त/नियोजित करती है, वह आयोजिका (क्रिया) है।

---

१. 'आकाश' का अन्य निरुक्त—

आकाशन्ते सूर्यादयोऽस्मिन्निति आकाशम्। (अचि पृ ३७)

जहां सूर्य आदि चमकते हैं, वह आकाश है।

१७६. आणा (आज्ञा)

आज्ञाप्यत इति आज्ञा। (आचू पृ २१७)

जो आज्ञप्त होती है, वह आज्ञा है।

आणयंति एयाए आणा। (अनुद्वाचू पृ १६)

जिसके द्वारा कार्य संपन्न किया जाता है, वह आज्ञा है।

आज्ञाप्यते यया हितोपदेशत्वेन सा आज्ञा। (नंचू पृ ८१)

जिसके द्वारा हित-संपादन करने के लिए निर्देश दिया जाता है, वह आज्ञा है।

आ—अभिविधिना ज्ञायन्तेऽर्था यया साऽऽज्ञा। (स्थाटी प १८३)

जिसके द्वारा पदार्थों को जाना जाता है, वह आज्ञा/प्रवचन है।

१७७. आणुगमिय (आनुगमिक)

अनुगच्छतीत्यानुगमिकः। (सूचू २ पृ ३५६)

जो अनुगमन करता है, वह आनुगमिक है।

१७८. आतावय (आतापक)

आतापयति—आतापनां शीतातपादिसहनरूपां करोतीत्यातापकः। (स्थाटी प २८८)

जो आतापना/शीत, ताप आदि को सहता है, वह आतापक है।

१७९. आदाण (आदान)

आदीयत इत्यादानम्। (सूचू २ पृ ३५८)

जो ग्रहण किया जाता है, वह आदान/स्वीकरण है।

१८०. आदाण (आदान)

आदीयते—द्वारस्थगनार्थं गृह्यत इत्यादानम्। (जीटी प २७२)

जो द्वार को बंद करने के लिए ग्रहण किया जाता है, वह आदान/अर्गला आदि है।

१८१. आदाणिज्ज (आदानीय)

आदिज्जति आयत्ते वा आदाणीयं । (आचू पृ २१५)

जो ग्रहण या अधीन किया जाता है, वह आदानीय है ।

१८२. आदीणभोजि (आदीनभोजिन्)

दीणत्तणेण भुजतीति आदीणभोजी । (सूचू १ पृ १८७)

जो दीनता दिखाकर भिक्षा प्राप्त करता है, वह आदीनभोजी है ।

१८३. आदेस (आदेश)

आदिश्यते—आज्ञाप्यत इत्यादेशः । (आटी प ४१४)

जिसके द्वारा क्रिया करने का निर्देश दिया जाता है, वह आदेश/आज्ञा है ।

१८४. आदहण (आदहन)

आहृत्य यस्मिन् सुहृदो दहंति तं आदहणं—श्मशानम् ।

(सूचू २ पृ ३१६)

जहा ले जाकर सुहृद्वर्ग का दहन किया जाता है, वह आदहन/श्मशान है ।

१८५. आधार (आधार)

आधारणादाधारः । (भटी पृ १४३१)

जो सब पदार्थों को धारण करता है, वह आधार/आकाश है ।

१८६. आनयण (आनयन)

आनीयतेऽनेनेति आनयनम् । (उशाटी प ६)

जिसके द्वारा (पूर्वापर सम्बन्ध) जोड़ा जाता है, वह आनयन/प्रस्तावना है ।

१८७. आभिओग (आभियोग्य)

अभिओगं—व्यापारणमर्हन्तीत्याभियोग्याः । (स्थाटी प २६५)

जो अभियोग/आज्ञापित कार्यों में दास की भांति व्यापृत किये जाते है, वे आभियोग्य हैं ।

१८८. आभिओगिय (आभियोगिक)

अभियोजनं—विद्यामन्त्रादिभिः परेषां वशीकरणादि अभियोगः, सोऽस्ति येषां तेन वा चरन्तीति अभियोगिका आभियोगिका वा ।
(प्रज्ञाटी प ४०६)

जो विद्या-मंत्र आदि के द्वारा दूसरो का अभियोजन/वशीकरण करते हैं, वे आभियोगिक हैं ।

१८९. आभिओग्ग (आभियोग्य)

आ—समन्तात् आभिमुख्येन युज्यन्ते—प्रेष्यकर्मणि व्यापार्यन्ते इत्याभियोग्याः । (प्रसाटी प १७९)

जिनको सबके समक्ष प्रेष्य कार्य मे नियुक्त किया जाता है, वे आभियोग्य/कर्मकर हैं ।।

१९०. आभिणिबोहिय (आभिनिबोधिक)

अभिनिबुज्झइ त्ति आभिणिबोहियम् । (न ३५)

जो इन्द्रिय आदि द्वारा जाना जाता है, वह आभिनिबोधिक/मतिज्ञान है ।

अत्थाभिमुहो नियओ बोहो जो सो मओ अभिनिबोहो ।
सो चेवाऽऽभिणिबोहिअ ······ ··············· ।।
(विभा ८०)

जो अर्थाभिमुख नियत बोध होता है, वह आभिनिबोधिक/मतिज्ञान है ।

आता तदभिनिबुज्झए, तेण वाभिणिबुज्झते, तम्हा वाभिणिबुज्झते तम्हि वाभिणिबुज्झए इततो आभिनिबोधिकः । (नंचू पृ १३)

आत्मा जो/जिससे/जिसमें अभिनिबोध प्राप्त करती है, वह आभिनिबोध/मतिज्ञान है ।

१९१. आमलय (आमरक)

रव्युतेर्लक्षुतिरित्यामरकः—सामस्त्येन मारिः । (स्थाटी प ४८६)

जो सामूहिक मरक/वध होता है, वह आमरक है ।

१९२. आमोक्ख (आमोक्ष)

आमुच्यन्तेऽस्मिन्नित्यामोक्षम् । (आटी प ५)

जिसमे प्राणी मुक्त होते हैं, वह आमोक्ष है ।

१९३. आमोस (आमोष)

आ—समन्तात् मुष्णन्ति—स्तैन्यं कुर्वन्तीत्यामोषाः ।
(उशाटी प ३१२)

जो सबकुछ चुरा लेते हैं, वे आमोष/चोर हैं ।

१९४. आय (आय)

एतीत्यायो । (सूचू २ पृ ४२५)

जो प्राप्त होता है, वह आय/लाभ है ।

१९५. आयंक (आतङ्क)

आगत्य संकोचयति आयु सरीरं बुद्धीं च आयङ्को । (आचू पृ ३३२)

जो आयु, शरीर और बुद्धि को सकुचित/स्वल्प करता है, वह आतङ्क/रोग है ।

विविधैर्दुःखविशेषैरात्मानमङ्कयतीति आतङ्कः । (उचू पृ १९१)

जो विविध दु:खो से आत्मा को अंकित/चिह्नित करता है, वह आतंक है ।

आत्मानं तंकयतीत्यातंकः । (उचू पृ १३४)

जो आत्मा को तकित/दु:खित करता है, वह आतक है ।

१९६. आयंकदंसि (आतङ्कदर्शिन्)

आतंकं पासति आतंकदंसि । (आचू पृ ११३)

जो आतंक को देखता है, वह आतकदर्शी है ।

१९७. आयंतम (आत्मतम)

आत्मानं तमयति—खेदयतीत्यात्मतमः । (स्थाटी प २०७)

जो आत्मा को तमित/खिन्न करता है, वह आत्मतम/आचार्य आदि है ।

१९८. आयंदम (आत्मदम)

आत्मानं दमयति—शमवन्तं करोति शिक्षयति वेत्यात्मदमः ।
(स्थाटी प २०७)

जो आत्मा का दमन/शमन करता है, वह आत्मदम है ।

जो आत्म-दमन की शिक्षा प्रदान करता है, वह आत्मदम है ।

१९९. आयंस (आदर्श)

आदृश्यते अस्मिन्नित्यादर्शः । (आटी प ५)

जिसमें प्रतिबिम्ब देखा जाता है, वह आदर्श/दर्पण है ।

२००. आयतण (आयतन)

एत्य तस्मिन् यतति आयतणं । (दअचू पृ १०१)

जहां आकर प्रवृत्ति की जाती है, वह आयतन/स्थान है ।

आइज्जंति अस्ससंति वा आयतणं । (आचू पृ ७३)

जो स्वीकार किया जाता है, वह आयतन है ।

जो आश्वस्त करता है, वह आयतन है ।

२०१. आयतर (आत्मतर)

आत्मानं केवलं तारयन्तीत्यात्मतराः । (व्यभा ३ टी प ३)

जो केवल आत्मा/स्वय को तारते हैं, वे आत्मतर हैं ।

२०२. आयदंड (आत्मदण्ड)

आत्मानं दण्डयति आयदंडे । (सूचू २ पृ ४२७)

जो आत्मा को दण्डित करता है, वह आत्मदंड है ।

२०३. आययट्ठि (आयतार्थिन्)

आयतं अट्ठाणविप्पकरिसतो मोक्खो, तेण तंमि वा अत्थी आययत्थी ।

जो आयत/मोक्ष की आकांक्षा करता है, वह आयतार्थी है ।

आयती आगामी कालो तम्मि सुहत्थी आययत्थी । (दअचू पृ २२६)

जो आयत/आगामी काल में सुख का इच्छुक है, वह आयतार्थी है ।

२०४. आययण (आयतन)

आयरंति तमिति आययणं । (आचू पृ १६८)

जिसका आचरण किया जाता है, वह आयतन/चारित्र है ।

समस्तपापारम्भेभ्यः आत्मा आयत्यते—आनियम्यते यस्मिन् कुशलानुष्ठाने वा यत्नवान् क्रियते इत्यायतनम् । (आटी प २०६)

जो समस्त पापमय प्रवृत्तियो से आत्मा को नियंत्रित करता है और कुशल अनुष्ठान मे प्रवृत्त करता है, वह आयतन/चारित्र है ।

२०५. आयरक्ख (आत्मरक्ष)

अप्प रक्खतीति आयरक्खो । (सूचू २ पृ ३०६)

जो आत्मा की/अपनी रक्षा करता है, वह आत्मरक्षक है ।

२०६. आयरिअ (आचरित)

आचर्यतेस्म बृहत्पुरुषैरप्याचरितम् । (व्यभा १ टी प ६)

महान् व्यक्तियो ने जिसका आचरण किया है, वह आचरित है ।

२०७. आयरिय (आचार्य)

आयारं आयरमाणा तहा पभासंता ।[1]
आयार दंसंता[2] आयरिया तेण वुच्चंति ।। (आवनि ९९४)

जो आचार का आसेवन करते है, वे आचार्य हैं ।

---

१. **आचारो—ज्ञानाचारादिः पञ्चधा आ—मर्यादया वा चारो विहार आचारस्तत्र स्वयं करणात् प्रभाषणात् प्रदर्शनाच्चेत्याचार्याः ।** (भटी प ३,४)

जो स्वयं आचार का पालन करते है, दूसरो से कराते हैं और आचार की प्ररूपणा करते है, वे आचार्य हैं ।

२. **आचारं दर्शयन्तः सन्तः प्रत्युपेक्षणादिक्रियाद्वारेण, मुमुक्षुभिः सेव्यन्ते येन कारणेनाचार्यास्तेनोच्यत इति ।** (आवहाटी १ पृ २९९)

आचार-विधि का मार्ग-दर्शन देने के कारण शिष्यवर्ग जिनकी सेवा करते हैं, वे आचार्य हैं ।

जो आचार की प्रभावना करते हैं, वे आचार्य हैं।

जो आचार का प्रशिक्षण देते हैं, वे आचार्य हैं।

मर्यादया चरन्तीति आचार्याः।

जो मर्यादापूर्वक चलते हैं, वे आचार्य हैं।

आचारेण वा चरन्तीति आचार्याः। (आवचू १ पृ ५८५)

जो आचारविधि के अनुसार चलते हैं, वे आचार्य हैं।

आचर्यते—सेव्यते कल्याणकामैरित्याचार्यः। (प्रसाटी प २४)

कल्याण की कामना करने वाले व्यक्ति जिसकी सेवा करते हैं, वह आचार्य है।

आ—ईषद् अपरिपूर्णाः चाराः हेरिका ये ते आचाराः चार कल्पा इत्यर्थः। युक्तायुक्त विभागनिपुणाः विनेयाः अतस्तेषु साधवो यथावच्छास्त्रार्थोपदेशकतया इत्याचार्याः। (भटी प ४)

गण मे जो शिष्य गुप्तचर सदृश होते हैं, वे आ-चार हैं। उनमें जो सूत्र और अर्थ के व्याख्याता है, वे आचार्य हैं।

२०८. आयव (आतप)

आ—समन्तात् तपति संतापयति जगदिति आतपः। (उशाटी प ३८)

जो चारो ओर से तपता है और सभी को संतप्त करता है, वह आतप है।

२०९. आयवि (आत्मवित्)

आत्मानं श्वभ्रादिपतनरक्षणद्वारेण वेत्तीत्यात्मवित्। (आटी प १५३)

जो आत्मा को जानता है, वह आत्मविद् है।

जो आत्मरक्षा के उपायो को जानता है, वह आत्मविद् है।

२१०. आयाण (आदान)

आदीयतेऽनेनेत्यादानः। (दटी प १६८)

जिससे गन्तव्य प्राप्त किया जाता है, वह आदान/मार्ग है।

२११. आयाण (आदान)

आदीयते—प्रथममेव गृह्यत इत्यादानम्। (आटी प १६६)

जो पहले ग्रहण किया जाता है, वह आदान/प्रारम्भ है।

२१२. आयार (आचार)

आचर्यतेऽसावित्याचारः। (दजिचू पृ २७१)

जिसका आचरण किया जाता है, वह आचार है।

२१३. आयावय (आतापक)

आतापयति—शीतादिभिर्देहं संतापयतीत्यातापकः। (औटी पृ ७५)

जो शरीर को गर्मी, सर्दी आदि से सतप्त करता है, वह आतापक है।

२१४. आयावाइ (आत्मवादिन्)

आत्मानं वदितुं शीलमस्येति आत्मवादी। (आटी प २१)

जो आत्मा का कथन करता है, वह आत्मवादी है।

२१५. आयाहम्म (आत्मघ्न)

आत्मानं दुर्गतिप्रपातकारणतया हन्ति—विनाशयतीत्यात्मघ्नम्।

(पिटी प ३६)

जो आत्मा का हनन/विनाश करता है, वह आत्मघ्न/आत्म-विनाशक है।

२१६. आरंभ (आरम्भ)

आरभ्यते—विनाश्यते इति आरम्भः। (प्रटी प ६)

जिसके द्वारा प्राणियो का आरंभ/विनाश किया जाता है, वह आरभ/हिंसा है।

२१७. आरंभजीवि (आरंभजीविन्)

आरंभेण जीवतीति आरंभजीवी। (आचू पृ १६२)

जो आरम्भ/हिंसा से जीवन चलाता है, वह आरम्भजीवी है।

२१८. आरण्णिय (आरण्यक)

अरण्णे वसंतीति आरण्णिया । (दसुचू प १३)

जो अरण्य/जंगल में रहते हैं, वे आरण्यक हैं ।

२१९. आराम (आराम)

आगत्य रमंते यस्मिन् इत्यारामः । (सूचू २ पृ ४५१)

जहां आकर लोग क्रीड़ा करते हैं, वह आराम है ।

आरमन्ति येषु माधवीलतादिषु दम्पत्यादीनि ते आरामाः ।
(भटी प २३८)

जहां माधवी आदि लताओं से बने कुञ्जों मे दम्पति आकर क्रीड़ा करते हैं, वे आराम हैं ।

२२०. आराहय (आराधक)

आराधयन्ति—अविकलतया निष्पादयन्ति सम्यग्दर्शनादीनि इत्याराधका भवन्ति । (उशाटी प २३३)

जो सम्यग्दर्शन आदि की पूर्ण आराधना करते हैं, वे आराधक हैं ।

२२१. आरिय (आर्य)

आराद्याताः सर्वहेयधर्मेभ्य इत्यार्याः ।[1] (सूटी २ प १५)

जो सब हेय धर्मों से दूर रहते हैं, वे आर्य हैं ।

२२२. आरोवणा (आरोपणा)

आरोप्यते इति आरोपणा । (व्यभा १ टी प १५)

जो आरोपित की जाती है, वह आरोपणा/प्रायश्चित्त है ।

२२३. आलंबण (आलम्बन)

आलंबिज्जति जं तमालंबणं । (निचू १ पृ १२६)

---

१. 'आर्य' का अन्य निरुक्त—,

अर्यतेऽभिगम्यते आर्यः । (अचि पृ ८८)

जो (प्रशस्त रूप में) जाना जाता है, वह आर्य है ।

आलम्ब्यते—पतद्भिराश्रीयते इत्यालम्बनम् । (प्रसाटी प २२६)

गिरते हुए व्यक्ति जिसका सहारा लेते हैं, वह आलम्बन है ।

२२४. **आलय** (आलय)

आलीयन्ते तस्मिन्नित्यालयः । (उचू पृ १६३)

जिसमे निवास किया जाता है, वह आलय/मकान है ।

२२५. **आलवण** (आलपन)

अत्यर्थं लवणं आलवणं । (दश्रुचू प १५)

अधिक बोलना आलपन है ।

२२६. **आलीण** (आलीन)

ज्ञानादिषु आ समन्तात् लीना आलीनाः । (व्यभा १० टी प ६०)

जो ज्ञान आदि मे सम्पूर्ण रूप से लीन है, वे आलीन/तल्लीन है ।

२२७. **आलेव** (आलेप)

आलिप्यते अनेनेत्ति आलेपः । (निचू २ पृ २१६)

जो लिप्त करता है, वह आलेप है ।

२२८. **आलोग** (आलोक)

आलोक्यते ज्ञायतेऽनेनेत्यालोकः । (नटि पृ १६२)

जिसके द्वारा देखा जाता है/जाना जाता है, वह आलोक/प्रकाश है, ज्ञान है ।

२२९. **आलोय** (आलोक)

आलोक्कतीति आलोको । (आचू पृ १२५)

जो आलोकित/स्पष्ट अभिव्यक्त है, वह आलोक है ।

२३०. **आलोयण** (आलोकन)

आलोक्यन्ते दिशोऽस्मिन् स्थितैरित्यालोकनम् । (उशाटीप ४५१)

जहा से दिशाओ का अवलोकन किया जाता है, वह आलोकन/गवाक्ष है ।

२३१. आवट्ट (आवर्त्त)

आवर्त्तन्ते—परिभ्रमन्ति प्राणिनो यत्र स आवर्त्तः। (आटी प ६२)

जिसमें प्राणी परिभ्रमण करते हैं, वह आवर्त/संसार है।

२३२. आवट्टण (आवर्त्तन)

आ—मर्यादया वर्त्तनमावर्त्तनम्। (नंटी पृ ५१)

मर्यादापूर्वक वर्तन करना आवर्त्तन है।

२३३. आवन्नपरिहार (आपन्नपरिहार)

आपन्नेन प्रायश्चित्तस्थानेन परिहारो वर्जनं साधोरिति गम्यते आपन्नपरिहारः। (व्यभा २ टी प ११)

प्राप्त प्रायश्चित्त का परिहार करना आपन्नपरिहार है।

२३४. आवरण (आवरण)

आव्रियते—आच्छाद्यतेऽनेनेत्यावरणम्। (प्रसाटी प ३५६)

जो आच्छादित करता है, वह आवरण है।

२३५. आवसहिअ (आवसथिक)

आवसहेसु वसंतीत्यावसहिकाः। (दश्रुचू प ६१)

जो आवसथ/धर्मशाला मे वास करते हैं, वे आवसथिक (तापस) हैं।

२३६. आवस्सग (आवश्यक)

समणेण सावएण य, अवस्स कायव्वयं हवइ जम्हा।
अंतो अहोनिसिस्स य, तम्हा आवस्सयं नाम॥

(विभा ८७३)

जो प्रातः और सायं श्रमण और श्रावक के द्वारा अवश्य-करणीय है, वह आवश्यक/प्रतिक्रमण है।

आ वस्सं वा जीवं करेइ जं नाणदंसणगुणाणं। (विभा ८७५)

जो गुणों को आत्मा के वशवर्ती करता है, वह आवश्यक है।

अवस्सं कायव्वं तेणावस्सममिदं। (विभा ८७४)

अवश्यं भावित्वाद् वाच्यत्वाद्वाऽऽवश्यकम्। (स्थाटी प २१८)

जो अवश्य होता है और जिसका अवश्य कथन किया जाता है, वह आवश्यक है।

आसमन्ताद् वश्या इन्द्रियकषायादिभावशत्रवो येषां ते तथा तैरेव क्रियते यद् तदावश्यकम्। (अनुद्वामटी प २८)

जो जितेन्द्रिय व्यक्तियों के द्वारा करणीय है, वह आवश्यक है।

२३७. आवात (आपात)

आपतंत्यनेनेत्यापातः। (उचू पृ ५४)

जहां लोगो का निरन्तर आवागमन रहता है, वह आपात है।

२३८. आवास (आवास)

आसमन्ताद्वसन्ति तेष्विव्यावासाः। (उशाटी प २५२)

जिसमे सदा-सदा के लिए रहा जाता है, वे आवास/गृह हैं।

२३९. आवासय (आवासक)

आ—मज्जायाए वासं करेइत्ति आवासं।

जहा मर्यादापूर्वक वास किया जाता है, वह आवासक/आवश्यक/प्रतिक्रमण है।

पसत्थगुणेहिं अप्पाणं छावेतीति आवासं।

जो प्रशस्त गुणो से आत्मा को आच्छादित करता है, वह आवासक/आवश्यक है।

सुण्णमप्पाणं तं पसत्थभावेहिं आवासेतीति आवासं।[1] (अनुद्वाचू पृ १४)

जो गुणशून्य आत्मा को प्रशस्त भावो से आवासित करता है, वह आवासक/आवश्यक है।

समग्रस्यापि गुणग्रामस्यावासकमित्यावासकम्। (अनुद्वामटी प २८)

जो समस्त गुणो का निवास स्थान है, वह आवासक/आवश्यक सूत्र है।

---

१. गुणशून्यमात्मानमावासयति गुणैरित्यावासकम्। (आवहाटी १ पृ ३४)

२४०. आवाह (आवाह)

आहूयन्ते स्वजनास्ताम्बूलदानाय यत्र स आवाहः । (जीटी प २८२)

जहां सगे-सबंधी तांबूल-दान के लिए बुलाए जाते हैं, वह आवाह/विवाह या उत्सव है।

२४१. आवेस (आवेश)

आविशतीत्यावेशः ।[1]

जो विशेष रूप से घर में प्रवेश करता है, वह आवेश/अतिथि है।

आवेशनं नाम यस्मिन् स्थाने प्रविष्टेन सागारिकस्यायासो स आवेश आवेशो वा । (व्यभा ६ टी प १)

जिसके आविष्ट/प्रविष्ट होने पर गृहस्थ को आयास/प्रयास करना होता है, वह आवेश/अतिथि है।

२४२. आवेसण (आवेशन)

आगंतु विसंति जहियं आवेसणं । (आचू पृ ३११)

जहा लोग चारो ओर से प्रविष्ट होते हैं, वह आवेशन/शून्यगृह है।

२४३. आस (अश्व)

अश्नातीत्यश्वः ।

जो मार्ग का पार पा लेता है, वह अश्व है।

आशु धावति न च श्राम्यतीत्यश्वः । (बृटी पृ ६४)

जो शीघ्र दौडता है, पर थकता नहीं, वह अश्व है।

२४४. आस (आस्य)

असत्यनेनेति आसयं ।[2] (निचू १ पृ १४२)

जिसमें ग्रास डाला जाता है, वह आस्य/मुख है।

जिससे ग्रास चबाया जाता है, वह आस्य/मुख या दाढ़ा है।

---

१. देखो 'आएस'।

२. 'आस्य' का अन्य निरुक्त—

आस्यन्दत एनमन्नमिति आस्यम् । (नि १/६)

जिसमें अन्न प्रवेश करता है, वह आस्य/मुख है।

२४५. आसंदी (आसन्दी)

आसनं ददातीत्यासंदी । (सूचू २ पृ ३६१)

जो आसन देती है, वह आसन्दी/कुर्सी है ।

२४६. आसण (आसन)

आसियते जम्हि तमासणं ।[1] (निचू १ पृ ९)

आस्यते—स्थीयते अस्मिन्निति वाऽऽसनम् । (आटी प १३३)

जिस पर बैठा जाता है, वह आसन है ।

२४७. आसम (आश्रम)

आ इति—स्वपरप्रयोजनाभिव्याप्त्या श्राम्यन्ति—खेदमनुभवन्त्यस्मिन्नित्याश्रमाः । (उशाटी प ३१५)

जिनमें स्व और पर के लिए श्रम किया जाता है, वे आश्रम/गृह हैं ।

२४८. आसम (आश्रम)

आसमन्ताद् श्राम्यन्ति—तपः कुर्वन्त्यस्मिन्नित्याश्रमः ।

(उशाटी प ६०५)

जहा तपस्वी श्रम/तपस्या करते हैं, वह आश्रम है ।

२४९. आसव (आश्रव)

आ—समन्तात् शृण्वन्ति—गुरुवचनमाकर्णयन्तीत्याश्रवाः ।

(उशाटी प ४९)

जो गुरु-वचनो का पूर्णरूप से श्रवण करते है, वे आश्रव/आज्ञाकारी शिष्य हैं ।

२५०. आसव (आश्रव)

आश्रवत्यष्टप्रकारं कर्म्म यैरारम्भैस्ते आस्रवाः । (आटी प १८१)

जिन आरम्भो/प्रयत्नो से अष्टविध कर्म का आस्रवण होता है, वे आश्रव हैं ।

आश्रूयते—उपार्ज्यते कर्म एभिरित्याश्रवाः । (प्रसाटी प १३५)

जिनके द्वारा कर्मों का उपार्जन किया जाता है, वे आश्रव हैं ।

---

१. यत्थ यत्थ आसति निसीदति, तं आसनं । (वि १/७१)

२५१. आसव (आश्रव)

आश्रवति—ईषत् क्षरति जलं यैस्ते आश्रवाः । (भटी प ८३)

जिनसे थोड़ा-थोड़ा जल झरता है, वे आस्रव/स्रोत हैं ।

२५२. आसव (आस्नव)

आ अभिविधिना स्नौति—स्रवति कर्म येभ्यस्ते आस्नवाः ।

(प्रटी प २)

जिससे कर्म प्रवाहित होते हैं, वह आस्नव/आश्रव है ।

२५३. आसा (आशा)

आससति तमिति आसा ।[1] (आचू पृ ७२)

जो मनुष्य को आशान्वित करती है, वह आशा है ।

२५४. आसायणा (आशातना)

आयाय सातणाणा, आयस्स उ साडणा जा उ ।

सा होती आसातणा ।[2]

आतस्स साडणं तो, यकारलोवम्मि होइ आसयणा ।

(जीतभा ८६२-६४)

जो आय/ज्ञान आदि का शाटन/विनाश करती है, वह आशातना है ।

सम्यक्त्वादिलाभं शातयति—विनाशयतीत्याशातना ।

(उशाटी प ५७९)

जो सम्यक्त्व आदि का विनाश करती है, वह आशातना है ।

---

१. 'आशा' के अन्य निरुक्त—

आश्यति अनया आशा । (अचि पृ ८९)

जिसके द्वारा व्यक्ति क्षीण हो जाता है, वह आशा/आकांक्षा है ।

आसमन्तात् अश्नुते (इति आशा) । (आप्टे पृ ३६६)

जो सब कुछ पाना चाहती है, वह आशा है ।

२. शातविद्युक्त आ—सामस्त्येन शात्यन्ते अपध्वस्यन्ते यकाभिस्ता आशातना । (स्थाटी प ४८८)

२५५. आसाविणी (आस्राविनी)

आश्रवतीति आश्राविनी । (सूचू १ पृ २०२)

जो झरती है, जो छेदवाली है, वह आस्राविनी (नौका) है ।

२५६. आसास (आश्वास)

आश्वसन्त्यस्मिन्नित्याश्वासः । (आटी प ५)

जिसमे प्राणी सुखपूर्वक श्वास लेते है, वह आश्वास/विश्राम-स्थल है ।

आश्वासयतीति आश्वासः । (व्यभा ४/२ टी प ६७)

जो आश्वस्त करता है, वह आश्वास/विश्राम-स्थल है ।

२५७. आसीविस (आशीविष)

सप्पस्स दाढा आसी, तीए विसं जस्स सो आसीविसो । (दअचू पृ २०८)

जिसकी आशी/दाढा मे विष होता है, वह आशीविष (सर्प) है ।

२५८. आहरण (आहरण)

आहरति तमत्थे विण्णाणमिति आहरणं । (दअचू पृ २०)

जो प्रतिपाद्य का अर्थ मे आहरण करता है, वह आहरण/उदाहरण है ।

२५९. आहाकम्म (आधाकर्मन्)

ओरालसरीराणं, उद्दवणऽइवायणं तु जस्सट्ठा ।
मणमाहित्ता कुव्वति, आहाकम्मं तयं बेन्ति ।। (जीतभा ११००)

मन मे विचार कर जिसके लिए औदारिक शरीरवाले प्राणियो का अपद्रवण/पीड़न और अतिपात किया जाता है, वह आधाकर्म है ।

साधूनामाधया—प्रणिधानेन यत् कर्म षट्कायविनाशेनाशनादिनिष्पादनं तद् आधाकर्म । (बृटी पृ १४१८)

साधुओ को लक्षित कर किया जाने वाला कर्म (अशन आदि का निष्पादन) आधाकर्म है ।

२६०. आहार (आह्वार)

आहारिज्जतीति आहारो ।[1] (आचू पृ २६१

जिसमें से रस का आहरण किया जाता है, वह आहार है।

२६१. आहार (आधार)

आ सामस्त्येन धारणमाधारः । (व्यभा ३ टी प १८

जो सम्पूर्णरूप से धारण करता है, वह आधार है।

२६२. आहारग (आहारक)

चतुर्दशपूर्वविदा आह्रियते—गृह्यते इत्याहारकम् ।

(अनुद्वामटी प १८१

चतुर्दशपूर्वियो द्वारा विशेष प्रयोजनवश जिस शरीर व आहरण/ग्रहण किया जाता है, वह आहारक (शरीर) है।

आह्रियन्ते—गृह्यन्ते तीर्थंकरादिसमीपे सूक्ष्मा जीवादयः पदार्था अने नेत्याहारकम् । (प्राक ४ टी पृ ४८

जिसके द्वारा केवली के समीप जीव आदि सूक्ष्म पदार्थों क आहरण/परिज्ञान किया जाता है, वह आहारक (शरीर) है।

२६३. इंगिणीमरण (इङ्गिनीमरण)

इङ्गिते प्रदेशे मरणमिङ्गितमरणम् । (आटी प २६१)

इगित/संकेतित स्थान मे मरण का वरण करना इंगितमरण है

२६४. इंद (इन्द्र)

इन्दतीति इन्द्रः ।[2] (अनुद्वामटी प २३६)

जो ऐश्वर्यसम्पन्न है, वह इन्द्र है।

२६५. इंदगोवग (इन्द्रगोपक)

इंदो गोवयतीति इन्द्रगोपको ।[3] (निचू १ पृ ५)

इन्द्र जिसका गोपन/रक्षण करता है, वह इन्द्रगोपक/कीट विशेष है।

---

१. आहरन्ति रसमस्मादित्याहारः । (आप्टे पृ ३७७)

२. इदि-ऐश्वर्ये ।

३. इन्द्रो—गोपो रक्षकोऽस्य वर्षाभवत्वादस्य । (आप्टे पृ १७५)

२६६. इंदिय (इन्द्रिय)

इन्दो इयति अनेनेति इंदियं।[1] (आवचू १ पृ २५६)

जिसके द्वारा इंद्र/जीव जाना जाता है, वह इन्द्रिय है।

जिसके द्वारा इंद्र/जीव जानता है, वह इन्द्रिय है।

२६७. इच्छाकार (इच्छाकार)

एषणमिच्छा, करणं कारः, इच्छया बलाभियोगमन्तरेण कार इच्छाकारः। (स्थाटी प ४७८)

इच्छापूर्वक कार्य में प्रवृत्त होना इच्छाकार (सामाचारी) है।

२६८. इच्छियव्व (इप्सितव्य)

मुमुक्षुभिरिप्स्यते प्राप्तुमिष्यते इप्सितव्यः। (व्यभा १ टी प ६)

मुमुक्षु जिसे पाने की इच्छा करता है, वह इप्सितव्य/मोक्ष है।

२६९. इट्ठ (इष्ट)

इष्यन्ते स्म अर्थक्रियार्थिभिरितीष्टाः। (स्थाटी प ६०)

प्रयोजन की सिद्धि के लिए जिसकी इच्छा की जाती है, वह इष्ट है।

२७०. इत्थत्थ (इत्थस्थ)

इत्थं तिष्ठतीति इत्थंस्थम्। (आवहाटी १ पृ २६७)

"यह इस रूप में है"—इस प्रकार जिसका निर्देश किया जा सके, वह इत्थस्थ/सांसारिक प्राणी है।

२७१. इब्भ (इभ्य)

इभो—हस्ती तत्प्रमाणं द्रव्यमर्हतीतीभ्यः। (अनुद्वामटी प २१)

जिसके पास इभ—हाथी (छुप जाए) जितना धन होता है, वह इभ्य है।

---

१. 'इंदिय' के अन्य निरुक्त—

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा। (आप्टे पृ ३७६)

२७२. इसि (ऋषि)

ऋषति धर्ममिति ऋषिः।[1] (उचू पृ २०७)

जो धर्म को जानता है, वह ऋषि है।

जो धर्म में गति करता है, वह ऋषि है।

२७३. इहत्थ (इहस्थ)

इहैव विवक्षिते ग्रामादौ तिष्ठतीति इहस्थः। (स्थाटी प २४१)

जो इह/विवक्षित ग्राम आदि में रहता है, वह इहस्थ है।

२७४. इहत्थ (इहास्थ)

इहैव जन्मनि भोगसुखादि आस्था—इदमेव साध्विति बुद्धिर्यस्य स इहास्थः। (स्थाटी प २४१)

जिसकी वार्तमानिक जन्म के भोगों में आस्था है, वह इहास्थ/इहस्थ है।

२७५. ईसिपब्भारा (ईषत्प्राग्भारा)

ईसित्ति अप्पे भावे, प इति प्रायोवृत्त्या, भार इति भारक्कंतस्स पुरिसस्स गायं पायसो ईसिं णयं भवति, जा य एवं ठिता सा पुढवी ईसिपब्भारा। (निचू १ पृ ३२)

जो पृथ्वी ईषत्/कुछ झुकी हुई है, वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी है।

२७६. ईहा (ईहा)

ईहइ त्ति ईहा। (नंदीचू पृ ४६)

ऊहापोह करना ईहा है।

२७७. उंछ (उञ्छ)

उञ्छ्यते—अल्पाल्पतया गृह्यत इत्युञ्छः। (स्थाटी प २०६)

जो थोड़ा-थोड़ा लिया जाता है, वह उञ्छ (भिक्षा) है।

---

१. 'ऋषि' के अन्य निरुक्त—

ऋषति जानाति तत्त्वं ऋषिः, दर्शनाद्वा ऋषिः। (अचि पृ १४)

जो तत्त्व को जानता है वह ऋषि है।

जो द्रष्टा है, वह ऋषि है।

२७८. उक्कोस (उत्कर्ष)

उक्कस्यतेऽनेनेति उक्कोसो । (सूचू १ पृ ४९)

जिसके द्वारा उत्कर्ष किया जाता है, वह उत्कर्ष/मान है ।

२७९. उक्कोसण (उत्कर्षण)

ऊर्द्धं कसण उक्कोसणं । (आचू पृ ३५७)

जो ऊपर की ओर खींचता है, वह उत्कर्षण है ।

२८०. उक्कंचण (उत्कञ्चन)

ऊर्ध्वं कञ्चनं मूल्याद्यारोपणार्थं उत्कञ्चनम् । (ज्ञाटी प ८६)

अल्पमूल्य मे उत्कञ्चन/स्वर्ण का सा अधिक मूल्य आरोपित करना उत्कचन/माया है ।

२८१. उक्खित्तचरअ (उत्क्षिप्तचरक)

उत्क्षिप्तं—स्वप्रयोजनाय पाकभाजनादुद्धृतं तदर्थमभिग्रहविशेषा-च्चरति—तद्गवेषणाय गच्छतीत्युत्क्षिप्तचरकः । (स्थाटी प २८७)

जो उत्क्षिप्त (भोजनपात्र से निकाली हुई) भिक्षा ग्रहण करता है, वह उत्क्षिप्तचरक है ।

२८२. उग्गह (अवग्रह)

अव इति प्रथमतो ग्रहण परिच्छेदनमवग्रहः । (स्थाटी प २७३)

जो अव/प्रारम्भिक ग्रहण/बोध है, वह अवग्रह है ।

२८३. उग्गहण (अवग्रहण)

सूत्रमर्थं वा झगित्येवावगृह्णातीति अवग्रहणः । (बृटी पृ २२८)

जो सूत्र और अर्थ को शीघ्र ग्रहण करता है, वह अवग्रहण/मेधावी है ।

२८४. उच्चार (उच्चार)

उच्चवइ सरीराओ उच्चारो ।[1] (आनि ३२१)

जो शरीर से तीव्र गति से बाहर निकलता है, वह उच्चार/मल है ।

२८५. उज्जाण (उद्यान)

ऊर्ध्वं यानं उद्यानम् । (सूचू १ पृ ८८)

जिसको प्राप्त करने के लिए क्रमशः ऊंचाई पर चढ़ना पड़ता है, वह उद्यान/उपवन है ।

उद्यान्ति यत्र तच्चम्पकादितरुखण्डमण्डितमुद्यानम् ।
(अनुद्वामटी प २२)

जो ऊंचाई पर हो तथा एक ही प्रकार के वृक्षों से मंडित हो, वह उद्यान है ।

२८६. उज्जुकड (ऋजुकृत)

रिजु—संजमो, रिजुं करोतीति उज्जुकडो । (आचू पृ २३)

जो ऋजु/सयम करता है, वह ऋजुकृत/संयमी है ।

२८७. उज्जुदंसि (ऋजुदर्शिन्)

उज्जु—संजमो समया वा, उज्जू रागद्दोसपक्खविरहिता अविग्गहगती वा, उज्जू मोक्खमग्गो, तं पस्संतीति उज्जुदंसिणो ।
(दअचू पृ ६३)

जो ऋजु/सयम को देखता है, वह ऋजुदर्शी है ।

१.(क) शरीरात् उत्—प्राबल्येन च्यवते, अपयाति चरतीति वा उच्चारः । (आटी प ४०८)

सरीराओ उच्छलति—णिप्फिडयति तेण उच्चारो । (आचू पृ ३६८)

जो शरीर से बाहर निकलता है, वह उच्चार (मल) है ।

(ख) 'उच्चार' का अन्य निरुक्त—

उच्चार्यते प्रेर्यते उच्चारः । (अचि पृ १४३)

जो उत्सर्ग के लिए प्रेरित करता है, वह उच्चार है ।

जो ऋजु/समता को देखता है, वह ऋजुदर्शी है।

जो ऋजु/मध्यस्थता से देखता है, वह ऋजुदर्शी है।

जो ऋजु/मोक्षमार्ग को देखता है, वह ऋजुदर्शी है।

२८८. उज्जुसुअ (ऋजुसूत्र)

ऋजु—प्रगुणम्—अकुटिलमतीतमनागतपरकीयवक्रपरित्यागात् वर्त-मानक्षणविवर्त्ति स्वकीयं च सूत्रयति-निष्टंकितं दर्शयतीति ऋजुसूत्रः। (आवमटी प ३६५)

जो अतीत और अनागत से व्यतिरिक्त ऋजु/वर्तमान क्षण को सूत्रित/प्रदर्शित करता है, वह ऋजुसूत्र (नय) है।

ऋजु—अतीतानागतपरकीयपरिहारेण प्राञ्जलं वस्तु सूत्रयति—अभ्युपगच्छतीति ऋजुसूत्रः। (अनुद्वामटी प १६)

जो वस्तु के ऋजु/शुद्ध स्वरूप को जानता है, वह ऋजुसूत्र (नय) है।

२८९. उज्जोय (उद्योत)

उद्योतयतीति उद्योत.। (उशाटीप ३८)

जो उद्योतित/प्रकाशित करता है, वह उद्योत है।

२९०. उज्झ (उज्झ/उध्य)

उत्ति उवओगकरणे झत्ति अ झाणस्स होइ निद्देसे।[1]

(आवनि ९९८)

जो उपयोगपूर्वक ध्यान करते हैं, वे उज्झ/उपाध्याय है।

२९१. उट्टियासमण (उष्ट्रिकाश्रमण)

उष्ट्रिका—महामृण्मयो भाजनविशेषस्तत्र प्रविष्टा ये श्राम्यन्ति—तपस्यन्तीत्युष्ट्रिकाश्रमणाः। (औटी पृ २०१)

जो उष्ट्रिका/विशाल मृत्तिका पात्र मे प्रविष्ट हो श्रम/तपश्चरण करते है, वे उष्ट्रिकाश्रमण हैं।

---

१. उ इत्येवक्षरं उपयोगकरणे वर्तते, ज्झ इति चेदं ध्यानस्य भवति निर्देशे, ततश्च प्राकृतशैल्या एतेन कारणेन भवति उज्झा, उपयोग-पुरस्सरं ध्यानकर्त्तारः। (आवहाटी पृ २९९)

२९२. उण्णत (उन्नत)

उज्झियं नतं—पूर्वप्रवृत्तनमनमभिमानादुन्नतम् ।

(भटी पृ १०५१)

अभिमानवश विनम्रता को छोड़ देना उन्नत/मान है ।

२९३. उण्णय (उन्नय)

उज्झितो नयो—नीतिरभिमानादेवोन्नयः । (भटी पृ १०५१)

अभिमानवश नय/नीतिमार्ग से हट जाना उन्नय/मान है ।

२९४. उण्ह (उष्ण)

उषति—दहति जन्तुमिति उष्णम् । (उशाटी प ३८)

जो प्राणियों को जलाता है, वह उष्ण/अग्नि है ।

२९५. उत्तप्प (उत्त्रप्य)

उत्प्राबल्येन त्रप्यते लज्ज्यते येन तत् उत्त्रप्यम् ।

(व्यभा १० टी प ३८)

जिससे लज्जित होना पड़ता है, वह उत्त्रप्य/अवयवहीन शरीर है ।

२९६. उत्तम (उत्तम)

मिच्छत्तमोहणिज्जा नाणावरणाचरित्तमोहाओ ।

तिविहतमा उम्मुक्का[1] तम्हा ते उत्तमा[2] हुंति ॥ (आवनि १०९३)

जो तीन प्रकार के तम (मिथ्यात्व, अज्ञान और कषाय) से उन्मुक्त हैं, वे उत्तम/सिद्ध हैं ।

तमो—संसारो ताओ उम्मुक्का तेण उत्तमाः ।

जो तम/संसार से उन्मुक्त हैं, वे उत्तम हैं ।

ओघातितो वा तमो येस्ते उत्तमाः । (आवचू २ पृ १२)

---

१. उद्—उद्भवोर्ध्वगमनोच्छेदनेषु । (आवचू २ पृ ११,१२)

२. 'उत्तम' का अन्य निरुक्त—

अतिशयेन उद्गतमुत्तमम् । (अचि पृ ३२२)

जो विशिष्ट है, वह उत्तम है ।

जिन्होंने तम को विनष्ट कर दिया, वे उत्तम हैं ।

ऊर्ध्वं वा तमस इत्युत्तमसः । (आवहाटी २ पृ १२)

जो तम/अन्धकार से परे हैं, वे उत्तम हैं ।

२९७. **उदधि** (उदधि)

उदकं दधातीति उदधिः । (सूचू १ पृ १४८)

जो उदक/पानी को धारण करता है, वह उदधि है ।

२९८. **उदयचरग** (उदकचरक)

उदगे चरंति ते उदगचरगा । (आचू पृ २०४)

जो जल मे विचरण करते हैं, वे उदकचरक/जलचरप्राणी हैं ।

२९९. **उदर** (उदर)

उदीर्यन्तः[1] (उदीर्यन्ति ?) उदीर्यते[2] वा उदरम् ।[3] (उचू पृ १५९)

जिसे बार-बार भरा जाता है, वह उदर है ।

जिसे बहुत अधिक भरा जाता है, वह उदर है ।

३००. **उद्देस** (उद्देश)

उद्दिस्सति जेण सो उद्देसो । (आचू पृ १०१)

जिसके द्वारा उद्देश/निर्देश किया जाता है, वह उद्देश है ।

३०१. **उद्देसिय** (औद्देशिक)

उद्दिस्स कज्जइ तं उद्देसियं । (दजिचू पृ १११)

जो साधुओ के उद्देश्य से बनाया जाता है, वह औद्देशिक/भिक्षा का दोष है ।

---

१ उत्+ऋ

२. उत्+ह

३. 'उदर' का अन्य निरुक्त—

उनत्यन्नमत्र उदरम् । उद्वियर्तीति वा उदरम् । (अचि पृ १३६)

जो अन्न को ग्रहण करता है, वह उदर है ।

३०२. उद्धारणा (उद्धारणा)

उत्प्राबल्येन उपेत्य वा उद्धृतानामर्थपदानां धारणा उद्धारणा ।

(व्यभा १० टी प ८९)

पढ़े हुए अर्थपदों/पाठ की दृढ़ धारणा करना, उन्हें विस्मृत नहीं करना, उद्धारणा है ।

३०३. उद्धावण (उद्धावन)

उत्प्राबल्येन धावनं उद्धावनम् । (व्यभा २ टी प १३४)

शीघ्रगति से दौड़ना उद्धावन है ।

३०४. उप्पत्ति (उत्पत्ति)

उत्पद्यते यस्मादिति उत्पत्तिः । (व्यभा २ टी प ४४)

जिससे उत्पन्न होता है, वह उत्पत्ति है ।

३०५. उब्भाम (उद्भ्रम)

उत्प्राबल्येन भ्रमन्त्युद्भ्रमाः । (व्यभा ३ टी प ९९)

जो निरंतर भ्रमण करते रहते हैं, वे उद्भ्रम/भिक्षाचर हैं ।

३०६. उब्भिय (उद्भिज)

उद्भेदनमुद्भिदस्ततो जाता उद्भिजाः । (आटी प ७०)

जो भूमि का उद्भेदन कर बाहर आते हैं, वे उद्भिज/कीटविशेष हैं ।

३०७. उभयतर (उभयतर)

आत्मानं परं चाचार्यादिकं तारयन्तीत्युभयतराः ।

(व्यभा ३ टी प ३)

जो स्वयं को तारता है तथा आचार्य आदि की सेवा करता है, वह उभयतर है ।

३०८. उम्मग्ग (उन्मार्ग)

ऊर्ध्वं वा मार्गमुन्मार्गम् । (आटी प २३३)

जो ऊर्ध्व/बाहर निकलने का मार्ग है, वह उन्मार्ग है ।

३०९. उम्माण (उन्मान)

जण्णं उम्मिज्जइ। (अनुद्वा ३७८)

जिससे तोला जाता है, वह उन्मान है।

यदुन्मीयते—प्रतिनियतस्वरूपतया व्यवस्थाप्यते तदुन्मानम्।
(अनुद्वामटी प १४१)

जो वस्तु के स्वरूप को निश्चित करता है, वह उन्मान/माप-तोल है।

३१०. उर (उरस्)

इर्यति अर्यतेऽनेनेति उरः। (उचू पृ १५०)

जो स्पन्दित होता है, फैलता है, वह उर है।

३११. उरग (उरग)

उरेण गच्छतीति उरगः। (उचू पृ २३१)

जो उर/वक्षस्थल से चलता है, वह उरग है।

३१२. उरपरिसप्प (उरःपरिसर्प)

उरसा—वक्षसा परिसर्पन्ति—सञ्चरन्तीत्युरःपरिसर्पाः।
(स्थाटी प ५०२)

जो उर/वक्ष से परिसर्पण/गमन करते हैं, वे उरपरिसर्प हैं।

३१३. उरब्भ[1] (उरभ्र)

उरसा भ्राम्यति बिभर्ति वा तमिति उरभ्र[2]। (उचू पृ १५९)

जो ऊन के साथ चलता है, वह उरभ्र/मेष है।

जो ऊन को धारण करता है, एह उरभ्र/मेष है।

---

१. urabbha—wool lat. vervex. (पा पृ १५५)

२. 'उरभ्र' का अन्य निरुक्त—

उच्चैरभते उरभ्रः। जो उच्च शब्द करता है, वह उरभ्र है।

उरुभ्रमतीति उरभ्रः। जो उरु/अधिक घूमता है, वह उरभ्र है।
(अचि पृ २८५)

३१४. उरस (औरस)

उरसा वर्तत इति औरसः—बलवान् ।

उरसि वा हृदये स्नेहाद् वर्तते यः सः औरसः । (स्थाटी प ४९३)

जो उरस्/शक्ति से सम्पन्न है, वह औरस/बलवान् है ।

जो हृदय में स्नेह उत्पन्न करता है, वह औरस/पुत्र या पुत्री है ।

३१५. उरस (उपरस)

उपगतो—जातो रसः—पुत्रस्नेहलक्षणो यस्मिन्पितृस्नेहलक्षणो वा यस्यासावुपरसः । (स्थाटी प ४९३)

जिसको देखकर पुत्रस्नेह या पितृस्नेह अभिव्यक्त होता है, वह उपरस/औरस है ।

३१६. उलूक (उलूक)

ऊर्ध्वकर्णः उलूकः ।[1] (अनुद्वा ३९८)

जिसके कान ऊर्ध्वमुखी हैं, वह उलूक है ।

३१७. उवओग (उपयोग)

उपयुज्यते—वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते जीव एभिरित्युपयोगाः । (प्रसाटी प १८१)

जिसके द्वारा प्राणी वस्तुबोध में व्यापृत होता है, वह उपयोग है ।

---

१. 'उलूक' के अन्य निरुक्त—

अलत्युलूकः, उच्चैर्लोक्यते वा । (अचि पृ २९६)

जो केवल रात्रि मे ही देखने में समर्थ है वह उल्लू है । (अल्—पर्याप्तौ)

लक्ष्मी का वाहन होने से जो पूज्यभाव से देखा जाता है, वह उलूक है ।

वलतीति उलूकः । (शब्द पृ २७३)

जो (दिन में दृष्टि का) संवरण करता है, (रात्रि में) संचरण करता है, वह उल्लू है । (वल्—संवरणे, सञ्चरणे) ।

३१८. उवकारिगा (उपकारिका)

उपकरोति—उपष्टम्नातीत्युपकारिका । (जीटी प २२२)

जो उपकार करती है/सहारा देती है, वह उपकारिका/पीठिका है ।

३१९. उवक्कम (उपक्रम)

उपक्रम्यते अनेनेत्युपक्रमः । (सूचू १ पृ १७)

जिसके द्वारा उपक्रम/प्रारम्भ किया जाता है, वह उपक्रम है।

उपक्रम्यते वा निक्षेपयोग्यं क्रियतेऽनेन गुरुवाग्योगेनेत्युपक्रमः । (अनुद्वामटी पृ ४०)

जो गुरुवचनो के द्वारा निक्षेपयोग्य किया जाता है, वह उपक्रम है ।

३२० उवक्खर (उपस्कर)

उपस्क्रियतेऽनेनेत्युपस्करः । (स्थाटी प २१३)

जो वस्तु को उपस्कृत/सस्कृत करता है, वह उपस्कर/मसाला है ।

३२१. उवग (उपग)

उवयोगं गच्छंतीति उवगा । (आचू पृ ३७०)

जो उपयोग मे आते है, वे उपग/वृक्ष है ।

३२२. उवगरण (उपकरण)

ज जुज्जति उवकारे उवकरणं तं से होइ ।[1] (निचू १ पृ ६३)

जो उपकार करता है, वह उपकरण है ।

---

१. उपकरोतीत्युपकरणं । (सूचू २ पृ ३२५)

उपक्रियते—उपष्टभ्यते स्फीतिं नीयते अनेनेति धर्मोपकरणम् । (आवमटी प ४२५)

३२३. उवग्गह (उपग्रह)

उपगृह्णातीति उपग्रहः ।[1] (दशूचू प १७)

जो उपकार करता है, वह उपग्रह/उपकरण है ।

३२४. उवघायणाम (उपघातनाम)

उपहन्यते येन कर्मणा तदुपघातनाम । (प्राक १ टी पृ ३३)

जो उपहनन/घात करता है, वह उपघात (नामकर्म) है ।

३२५. उवचय (उपचय)

उब्भिच्चा चिज्जति जेण सो उवचयो । (आचू पृ २६६)

जो बाहर से ग्रहण कर उपचित होता है, वह उपचय है ।

३२६. उवचरग (उपचरक)

उपेत्य चरतीत्युपचरकः । (सूचू २ पृ ३५७)

जो समीप आकर (विनय आदि का उपचार कर) ठगता है, वह उपचरक है ।

३२७. उवज्झाय (उपाध्याय)

उत्ति उवओगकरणे वत्ति अ पावपरिवज्जणे होइ ।
झत्ति अ झाणस्स कए उत्ति अ ओसक्कणा कम्मे ॥

(आवनि ९९९)

जो उपयोगपूर्वक पापकर्म का परिवर्जन करते हुए ध्याना-रूढ़ हो कर्म-मल को दूर करते हैं, वे उपाध्याय हैं ।

तमुपेत्य शिष्टा अधीयन्त[2] **इत्युपाध्यायः ।** (आवचू १ पृ ५८६)

जिसके पास जाकर शिष्य पढ़ते हैं, वह उपाध्याय है ।

---

१. उप—आत्मनः समीपे संयमोपष्टम्भार्थं वस्तुनो ग्रहणमुपग्रहः ।
(प्रसाटी प ११८)

२. इङ्—अध्ययने ।

अधि-आधिक्येन गम्यते[1] (इति उपाध्यायाः) ।

जिनके पास बहुत अधिक जाना जाता है, वे उपाध्याय हैं ।

स्मर्यंते[2] सूत्रतो जिनप्रवचनं येभ्यस्ते उपाध्यायाः ।

जिनके पास जिन-प्रवचन का स्मरण किया जाता है, वे उपाध्याय हैं ।

उपाधानमुपाधिः सन्निधिस्तेनोपाधिना उपाधौ वा आयो—लाभः श्रुतस्य येषामुपाधीनां वा विशेषणानां प्रक्रमाच्छोभनानामायो—लाभो येभ्यस्ते (उपाध्यायाः) ।

जिनकी उपाधि/सन्निधि से श्रुत का आय/लाभ होता है वे उपाध्याय हैं ।

आधीनां—मनः पीड़ानामायो लाभः—आध्यायः अधियां वा (नञः कुत्सार्थत्वात्) कुबुद्धीनामायोऽध्यायः, दुर्ध्यानं[3] वाध्यायः, उपहतः आध्यायः वा यैस्ते उपाध्यायाः । (भटी प ४)

जिन्होने आधि, कुबुद्धि और दुर्ध्यान को उपहत/समाप्त कर दिया है, वे उपाध्याय हैं ।

३२८. उवट्ठाण (उपस्थान)

उपतिष्ठंति तस्मिन्नति उपस्थानं । (सूचू १ पृ ४४)

जिसमे रहकर उपासना की जाती है, वह उपस्थान/संप्रदाय है ।

३२९. उवट्ठावणा (उपस्थापना)

उप—सामीप्येन सर्वदावस्थानलक्षणेन तिष्ठन्त्यस्यामिति उपस्थापना । (व्यभा ४/३ टी प ९९)

जिसमे सदा साथ रहा जाता है, वह उपस्थापना/वसति है ।

३३०. उवणिहि (उपनिधि)

उपनिधीयत इत्युपनिधिः । (स्थाटी प २८८)

जो पास मे रहती है, वह उपनिधि है ।

---

१. इण्—गतौ ।

२. स्मृ—स्मरणे ।

३. ध्यै—चिंतायाम् ।

३३१. उवदेस (उपदेश)

उवदिस्सइ त्ति उवदेसो। (निचू १ पृ ३५)

जो उपदिष्ट होता है, वह उपदेश है।

३३२. उवधि (उपधि)

उपदधाति सरीरमितिउवधी। (दअचू पृ १४८)

जिसे शरीर पर धारण किया जाता है, वह उपधि है।

उपधीयते—पोष्यते जीवोऽनेनेत्युपधिः। (स्थाटी प ११४)

जिसके द्वारा जीव पुष्ट होता है, वह उपधि है।

३३३. उवभोग (उपभोग)

उपभुज्यते—पौनः पुन्येन सेव्यत इत्युपभोगः। (उपाटी प १६)

जिसका बार बार उपभोग/आसेवन किया जाता है, वह उपभोग है।

३३४. उवमा (उपमा)

उवेच्च मापं उवमा। (दअचू पृ २०)

जिस माप को स्वीकार किया जाता है, वह उपमा है।

उवमिज्जंति अणेण अत्था तेण ओवम्मं। (दजिचू पृ २०)

जिसके द्वारा पदार्थ उपमित किया जाता है, वह उपमा है।

उपमीयते—सदृशतया वस्तु गृह्यते अनयेत्युपमा।

(अनुद्वामटी प ४०१)

जो वस्तु के सादृश्य का निरूपण करती है, वह उपमा है।

३३५. उवलेव (उपलेप)

उपलिप्यते अनेनेत्युपलेपः। (औटी प ६६)

जिसके द्वारा उपलिप्त किया जाता है, वह उपलेप है।

३३६. उववज्झ (औपवाह्य/उपवाह्य)

उप्पेच्च (उवेच्च) सव्वावत्थं वाहणीया उववज्झा ।[1]

(दअचू पृ २१३)

जिसे सब अवस्थाओं में वाहन बनाया जाए, वह औपवाह्य/हाथी, घोड़ा है ।

३३७. उववात (उपपात)

आचार्यादीनामुप—समीपे पतनं स्थानमुपपातः । (उशाटी प ४४)

आचार्य आदि के पास में बैठना उपपात है ।

३३८. उवसग (उपाश्रय)

उपेत्य—आगत्य साधुभिराश्रीयत इत्युपाश्रयः । (बृटी पृ ९२५)

जहां आकर साधु आश्रय लेते हैं, वह उपाश्रय है ।

३३९. उवसग्ग (उपसर्ग)

उपसरंतीति उवसग्गा ।[2]

जो पास में आते हैं/पीडित करते हैं, वे उपसर्ग हैं ।

उवसृजंति वा अनेन उवसर्गाः । (आवचू १ पृ ५३५)

जो (कष्ट का) उपसर्जन करते हैं, वे उपसर्ग हैं ।

उपसृज्यते—क्षिप्यते च्याव्यते प्राणी धर्मादेभिरित्युपसर्गाः ।

(स्थाटी प ५००)

जिनसे प्राणी धर्म से उपसृत/च्युत होते हैं, वे उपसर्ग/उपद्रव हैं ।

३४०. उवहाण (उपधान)

मोक्षं प्रति उप—सामीप्येन दधातीति उपधानम् ।

(सूटी १ प ५६)

---

१. (क) **कारणमकारणे वा उवेच्च वाहिज्जंति उववज्झा ।**

(दजिचू पृ ३१०)

(ख) **उप—समीपे वाह्यते उपवाह्यः ।** (अचि पृ २७४)

जिसे पास में लाया जाता है, वह उपवाह्य/वाहन है ।

२. **उप—सामीप्ये, सृज्—विसर्गे ।**

जो मोक्ष के निकट पहुंचाता है, वह उपधान/तपोविशेष है।

उपधीयते—उपष्टभ्यते श्रुतमनेनेति उपधानम्।[1]

(स्थाटी प १७४)

जिससे श्रुत/ज्ञान अवस्थित होता है, वह उपधान (तप) है।

उपदधाति—पुष्टिं नयत्यनेनेत्युपधानम्। (व्यभा १ टी प २५)

जो ज्ञान को पुष्ट करता है, वह उपधान (तप) है।

३४१. उवहाण (उपधान)

उप—सामीप्येन धीयते—व्यवस्थाप्यत इत्युपधानम्।

(आटी प २९६)

जो पास मे रखा जाता है, वह उपधान/तकिया है।

३४२. उवहि (उपधि)

उपदधाति तीर्थं उपधिः। (उचू पृ २०४)

जो तीर्थ/परंपरा को चलाती है, वह उपधि/साधन है।

उपधीयते—संगृह्यत इत्युपधिः। (आटी प १७९)

जिसका सग्रह किया जाता है, वह उपधि है।

३४३. उवाव (उपाद)

उपादीयंत इति उपादाः। (सूचू १ पृ १९०)

जो ग्रहण किये जाते हैं, वे उपाद/मत हैं।

३४४. उवासग (उपासक)

उपासंति तत्त्वज्ञानार्थमित्युपासकाः। (सूचू २ पृ ३६७)

जो तत्त्वज्ञान की संप्राप्ति के लिए मुनियों की उपासना करते हैं, वे उपासक/श्रमणोपासक हैं।

---

१. उप—समीपे धीयते—क्रियते सूत्रादिकं येन तपसा तदुपधानम्।

(प्रसाटी प ६४)

जिस तप के द्वारा सूत्र आदि को धारण किया जाता है, वह उपधान (तप) है।

३४५. उसह (वृषभ)

वृषेन भातीति वा वृषभः । (जटी प १३५)

जो वृष/धर्म से सुशोभित होता है, वह वृषभ/ऋषभ है ।

३४६. उस्सग्ग (उत्सर्ग)

उज्जयसग्गुस्सग्गो । (बृभा ३१९)

उद्यतः सर्गः—विहार उत्सर्गः । (बृटी पृ ६७)

जो सामान्य विहार/आचार है, वह उत्सर्ग है ।

३४७. उस्सन्न (अवसन्न)

सामाचार्यासेवने अवसीदति स्मेत्यवसन्नः । (व्यभा ३ टी प १०७)

जो सामाचारी के पालन मे खिन्न होता है, वह अवसन्न है ।

३४८. उस्सप्पिणी (उत्सर्पिणी)

उत्सर्पति—वर्द्धतेऽरकापेक्षया उत्सर्पयति वा भावानायुष्कादीन् वर्द्धयतीति उत्सर्पिणी । (स्थाटी प २५)

जिसमे आयुष्य आदि का उत्सर्पण/वर्धन होता है, वह उत्सर्पिणी (कालचक्र) है ।

३४९. उस्सुत्त (उत्सूत्र)

ऊर्ध्वं सूत्रादुत्सूत्रं । (आवचू २ पृ ६९)

जो सूत्र/आगम से ऊर्ध्व/परे है, वह उत्सूत्र है ।

३५०. उस्सेइम (उत्स्वेदिम)

उत्—ऊर्ध्वं निर्गच्छता बाष्पेण यः स्वेदः स उत्स्वेदः, उत्स्वेदेन निर्वृत्तमुत्स्वेदिमम् । (बृटी पृ २७०)

जो ऊपर उठते हुए स्वेद/वाष्प से निष्पन्न होता है, वह उत्स्वेदिम है ।

३५१. ऊसासग (उच्छ्वासक)

उच्छ्वसितीति उच्छ्वासकः । (आवहाटी १ पृ २२३)

जो उच्छ्वास लेता है, वह उच्छ्वासक है ।

३५२. एअ (एज)

एयतीति एओ । (आचू पृ ३८)

जो प्रकम्पित होता है, वह एज/वायु है ।

३५३. एकलंभि (एकलाभिन्)

य एकं प्रधानं शिष्यमात्मना लभते—गृह्णाति शेषांस्त्वाचार्यस्य समर्पयति स एकलाभेन चरतीति एकलाभिकः ।

जो एक प्रधान शिष्य को अपने पास रखता है और शेष को गुरुचरणो में समर्पित करता है, वह एकलाभिक है ।

एकमेव लभन्ते इत्येवंशीला एकलाभिनः ।[1]

(व्यभा ४/२ टी प २३)

जो एक का ही लाभ/प्राप्ति करते हैं, वे एकलाभिक हैं ।

३५४ एगंतचारि (एकान्तचारिन्)

एगंते उज्जाणादिसु चरंति एगंतचारी । (सूचू २ पृ ४२०)

जो उद्यान आदि एकान्त स्थानो मे रहते हैं, वे एकान्तचारी है ।

३५५. एगचर (एकचर)

एगा चरंति एगचरा । (आचू पृ ३१६)

जो एकाकी विचरण करते हैं, वे एकचर हैं ।

३५६. एगट्ठिय (एकार्थिक)

एकश्चासावर्थश्च—अभिधेयः एकार्थः स यस्यास्ति स एकार्थिकः ।

(स्थाटी प ४७२)

जिन शब्दो का एक ही अर्थ/अभिधेय हो, वे एकार्थक/पर्यायवाची हैं ।

---

१. येषामेक एव लाभो यथा यदि भक्तं लभन्ते ततो वस्त्रादीनि न । अथ वस्त्रादीनि लभन्ते तर्हि न भक्तमपि । (व्यभा ४/२ टी प २३)

३५७. एलय (एडक)

एति एत्याकारितो एत्येलकः ।[1] (उचू पृ १५८)

एति-एति/आओ-आओ इस प्रकार पुकारने पर जो आता है, वह एडक/मेष है ।

३५८. एवंभूय (एवम्भूत)

एवं—यथा व्युत्पादितस्तं प्रकारं भूतः—प्राप्तः एवम्भूतः । (प्रसाटी प २४६)

जो शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार प्राप्त होता है, वह एवभूत (नय) है ।

३५९. एसणा (एषणा)

एषति एभिरित्येषणा । (उचू पृ १७४)

जिससे अन्वेषणा की जाती है, वह एषणा है ।

३६०. एसणिय (एषणीय)

एष्यते—गवेष्यते उद्गमादिदोषविकलतया साधुभिर्यत्तदेषणीयम् । (स्थाटी प १०३)

साधु जिसकी उद्गम आदि दोषो से रहित एषणा करते हैं, वह एषणीय/कल्पनीय है ।

३६१. एसिय (एषिक)

एषन्तीति एषिका । (सूचू १ पृ १७५)

जो शिकार के लिए/मांस प्राप्त करने के लिए प्राणियो की खोज करते हैं, वे एषिक है ।

३६२. ओमचरय (अवमचरक)

अवमौदर्यं चरति—आसेवते अवमचरकः । (उशाटी प ६०६)

जो अवम/कम खाता है, वह अवमचरक/अल्पभोजी है ।

---

१. 'एडक' का अन्य निरुक्त—

इड्यते देवता अनेन एडकः । (अचि पृ २८५)

जिसकी बलि से देवता प्रसन्न होते हैं, वह एडक/मेष है ।

३६३ ओमाण (अवमान)

अवमं ओमिणिज्जइ (ओमाणं)। (अनुद्वा ३८०)

जो हाथ आदि से नापा जाए, वह अवमान है।

३६४. ओमोय (अवमोक)

अवमुच्यते—परिधीयते यः सोऽवमोकः। (भटी पृ ११७)

जिसे खोला जाता है, पहना जाता है, वह अवमोक/आभूषण है।

३६५. ओयण (ओदन)

उनत्ति उदति[1] वा तमिति ओदनम्[2]। (उचू पृ १५८)

जो अपने पोषक रसों से शरीर को आर्द्र कर देता है, वह ओदन/चावल है।

३६६. ओरालिय (औदारिक)

उदारैः पुद्गलैर्निर्वृत्तमौदारिकम्। (आवहाटी २ पृ १८५)

जो उदार/स्थूल पुद्गलों से निष्पन्न है, वह औदारिक/स्थूल शरीर है।

३६७. ओवक्कमिया (औपक्रमिकी)

उपक्रम्यतेऽनेनायुरित्युपक्रमः—ज्वरातीसारादिस्तत्रभवा या सौपक्रमिकी। (स्थाटी प २३१)

जिससे आयुष्य उपक्रान्त/क्षीण होता है, वह औपक्रमिकी/व्याधि है।

३६८. ओवाहि (उपाधि)

उपाधीयते इति उपाधिः। (आटी प १७४)

जो सदा पास में रहता है, वह उपाधि/कर्म है।

---

१. उन्द्—क्लेदने। उनत्ति—क्लेदयति।

२. उनत्ति क्लेदयत्योदनः। (अचि पृ ९२)

३६९. ओवीलय (अपव्रीडक)

अपव्रीडयति—लज्जां मोचयतीत्यपव्रीडकः। (व्यभा ३ टी प १८)

जो लज्जा/सकोच को मिटाता है, वह अपव्रीडक है।

३७०. ओसन्न (अवसन्न)

अवसीदति—प्रमाद्यति यः सोऽवसन्नः। (प्रसाटी प २५)

जो अवसाद/प्रमाद करता है, वह अवसन्न/प्रमादी है।

३७१. ओसप्पिणी (अवसर्प्पिणी)

अवसर्प्पति हीयमानारकतया अवसर्प्पयति वाऽऽयुष्कशरीरादिभावान् हापयतीत्यवसर्प्पिणी। (स्थाटी प २५)

जो ह्रास की ओर बढती है, वह अवसर्पिणी है।

जिसमे आयुष्य, शरीर आदि का अवसर्पण/ह्रास होता है, वह अवसर्पिणी (कालचक्र) है।

३७२ ओहंतर (ओघन्तर)

ओहं जो तरति तरिस्सति वा सो ओहंतरो। (आचू पृ १८०)

जो ओघ/प्रवाह का पार पा जाता है, वह ओघतर है।

३७३. ओहि (अवधि)

तेणावहीयए तम्मिवाऽवहाणं तओऽवही सो य मज्जाया।
ज तीए दव्वाइ परोप्परं मुणइ तओऽवहि त्ति॥ (विभा ८२)

अव—अधो विस्तृतं वस्तु धीयते—परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः।

जिससे उत्तरोत्तर विस्तार से जाना जाता है, वह अवधि/अवधिज्ञान है।

अवधिः—मर्यादा रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा तदुपलक्षितं ज्ञानमप्यवधिः। (प्रज्ञाटी प ५२७)

जो अवधि/सीमाबद्ध ज्ञान है, वह अवधि (ज्ञान) है।

३७४. कउ (क्रतु)

करोतीति क्रतुः। (सूचू २ पृ ३३५)

(ब्राह्मण) जिसका अनुष्ठान करते हैं, वह क्रतु/यज्ञ है।[1]

(स्वर्गकामी) जिसका अनुष्ठान करते हैं, वह क्रतु/यज्ञ है।[2]

३७५. कच्छु (कच्छू)

कडूइतस्स अंते डज्झति विसप्पतीति वा कच्छू।[3] (आचू पृ ३६)

जो खुजलाने के बाद जलन पैदा करती है और फैलती है, वह कच्छू/खुजली है।

३७६. कट्ठ (काष्ठ)

कश्यतीति काष्ठम्।[4] (उचू पृ २०९)

जो जलने पर प्रकाश देता है, वह काष्ठ है।

जो चीरा जाता है, वह काष्ठ है।

कत्थतीति काष्ठम्। (उचू पृ २११)

जो जलते समय शब्द करता है, वह काष्ठ है।

३७७. कणंगर (कनङ्गर)

काय—पानीयाय नङ्गराः—बोधित्थ (बोहित्थ)—निश्चलीकरणपाषाणास्ते कनङ्गराः। (विपाटी प ७१)

जल मे स्थित जलपोत को स्थिर करने वाला पाषाण कनङ्गर/लंगर है।

३७८. कण्णसर (कर्णशर)

कण्णं सरंति पावंति कण्णसरा। जधा सरीरस्स दुस्सहमायुधं सरो तहा ते कण्णस्स, एवं कण्णसरा ते। (दअचू पृ २२१)

जो कानो में सरण/प्रवेश करते हैं, वे कर्णसर/शब्द हैं।

जो कानो मे शर/बाण की तरह चुभते हैं, वे कर्णशर/शब्दबाण हैं।

---

१. क्रियते द्विजातिभिः क्रतुः। (निरुक्तम् १ पृ १३९)

२. क्रियते स्वर्गकामैः क्रतुः। (अचि पृ १८२)

३. 'कच्छू' का अन्य निरुक्त—

कषति त्वचं कच्छूः। (अचि पृ १०६)

जो त्वचा को उत्पीड़ित करती है, वह कच्छू/खुजली है।

४. काश्—दीप्तौ। कष्—हिंसायाम्।

३७९. कत्ता (कर्त्ता)

जो करेइ सो कत्ता। (निचू १ पृ ३६)

करोतीति कर्त्ता। (सूचू १ पृ २७)

जो प्रवृत्ति करता है, वह कर्त्ता है।

३८०. कप्प (कल्प)

मूलोत्तरगुणान् कल्पयति—वर्णयति कल्पः। (बृचू प २)

जो मूलगुण-उत्तरगुणो का कल्पन/वर्णन करता है, वह कल्प/बृहत्कल्प है।

कल्पयति—जनयत्याचार्यकमिति कल्पः। (बृटी पृ ४)

जो शिष्य को आचार मे निपुण बनाता है, वह कल्प/आचारशास्त्र है।

कल्पंते समर्था भवंति संयमाध्वनि प्रवर्त्तमाना अनेनेति कल्पः।[1] (व्यभा १ टी प ६)

सयममार्ग मे चलने वाले जिसके द्वारा कल्प/समर्थ होते हैं, वह कल्प/आचार है।

३८१. कप्पणी (कल्पनी)

कल्प्यते—छिद्यते यया सा कल्पनी। (आटी प ६०)

जिसके द्वारा काटा जाता है, वह कल्पनी/कैंची है।

३८२. कप्पोवग (कल्पोपग)

कल्प्यन्ते—इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशादिदशप्रकारत्वेन देवा एतेष्विति कल्पाः—देवलोकास्तानुपगच्छन्ति—उत्पत्तिविषयतया प्राप्नुवन्तीति कल्पोपगाः। (उशाटी प ७०२)

जहा इन्द्र, सामानिक आदि के रूप मे देव कल्पित/व्यवस्थित हैं, वे कल्प/देवलोक हैं। वहा उत्पन्न होने वाले देव कल्पोपग कहलाते हैं।

---

१. सामत्थे वण्णणाए य, छेदणे करणे तहा।
ओवम्मे अहिवासे य, कप्पसद्दो तु वण्णितो (जीतभा २५६०)

३८३ कम्म (कर्मन्)

क्रियत इति कम्म ।[1] (उचू पृ १९५)

जो (मिथ्यात्व आदि हेतुओं से) किया जाता है, वह कर्म/बन्धन है ।

३८४. कम्मकर (कर्मकर)

कम्मं करोति इति कम्मकरा । (सूचू २ पृ ३८५)

जो कर्म/कार्य करते हैं, वे कर्मकर/नौकर हैं ।

३८५. कम्मावह (कर्मावह)

कम्मं आवहतीति कम्मावह । (आचू पृ ११०)

जो कर्म का आवहन करता है, वह कर्मावह/हिंसा है ।

३८६. कयंत (कृतान्त)

कृतं—निष्पादितं बह्वपि कार्यमन्तं नयतीति कृतान्तः ।
(बृटी पृ ५७७)

जो सभी कार्यों का अन्त कर देता है, वह कृतान्त/कृतघ्न है ।

३८७. कयकिच्च (कृतकृत्य)

कृतानि—समापितानि कृत्यानि येन स कृतकृत्यः । (बृटी पृ ५२६)

जिसने कृत्य/कार्य समाप्त कर दिए हैं, वह कृतकृत्य है ।

३८८. करण (करण)

क्रियते तेन करणम् । (आवमटी प ५५८)

जिसके द्वारा कार्य निष्पन्न किया जाता है, वह करण/साधन है ।

३८९. करण (करण)

क्रियत इति करणम् । (सूटी २ प ४१)

(मूल गुणों की पुष्टि के लिए) जो किया जाता है, वह करण/उत्तरगुण है ।

---

१. क्रियन्ते मिथ्यात्वादिहेतुभिर्जीवेनेति कर्माणि । (उशाटी प ६४१)

३६०. करुण (करुण)

कुत्सितं रौत्यनेनेति करुणः ।[1] (अनुद्वामटी प १२४)

जो कुत्सित/दयनीय शब्द करता है, वह करुण है।

३६१. कलत्त (कलत्र)

धनं कलं यस्मात् सर्वं अत्ते गृह्णाति तस्मात् कलत्तं ।[2]

(निचू २ पृ २५८)

जिससे कल/धन आदि सब कुछ ग्रहण कर लिया जाता है, वह कलत्र/पत्नी है।

३६२. कलह (कलह)

कलाभ्यो हीयते येन स कलहः ।[3] (उचू पृ १७१)

जिससे कलाएं/शक्तिया क्षीण होती हैं, वह कलह है।

---

१. 'करुणा' के निरुक्त—

परदुक्खे सति साधुनं हदयकम्पनं करोतीति करुणा ।

दूसरो के दुःख को देखकर हृदय मे जो प्रकम्पन पैदा होता है, वह करुणा है।

किणाति वा परदुक्खं हिंसति विनासेतीति करुणा । (वि ६/६६)

जो दूसरो के दुःख का विनाश करती है, वह करुणा है।

२. 'कलत्र' के अन्य निरुक्त—

कडति—माद्यति कडत्रं, लत्वे कलत्रम् । (अचि पृ ११७)

जो गृहस्वामिनी होने के कारण गर्व करती है, वह कलत्र है।

कलं त्रायते इति कलत्रम् । (वा पृ १७७६)

जो कल/धन/परिवार को त्राण देती है, वह कलत्र है।

३. 'कलह' के अन्य निरुक्त—

कल्यते क्षिप्यतेऽत्र कलहः ।

जो मैत्री का विनाश करता है, वह कलह है।

कलं हीनबलं हन्तीति वा (कलहः) ।

जो असमर्थ को हानि पहुंचाता है, वह कलह है।

कलां जहातीति वा (कलहः) । (अचि पृ १७७)

जो कला/विवेक का विनाश करता है, वह कलह है।

कलं कामं हन्तीति कलहः । (आप्टे पृ ५४५)

जो कल/मधुरता को समाप्त करता है, वह कलह है।

३९३. कल्लाण (कल्याण)

कल्यमानयतीति कल्याणम् ।[1] (उचू पृ ४१)

कल्यः—अत्यन्तनीरुक्तया मोक्षस्तमामयति अणति—प्रापयतीति कल्याणः । (उशाटी प १२८)

जो कल्य/मुक्ति/सुख/आरोग्य प्रदान करता है, वह कल्याण है ।

३९४. कल्लाण (कल्याण)

कल्लमणइ त्ति गच्छइ गमयइ व बुज्झइ व बोहयइ व त्ति ।
भणइ भणावेइ व जं तो कल्लाणो स आयरिओ ।।

(विभा ३४४१)

जो स्वय कल्य/आरोग्य/मोक्ष को प्राप्त करते हैं, मोक्ष-मार्ग को जानते हैं, उसका प्रतिपादन करते है तथा दूसरो को कल्य प्राप्त कराते हैं, ज्ञात कराते है और उसका प्रतिपादन करने के लिए प्रेरित करते हैं, वे कल्याण/गुरु/आचार्य हैं ।

अहवा कल सद्दत्थो संखाणत्थो य तस्स कल्लं ति ।
सद्दं संखाणं वा अमणइ तेणं च कल्लाणो । (विभा ३४४२)

जो कल्य/शब्द-शास्त्र/व्याकरण तथा कल्य/गणित-शास्त्र के ज्ञाता है, वे कल्याण/आचार्य है ।

३९५. कवित्थ (कपित्थ)

कपिरिव लम्बते स्थेति च करोति कपित्थं ।[2] (अनुद्वा ३६८)

जो कपि/बदर की तरह लटकता हुआ रहता है, वह कपित्थ/कैथ है ।

---

१. कल्यते धार्यते कल्याणम ।
कल्यं—नीरुजत्वमणतीति वा (कल्याणम्) । (अचि पृ १५)

२. 'कपित्थ' के अन्य निरुक्त ।
कपयोऽस्मिन् तिष्ठन्ति कपित्थः, कपिप्रियत्वात् कपिरिव तिष्ठतीति वा । (अचि पृ २५८)
जहां कपि रहते हैं, वह कपित्थ (वृक्ष) है ।
जो कपि को प्रिय है, वह कपित्थ (वृक्ष) है ।
(जिसके फल) कपि की तरह स्थित हैं, वह कपित्थ है ।

३९६. कस (कश)

कशतीति कशः ।[1] (उचू पृ ३०)

जो गति प्रदान करता है, वह कशा/चाबुक है।

जो दण्डित करता है, वह कशा/चाबुक है।

३९७. कसाय (कषाय)

कसंतीति कसाया ।[2] (आचू पृ २८९)

जो (कर्म-पुद्‌गलो को) आकृष्ट करते हैं, वे कषाय हैं।

जो (आत्मा को) रञ्जित करते हैं, वे कषाय है।

या अप्रशस्ता गतिः तां नयंतीति तेन कषायाः ।[3]

जो अप्रशस्त गति की ओर ले जाते हैं, वे कषाय हैं।

शुद्धमात्मानं कलुषीकरोतीति कषायाः । (आवचू १ पृ ५१७)

जो शुद्ध आत्मस्वरूप को कलुषित/मलिन करते हैं, वे कषाय हैं।

कष्यन्ते—हिंस्यन्ते प्राणिनो यत्रासौ कष—संसारस्तमेति प्राप्नोति प्राणी यैस्ते कषायाः ।[4] (प्रसाटी प १३६)

जहा प्राणी विनष्ट होते हैं, वह कष/ससार है। जिनके कारण प्राणी कष/ससार मे जन्म-मरण करते है, वे कषाय हैं।

३९८. कहा (कथा)

कथ्यत इति कथा । (सूचू १ पृ १८८)

जो कही जाती है, वह कथा है।

---

१. 'कशा' का अन्य निरुक्त—

कशा प्रकाशयति भयमश्वाय । कृष्यतेर्वाणूभावात् । (नि ९/१९)

जो भय का प्रकाशन करती है, वह कशा/चाबुक है।

जो लघु होने के कारण खीची जाती है, वह कशा/चाबुक है।

(कश्—गति-शातनयो.)

२ **कषाय—रागे, कषायितः— रञ्जितः ।** (वा पृ १८३९)

३. **कष्—गतौ ।**

४. **कष् – हिंसायाम् ।**

३९९. काकपेज्ज (काकपेय)

तडत्थितेहिं काकेहिं पिज्जंति काकपेज्जा । (दशचू पृ १७४)

जल से परिपूर्ण वैसा तालाब या नदी जिसके तट पर बैठकर कौए पानी पी लेते हैं, वह काकपेया-नदी या तालाब होता है ।

४००. काम (काम)

काम्यन्त इति कामाः । (सूटी २ प १७)

जिनकी कामना की जाती है, वे काम/इन्द्रियविषय हैं ।

४०१. कामकामि (कामकामिन्)

कामे कामयति कामकामी । (आचू पृ ८३)

जो काम/इन्द्रिय विषयो की कामना करता है, वह कामकामी है ।

४०२. काय (काय)

चीयत इति कायः ।[1] (भटी प १८१)

जो उपचित होता है, वह काय/शरीर है ।

४०३. कायतिज्ज (कायतार्य)

काएण तरिज्जंतित्ति कायतिज्जाओ । (दजिचू पृ २५८)

जो शरीर के द्वारा तरने योग्य हैं, वे कायतार्य (नदी, तालाब) हैं ।

४०४. कायोवग (कायोपग)

कायान् कायेषु वोपगच्छन्तीति कायोपगाः । (सूटी २ प १४२)

जो काया/शरीर का अनुसरण करते हैं, वे कायोपग ~~हैं ।~~

जो काया/शरीर मे ही अनुरक्त रहते हैं, वे कायोपग हैं ।

---

१. **कुच्छिताणं सासवधम्माणं आयो त्ति कायो ।** (नि. १५/१)

जो झरने वाले कुत्सित पदार्थों का उत्पत्ति-स्थल है, वह काय है ।

४०५. कारग (कारक)

क्रियां करोतीति कारकः । (नंचू पृ ८)

जो क्रिया करता है, वह कारक है ।

कारयतीति कारकः । (प्रसाटी प २८३)

जो कराता है, वह कारक है ।

४०६. काल (काल)

कलनं—समस्तवस्तुस्तोमस्य संख्यानमिति कालः ।[1] (प्रसाटी प २८१)

जिससे समस्त पदार्थों का कलन/ज्ञान होता है, वह काल है ।

कलयन्ति—परिच्छिन्दन्ति वस्तु तस्मिन् सतीति कालः । (विभामहेटी १ पृ ७१५)

जिसके होने पर वस्तु के परिच्छेद/पृथक् अस्तित्व का बोध होता है, वह काल है ।

कलयन्ति—समयोऽस्यामेन रूपेणोत्पन्नस्यावलिकामुहूर्तादि वा ।

जिससे समय, आवलिका, मुहूर्त आदि की कलना/गणना होती है, वह काल है ।

४०७. कालकंखि (कालकाङ्क्षिन्)

कालं काङ्क्षतीति कालकंखी । (सूचू १ पृ २०४)

जो काल/मरण की कांक्षा करता है, वह कालकांक्षी है ।

४०८. कालिय (कालिक)

काले—प्रथमचरमपौरुषीद्वये पाठ्यत इति कालिकं । (आवहाटी १ पृ १६०)

जो प्रथम और चतुर्थ पौरुषी मे पढा जाता है, वह कालिक (श्रुत) है ।

---

१. 'काल' का अन्य निरुक्त :—

कालयति—क्षिपति सर्वभावान् कालः । (अचि पृ २६)

कलनात् सर्वभूतानां स कालः परिकीर्तितः । (वा पृ १७७६)

जो सबको अपना ग्रास बनाता है, वह काल/समय है ।

४०९. कासंकस (कासंकष)

कासः संसारस्तं कषतीति तदभिमुखो यातीति कासंकषः। (आटी प १३८)

जो संसार की ओर जाता है, वह कासंकष/किंकर्तव्यविमूढ़ है।

४१०. कासग (कर्षक)

कृषंतीति कर्षकाः[1]। (उचू पृ २०५)

जो खेतों का कर्षण करते हैं, वे कर्षक/किसान हैं।

४११. कासव (काश्यप)

कासं—उच्छू तस्स विकारो काश्यः—रसः, सो जस्स पाणं सो कासवो।[2] (दअचू पृ ७३)

जो काश्य/इक्षुरस का पान करते हैं, वे काश्यप/इक्ष्वाकुवंशी हैं।

४१२. काहीअ (काथिक)

कथयतीति कथिकः। (सूचू १ पृ ६७)

जो कथा करता है, वह काथिक है।

४१३. किंकर (किङ्कर)

किं करोमीति किङ्करः।[3] (व्यभा ४/२ टी प २९)

'क्या करूं' (इस प्रकार आदेश की प्रतीक्षा) करने वाला किंकर/नौकर है।

४१४. किरिया (क्रिया)

क्रियन्त इति क्रियाः। (सूटी २ प ४३)

जो की जाती हैं, वे क्रियाएं हैं।

---

१. कर्षति भुव कर्षकः। (अचि पृ १९६)

२. कासो नाम इक्खु भण्णइ, जम्हा तं इक्खु पिबंति तेन कासवा अभिधीयंते। (दजिचू पृ १३२)

३. किं करोमीत्याज्ञां प्रतीक्षते किंकरः। (अचि पृ ८४)

४१५. किरियावादि (क्रियावादिन्)

क्रियांवदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनः । (सूटी २ प ८१)

जो केवल क्रिया/प्रवृत्ति का ही कथन करते हैं, वे क्रियावादी हैं ।

४१६. किरियावादि (क्रियावादिन्)

क्रियां—जीवाजीवादिरर्थोऽस्तीत्येवंरूपां वदन्तीति क्रियावादिनः । (स्थाटी प २५८)

जो क्रिया/जीव आदि पदार्थों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं, वे क्रियावादी/आस्तिक हैं ।

४१७. किलेस (क्लेश)

क्लिश्यन्ते—बाध्यन्ते शारीर-मानसैर्दुःखैः संसारिणः सत्त्वा एभिरिति क्लेशाः । (बृटी पृ २१७)

जिनसे प्राणी क्लेश/दुःख पाते हैं, वे क्लेश/कर्म हैं ।

४१८. कीब (क्लीब)

क्लिद्यते इति क्लीवः ।[1] (निचू ३ पृ २४६)

जो शीघ्र पिघल जाता है, वह क्लीव/नपुंसक है ।

४१९. कुंजर (कुञ्जर)

कु—भूमि तं जरेती कुंजरम् ।[2] (उचू पृ १९९)

कौ जीर्यतीति कुञ्जरः । (जीटी प १२२)

जो कु/पृथ्वी को जीर्ण कर देता है, वह कुंजर/हाथी है ।

---

१. 'क्लीब' का अन्य निरुक्त—

क्लीबते क्लीबः । (अचि पृ १२७)

जो दुर्बल मन वाला होता है, वह क्लीब है ।

२. 'कुंजर' के अन्य निरुक्त—

कुजति कुञ्जरः—जो चिंघाड़ता है, वह कुंजर है ।

कुञ्जौ हनू दन्तौ वा अस्य स्त इति कुञ्जरः । (अचि पृ २७३)

जिसके कुञ्ज/दो लंबे दांत/गजदंत होते हैं, वह कुंजर है ।

कुञ्जे—वनगहने रमते—रतिमाबध्नातीति कुञ्जरः।
(जीटी प १२२)

जो कुंज/गहनवन मे रतिक्रीडा करता है, वह कुंजर/हाथी है।

४२०. कुंथु (कुन्थु)

कु—भूमौ तस्यां तिष्ठतीति कुंथु। (दश्रुचू प ६५)

जो कु—भूमि मे रहता है, वह कुंथु/सूक्ष्म प्राणी है।

४२१. कुंभ (कुम्भ)

कौ भातीति कुम्भः। (सूटी २ प १८६)

जो कु/पृथ्वी पर प्रतिष्ठित/सुशोभित होता है, वह कुंभ है।

कुम्भनात् कुम्भः। (अनुद्वामटी पृ १२५)

कौ उम्भनात् कुत्सितपूरणात् कुम्भः।[1] (नंटि पृ १६०)

जिसे पृथ्वी पर स्थित कर भरा जाता है, वह कुम्भ/घट है।

४२२. कुकुटी (कुकुटी)

कुत्सिता कुटी कुकुटी। (व्यभा ८ टी प ५७)

जो कुत्सित पदार्थों से भरा हुआ कुटीर है, वह कुकुटी/शरीर है।

४२३. कुक्कुय (कुत्कुच)

कुत्सितं भ्रूनयनौष्ठनासाकरचरणवदनविकारैः संकुचतीति कुत्कुचः।
(प्रसाटी प ७७)

जो शरीर के विभिन्न अवयवो को विकृत कर, उनका संकोच-विकोच करता है, वह कुत्कुच/चपल है।

---

१. 'कुम्भ' के अन्य निरुक्त—

कायत्यम्भसा भ्रियमाणः कुम्भः, कमुम्भति वा कुम्भः।

(अभि पृ २२६)

जो जल से भरे जाने पर शब्द करता है, वह कुम्भ/घट है।

जो कं/जल से भरा जाता है, वह कुम्भ/घट है।

४२४. कुक्कुय (कुकूज)

कुत्सितं कूजति—पीडितः सन्नाक्रन्दति कुकूजः । (उशाटी प ४८६)

जो आक्रन्दन करता है, वह कुकूज है ।

४२५. कुड (कुट)

कुटनात् कुटः, कौटिल्ययोगात् कुट इति ।[1] (अनुद्वामटी १२५)

जो टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, वह कुट/घड़ा है ।

जो विभिन्न आकारों मे मोड़ा जाता है, वह कुट/घड़ा है ।

४२६. कुत्थियचारि (कुत्सितचारिन्)

कुत्थियं चरतीति कुत्थियचारी । (आचू पृ ३१४)

जो कुत्सित आचरण करता है, वह कुत्सितचारी है ।

४२७. कुप्पह (कुपथ)

कुत्सिताः पथाः कुपथाः । (उशाटी प ५०८)

जो दूषित पथ है, वह कुपथ है ।

४२८. कुमार (कुमार)

काम्यतिऽसौ काम्यति वा क्रीडत इति कुमारः ।[2] (उचू पृ २०७)

जिसे सब चाहते हैं, वह कुमार है ।

जो क्रीडा करता है, वह कुमार है ।

---

१. 'कुट' का अन्य निरुक्त—

कुटति कुटः । (अचि पृ २२६)

जो तप्त किया जाता है, वह कुट/घट है । (**कुटिण्—प्रतापने, कुटत्—कौटिल्ये**)

२. 'कुमार' के अन्य निरुक्त—

कामयते यदपि तदपि दृष्टं इति कुमारः । कुमारयति क्रीडयति वा कुत्सितो मारोऽस्येति वा । (अचि पृ ७६)

जो कुछ देखता है, उसे चाहता है, वह कुमार है ।

जो क्रीड़ा करता है, वह कुमार है ।

जिसकी मार/वासना कुत्सित है, वह कुमार है ।

४२९. कुमारिय (कुमारिक)

कुमारेण मारेंति ते कुमारिया। (निचू २ पृ ९)

जो कु-मार/बुरी तरह से मारते हैं, वे कुमारिक/कसाई हैं।

४३०. कुय (कुज)

कौ—भूमौ जायत इति कुजाः। (अंविटी पृ २७२)

जो कु/भूमि में उत्पन्न होते हैं, वे कुज/वृक्ष हैं।

४३१. कुरुय (कुरूप)

कुत्सितं यथा भवत्येवं रूपयति—विमोहयति यत्तत्कुरूपम्।

(भटी पृ १०५२)

जो कुत्सित रूप से विमूढ़ करता है, वह कुरूप/माण्डकर्म है।

४३२. कुलत्था (कुलस्था)

कुले तिष्ठन्तीति कुलस्थाः। (भटी पृ १३९९)

जो कुल की मर्यादा में रहती हैं, वे कुलस्था/कुलाङ्गना हैं।

४३३. कुलिंगि (कुलिङ्गिन्)

कुत्सितानि—असम्पूर्णानि लिङ्गानि—इन्द्रियाणि यस्यासौ कुलिङ्गी। (बृटी पृ १०६२)

जिसके लिङ्ग/इंद्रियां पूर्ण नहीं हैं, वह कुलिंगी/विकलेन्द्रिय है।

४३४. कुवलय (कुवलय)

कुत्सितो उवलो कुवलयो। (नंचू पृ ९)

जो कृष्ण या नील उपल है, वह कुवलय/कृष्ण मुक्ताफल है।

४३५. कुवलय (कुवलय)

कुत्सितो उवलो कुवलयो।[1] (नंचू पृ ९)

जो कुत्सित/नील उत्पल है, वह कुवलय/नीलोत्पल है।

---

1. 'कुवलय' के अन्य निरुक्त—

कौ वलति प्राणितीति कुवलयं, कुत्सितो बहिर्वलयः पत्रवेष्टनमस्य वा। (अचि पृ २६०)

जो पृथ्वी से प्राण-ग्रहण करता है, वह कुवलय है।

जिसका बाहरी वलय/पत्र-वेष्टन कुत्सित है, वह कुवलय है।

४३६. कुसल (कुशल)

कुसे[1] लुणातीति कुसलो।[2] (आचू पृ ७४)

जो कुश/कर्म को काटता है, वह कुशल है।

कुच्छिते सलतीति कुशलं। (आचू पृ २१५)

कुच्छियाओ कारणाओ सलइत्ति कुसलो।[3] (दजिचू पृ ३२४)

जो कु/पाप से दूर हटता है, वह कुशल है।

४३७. कुसील (कुशील)

कुच्छितं सीलं तमिति कुशीला। (आचू पृ २१०)

जिसका शील कुत्सित है, वह कुशील है।

४३८. कुह (कुह)

कुत्ति भूमी तीए धारिज्जंतीति कुहा। (दअचू पृ ७)

जो कु/भूमि द्वारा धारण किए जाते हैं, वे कुह/वृक्ष हैं।

---

१. (क) **कौ शेते कुशः।** (अचि पृ २६७)
जो कु/पृथ्वी पर उत्पन्न होता है, वह कुश/तृण है।
(ख) **दव्वकुसा दब्भा, भावकुसा अट्ठप्पगारं कम्मं ते भावकुसे लूनंतीति कुसला।** (उचू पृ २११)

२. **'कुशल'** के अन्य निरुक्त—
कुशां लातीति कुशलः।
जो कुश/दर्भ को ग्रहण करता है, वह कुशल/कुशग्राहक है।
(लांक्—आदाने।)
कुश्यति—पुण्यात्मना सम्बध्यते कुशलम्। (अचि पृ १६)
जो पवित्र आत्मा से सबद्ध होता है, वह कुशल है।
कौ—पृथिव्यां शलति श्लाघां प्राप्नोतीति कुशलः। (शब्द २ पृ १६०)
जो कु/पृथ्वी पर श्लाघा प्राप्त करता है, वह कुशल है।

३. **कु—पापं तस्मात् शलति गच्छति पृथक्त्वं प्राप्नोतीति कुशलम्।** (शब्द २ पृ १६०)
(शल्—गतौ, श्लाघे, चलने)।

४३९. कूइय (कूजित)

कुत्सितं रसितं कूजितं । (आवचू २ पृ ७१)

जो अव्यक्त ध्वनि की जाती है, वह कूजित है ।

४४०. कूडग्गाह (कूटग्राह)

कूटेन जीवान् गृह्णातीति कूटग्राहः । (विपाटी प ४८)

कूटयन्त्र से जो मृग आदि जीवों को फंसाता है, वह कूट-ग्राह है ।

४४१. कूर (क्रूर)

कृन्तन्तीति क्रूराः । (उचू पृ १३५)

जो काटता है/नष्ट करता है, वह क्रूर है ।

४४२. केय (केय)

कित्यते—उष्यते अस्मिन्निति घञि केतः । (प्रसाटी प ४६)

जिसमे प्राणी वास करते हैं, वह केत/गृह है ।

४४३. केस (केश)

क्लेशयन्ति वा कामिनः क्लेशाः (केशाः) ।[1] ((उचू पृ १६१)

जो कामी पुरुषो को कष्ट पहुंचाते हैं, वे क्लेश/केश हैं ।

४४४. कोकंतिय (दे०)

कोकंतियन्ति—रात्रौ को को इत्येवं रारटीति । (आटी प ३३७)

जो रात्रि के समय 'को को' इस प्रकार बोलती है, वह कोकंतिय/लोमडी है ।

४४५. कोडि (कोटि)

कोडिज्जंते जम्हा बहवे दोसा उ सहिवए गच्छं । कोडि त्ति··· ।

(जीतभा १२८७)

---

१. 'केश' का अन्य निरुक्त—

के शेरत इति केशाः । (अचि पृ १२८)

जो क/मस्तक पर होते हैं, वे केश/बाल हैं ।

जिसके द्वारा बहुत से दोषो को नष्ट कर दिया जाता है, वह कोटि/भिक्षा-शुद्धि है।

४४६. कोमुदी (कौमुदी)

कुमुदेहिं[1] प्रहसणभूतेहिं कीडणं जीए सा कोमुदी।[2]

(दशचू पृ २१०)

जो विकसित कुमुदो/कमल पुष्पो के साथ क्रीडा करती है, वह कौमुदी/चादनी है।

४४७. कोव (कोप)

कुप्यते येन स कोपः। (उचू पृ २८)

जिसके द्वारा व्यक्ति कुपित होता है, वह कोप है।

४४८. कोह (क्रोध)

कुध्यति येन स क्रोधः। (ओनिटी प ५)

जिससे प्राणी क्रुद्ध होता है, वह क्रोध है।

४४९. कोहदंसि (क्रोधदर्शिन्)

कोहं पस्सति कोहदंसी। (आचू पृ १२८)

जो क्रोध को देखता है, वह क्रोधदर्शी है।

४५०. खंडिय (खण्डिक)

खंडयन्तीति खण्डिका। (उचू पृ २०९)

जो शीघ्र खण्डित/कुपित होते हैं, वे खण्डिक/विद्यार्थी हैं।

४५१. खंत (क्षान्त)

खमतीति खंतः। (सूचू २ पृ ३३५)

---

१. **कौ मोदते कुमुदम्।** (अचि पृ २६१)

जो कु/पृथ्वी पर मुदित/विकसित होता है, वह कुमुद/श्वेत कमल है।

२. कौमुदी का अन्य निरुक्त—

कुमुदानामियं विकाशहेतुत्वात् कौमुदी। (अचि पृ २४)

जो कुमुदो को विकसित करती है, वह कौमुदी है।

क्षमां करोतीति क्षान्तः । (वटी प २९२)

जो सहता है, वह क्षान्त है ।

जो क्षमा करता है, वह क्षान्त है ।

४५२. खंतिखमण (क्षान्तिक्षमण)

क्षान्त्या क्षमत इति क्षान्तिक्षमणः । (स्थाटी प ४११)

जो क्षान्ति/धृति से सहन करता है, वह क्षान्तिक्षमण है ।

४५३. खंध (स्कन्ध)

स्कन्दन्ति—शुष्यन्ति क्षीयन्ते च पोष्यन्ते च पुद्गलानां विघटनेन घटनेन स्कन्धाः । (उशाटी प ६७३)

जो पुद्गलों के विघटन से क्षीण और संघटन से पुष्ट होते हैं, वे स्कंध हैं ।

४५४. खण (क्षण)

खीयते इति खणो । (आचू पृ ५६)

जो क्षीण होता है/बीतता है, वह क्षण है ।

४५५. खत्तिय (क्षत्रिय)

क्षतात् त्रायन्त इति क्षत्रियाः ।[1] (सूचू १ पृ १४८)

क्षत्रेण धर्मेण जीवन्त इति क्षत्रियाः । (सूचू १ पृ १७५)

जो क्षत/कष्ट से त्राण देते हैं, वे क्षत्रिय हैं ।

जो क्षत्रिय धर्म से जीवित रहते हैं, वे क्षत्रिय हैं ।

४५६. खमण (क्षमण)

क्षमतीति खमणो । (अनुद्वा ३२०)

जो सहन करता है, वह क्षमण है ।

४५७. खरकंटय (खरकण्टक)

खरा—निरन्तरा निष्ठुरा वा कष्टाः कण्टका यस्मिंस्तत् खर-कण्टम् ।

---

१. क्षदति संवृणोति क्षत्रं । क्षत्रस्य अपत्यम् क्षत्रियः । (अचि पृ १९०)

जिसमें खर/तीक्ष्ण कांटे होते हैं, वह खरकण्टक/बबूल है।

खरकण्टयति—लेपवन्तं करोति यत् तत्खरण्टम् । (स्थाटी प ३३६)

जो खरण्टित/लिप्त करता है, वह खरण्ट/अशुचि है।

४५८. खवण (क्षपण)

क्षपयति कर्म्माणीति क्षपणः । (पिटी प ५)

जो कर्मों का क्षय करता है, वह क्षपण/मुनि है।

४५९. खह (खह)

खनने भुवो हाने च—त्यागे यद् भवति तत् खहमिति । (भटी पृ १४३१)

भूमि को खोदने से जो प्रकट होता है, वह खह/आकाश है।

४६०. खहयर (खचर)

खम्— आकाशं तस्मिंश्चरन्तीति खचराः । (उशाटी प ६९८)

जो ख/आकाश मे चलते हैं, वे खचर/पक्षी हैं।

४६१. खाइम (खादिम)

खे माइ खाइमंति ।[1] (आवनि १५८८)

जो खे/मुखाकाश मे समाता है, वह खादिम है।

खाज्जत इति खातिमं । (आवचू २ पृ ३१३)

जो खाया जाता है, वह खादिम है।

४६२. खीरासव (क्षीरास्रव)

क्षीरवन्मधुरत्वेन श्रोतॄणां कर्णमनःसुखकरवचनमाश्रवन्ति—क्षरन्ति ये ते क्षीराश्रवाः । (औटी पृ ५३)

जिनके वचन क्षीर की तरह झरते हैं, वे क्षीरास्रव (लब्धि-सम्पन्न) हैं।

---

१. **खमित्याकाशं तच्च मुखाकाशं तस्मिन् मायत इति खातिमं ।** (आवचू २ पृ ३१३)

४६३. खुइय (क्षुत्)

खुत्ति कतं तं खुइतं ।[1] (जीतभा १०७)

जिसमें छींत्कार किया जाता है, वह क्षुत्/छींक है ।

४६४. खुद्द (क्षुद्र)

क्षुणत्तीति क्षुद्रः । (उचू पृ २९)

जो क्षुद्रता/तुच्छता करता है, वह क्षुद्र है ।

४६५. खेड (खेट)

खेद्यन्ते—उत्त्रास्यन्तेऽस्मिन्नेव स्थिताः शत्रव इति खेटम् ।
(उशाटी प ६०५)

जिसमें स्थित हो शत्रुओं को त्रसित/भयभीत किया जाता है, वह खेट है ।

४६६. खेत्त (क्षेत्र)

क्षितो[2] त्राणं क्षेत्रं[3] । (आवचू १ पृ ३७०)

जो ग्राम को त्राण देता है, वह क्षेत्र/खेत है ।

क्षीयत इति क्षेत्रं ।[4] (उचू पृ २०६)

जो अवकाश देता है, वह क्षेत्र है ।

क्षियन्ति--निवसन्त्यस्मिन्निति क्षेत्रम् । (उशाटी प १८८)

जिसमे निवास किया जाता है, वह क्षेत्र है ।

---

१. क्षवणं क्षुत् । (अचि पृ १०६)

२. क्षितः ग्रामः । (धातु पृ २५१)

३. 'क्षेत्र' के अन्य निरुक्त—

क्षयन्त्यत्र धान्यानि क्षेत्रम् ।

जहां धान्य उत्पन्न होता है, वह क्षेत्र है ।

क्षीयते—हलैर्हिंस्यते वा क्षेत्रम् । (अचि पृ २१३)

जो हलों द्वारा क्षुण्ण होता है, वह क्षेत्र है ।

४. क्षि—निवासगत्योर्वा ।

४६७. खेत्तचार (क्षेत्रचार)

यस्मिन् क्षेत्रे चारः क्रियते यावद्वा क्षेत्रं चर्यते स क्षेत्रचारः ।
(आटी प २०२)

जिस क्षेत्र मे चार/गति की जाती है, वह क्षेत्रचार है ।

जितने क्षेत्र मे चार/गति की जाती है, वह क्षेत्रचार है ।

४६८. खेमंकर (क्षेमङ्कर)

खेमं[1] करोतीति खेमंकरः ।[2] (सूचू २ पृ ४६३)

जो क्षेम/उपद्रव का शमन करता है, वह क्षेमंकर है ।

४६९. खेय (खेद)

खेदयत्यनेन कर्मेति खेदः । (उशाटी प ४१९)

जो कर्मसस्कारो को खिन्न/उत्पीडित करता है, वह खेद/सयम है ।

४७०. खेयण्ण (क्षेत्रज्ञ)

खित्तं जाणाति खित्तण्णो । (आचू पृ ७९)

जो क्षेत्र/आत्मा को जानता है, वह क्षेत्रज्ञ/आत्मज्ञ है ।

४७१. खेयन्न (खेदज्ञ)

खेदः—अभ्यासस्तेन जानातीति खेदज्ञः ।

जो खेद/अभ्यास से आत्मा को जानता है, वह खेदज्ञ है ।

खेदः—श्रमः संसारपर्यटनजनितस्तं जानातीति । (आटी प १३१)

जो खेद/जन्म-मरण के श्रम को जानता है, वह खेदज्ञ है ।

४७२. खेल (क्ष्वेड/श्लेष्मन्[3])

खे ललणाओ खेलो । (जीतभा ८१६)

जो खे/शून्य मे घूमता है, वह खेल/श्लेष्म है ।

---

१. **क्षेमं—वशवर्तिनां उपद्रवाभावं करोति क्षेमंकरः ।** (राटी पृ २४)

२. **क्षीयन्ते क्लेशा अनेन क्षेमम् ।** (अचि पृ १६)

जो क्लेशो को क्षीण करता है, वह क्षेम/कल्याण है ।

३. **श्लिष्यति हृदयादौ श्लेष्मा ।** (अचि पृ १०६)

जो श्लिष्ट होता है, वह श्लेष्म है ।

४७३. गज (गज)

गच्छतीति गजः ।[1] (सूचू २ पृ ३१४)

जो गमन करता है, वह गज/हाथी है।

गजति गर्जते वा गजः । (सूचू २ पृ ४४४)

जो गर्जना करता है, वह गज है।

४७४. गइ (गति)

गम्यते—प्राप्यते स्वकर्मरज्जुसमाकृष्टैर्जन्तुभिरिति गतिः ।

(प्रसाटी प २९१)

अपने कर्मों के द्वारा आकृष्ट हो प्राणी जिसे पाते हैं, वह गति है।

४७५. गंगा (गङ्गा)

गाढगतो गच्छति वा गंगा । (सूचू १ पृ १४८)

जो सघन रूप से निरन्तर प्रवाहित है, वह गंगा है।

गां गच्छतीति गंगा ।[2] (उचू पृ २१४)

जो स्वर्ग से गो/पृथ्वी की ओर लाई गई है, वह गंगा है।

जो गा/स्तुति/शोभा को प्राप्त होती है, वह गंगा है।

४७६. गंठिभेयग (ग्रन्थिभेदक)

ग्रन्थि—कार्षापणादिपुट्टलिकां भिन्दन्ति—आच्छिन्दन्तीति ग्रन्थिभेदकाः । (औटी पृ ४)

जो ग्रंथि/रुपयों की नौली का बलात् भेदन/हरण कर लेते हैं, वे ग्रंथिभेदक/चोर-विशेष हैं।

---

१. 'गज' का अन्य निरुक्त—

गर्जतिः माद्यति गजः । (अचि पृ २७३)

जो मदोन्मत्त होता है, वह गज है।

२. 'गंगा' के अन्य निरुक्त—

गच्छति समुद्रं गङ्गा । गामर्गं वा गच्छतीति गङ्गा । (अचि पृ २४०)

जो समुद्र की ओर गमन करती है, वह गंगा है।

जो स्वर्गीय सुखों को प्राप्त करती है, वह गंगा है।

४७७. गंड (गण्ड)

गच्छतीति गण्डम् ।[1] (उचू पृ १९१)

जो आगे से आगे फैलता है, वह गण्ड/फोड़ा है ।

४७८. गंडि (गण्डि)

गच्छति प्रेरितः प्रतिपथाविना डीयते च कूर्दमानो विहायोगमनेनेति गण्डिः । (उशाटी प ४९)

जो हांकने पर उलटे मार्ग से जाता है और उछलता कूदता है, वह गडि/दुष्ट बैल है ।

४७९. गंडिपय (गण्डीपद)

गण्डी पद्मकर्णिका तद्वद् वृत्ततया पदानि येषां ते गण्डीपादाः । (उशाटी प ६९९)

गण्डी/पद्मकर्णिका की तरह जिनके पाव वृत्ताकार हैं, वे गंडीपद हैं ।

४८०. गंथ (ग्रन्थ)

ग्रथ्नाति—बध्नात्यात्मानं कर्मणेति ग्रन्थः । (प्रसाटी प २१०)

जो आत्मा को कर्म से बाधता है, वह ग्रथ/परिग्रह है ।

४८१. गंथ (ग्रन्थ)

विप्रकीर्णार्थग्रन्थनाद् ग्रन्थः । (अनुद्वामटी प ३४)

जो बिखरे हुए अर्थों को ग्रथित करता है, वह ग्रथ है ।

४८२. गंथमेधावि (ग्रन्थमेधाविन्)

महंतं गंथं अहिज्जति सो गंथमेधावी । (दजिचू पृ २०३)

जो महान् ग्रथ का अध्ययन करता है, वह ग्रथमेधावी है ।

४८३. गंध (गन्ध)

घ्रायते—सिङ्घ्यते इति गन्धः । (स्थाटी प २३)

---

१. **गच्छति विकारं गण्डम् ।** (अचि पृ १०७)
जो विकृत होता जाता है, वह गण्ड/फोड़ा है ।

गन्ध्यते आघ्रायते इति गन्धः। (प्राकटी १ पृ ४८)

जिसे सूंघा जाता है, वह गंध है।

४८४. गगण (गगन)

अतिशयगमनविषयत्वाद् गगनम्।[1] (भटी पृ १४३१)

जहां सब पदार्थ गमन करते हैं, वह गगन है।

४८५. गणट्ठकर (गणार्थंकर)

गणस्य साधुसमुदायस्यार्थान्—प्रयोजनानि करोतीति गणार्थंकरः।

(स्थाटी प २३३)

जो गण के अर्थ/प्रयोजनो को पूर्ण करता है, वह गणार्थंकर है।

४८६. गणसोभि (गणशोभिन्)

गणं वादप्रदानतः शोभयतीत्येवंशीलो गणशोभी।

(व्यभा १० टी प ६७)

जो गण को वादनिपुणता से सुशोभित करता है, वह गणशोभी है।

४८७. गणसोहिकर (गणशोधिकर)

गणस्य यथायोगं प्रायश्चित्तदानादिना शोधिं—शुद्धिं करोतीति गणशोधिकरः। (स्थाटी प २३३)

जो गण की शुद्धि करता है, वह गणशोधिकर है।

४८८. गणहर (गणधर)

तित्थगरेहिं सयमणुन्नातं गणं धारेंतित्ति गणहरा।

(आवचू १ पृ ८६)

जो तीर्थंकरो द्वारा अनुज्ञात गण को धारण करते हैं, वे गणधर हैं।

---

१. 'गगन' का अन्य निरुक्त—

गच्छन्त्यनेन देवा गगनम्। (अचि पृ ३७)

जिसके द्वारा देवता गमन करते हैं, वह गगन/आकाश है।

धर्मगणं धारयतीति गणधरः । (दटी प १०)

जो धर्मगण को धारण करता है, वह गणधर है ।

४८९. गणहारि (गणधारिन्)

गणं—साध्वादिसमुदायलक्षणं धारयितुं शीलमस्येति गणधारी । (आवहाटी १ पृ १९०)

जो गण/साधुसमुदाय को धारण करता है, वह गणधारी है ।

गुणसमुदयं वा धारयितुं शीलमस्येति गणधारी । (बृटी पृ ३७७)

जो गुणसमूह को धारण करता है, वह गणधारी है ।

४९०. गणिम (गणिम)

जण्णं गणिज्जइ (गणिमं) । (अनुद्वा ३८२)

गण्यते—सङ्ख्यायते वस्त्वनेनेति गणिमम् ।

जिसके द्वारा वस्तु की गणना की जाती है, वह गणिम है ।

गण्यते—सङ्ख्यायते यत्तद् गणिमम् । (अनुद्वामटी प १४२)

जिसकी गणना की जाती है, वह गणिम है ।

४९१. गमक (गमक)

गम्यते अनेनार्थ इति गमकः ।[1] (सूचू १ पृ १२)

जिसके द्वारा अर्थ को जाना जाता है, वह गमक/विकल्प है ।

४९२. गमिय (गमिक)

गमबहुलत्तणतो गमियं ।[2] (नचू पृ ५६)

जिसमे गमो/विकल्पो की बहुलता है, वह गमिक श्रुत है ।

---

१. गम्यते वस्तुस्वरूपमेभिरिति गमा—वस्तुपरिच्छेदप्रकाराः । (उशाटी प ३४२)

२. आदि-मज्झ-वसाणे वा किंचिविसेसजुत्तं सुत्तं दुगादिसतग्गसो तमेव पढिज्जति तं गमियं भण्णति । (नंचू पृ ५६)

४९३. गलि (गलि)

गिलत्येव केवलं न तु वहति गच्छति वेति गलिः। (उशाटी प ४९)

जो केवल खाता है, न भार ढोता है और न चलता है, वह गलि/दुष्ट बैल है।

४९४. गव (गो)

गच्छतीति गौः।[1] (उचू पृ १५१)

जो गति करती है, वह गौ/गाय है।

४९५. गाथा (गाथा)

गायतीति गीयते वा गाथा। (सूचू १ पृ २४५)

जो गाई जाती है, वह गाथा है।

गीयते—शब्दते स्वपरसमयस्वरूपमस्यामिति गाथा।

(उशाटी प ६१४)

जिसमें स्वसिद्धान्त और परसिद्धांत का निरूपण किया जाता है, वह गाथा है।

४९६. गाम (ग्राम)

ग्रसति बुद्धिमादिणो गुणा इति गामो।[2] (दअचू पृ ९९)

जो बुद्धि आदि गुणों को ग्रसित करता है, वह ग्राम है।

---

१. 'गौ' का अन्य निरुक्त—

गच्छत्यनेन गौः। (आप्टे पृ ६७१)

जिससे घी, दूध, चमड़ा आदि सब कुछ प्राप्त होता है, वह गौ/गाय है।

२. 'ग्राम' का अन्य निरुक्त—

ग्रस्यते कुष्ठैरिति ग्रामः। (अचि पृ २१२)

जहां अशिक्षित व्यक्ति वास करते हैं, वह ग्राम है।

अट्ठारसण्हं करभराणं गंमो गमणिज्जो वा गामो। (आचू पृ २८१)

जहां अठारह प्रकार के कर लगते हैं, वह ग्राम है।

४९७. गामंतिय (ग्रामान्तिक)

ग्रामस्यान्ते— समीपे वसन्तीति ग्रामान्तिकाः। (सूटी २ प ५५)

जो ग्राम के समीप रहते हैं, वे ग्रामान्तिक हैं।

४९८. गाय (गात्र)

गच्छति गत इति वा गात्रम्।[1] (उचू पृ ७९)

जो परलोक मे जाता है, गया है, वह गात्र/शरीर है।

४९९. गाह (ग्राह)

गृह्णन्तीति ग्राहाः। (उशाटी प ६९९)

जो ग्रहण करते हैं/पकडते हैं, वे ग्राह/मगरमच्छ हैं।

५००. गाहग (ग्राहक)

ग्राहयतीति ग्राहकः।

गृह्णातीति ग्राहकः। (व्यभा ४/२ टी प ७१)

जो ग्रहण कराता है, वह ग्राहक है।

जो ग्रहण करता है, वह ग्राहक है।

५०१. गिम्ह (ग्रीष्म)

ग्रसत इति ग्रीष्मः।[2] (उचू पृ ५७)

जो (रसो का) शोषण करता है, वह ग्रीष्म है।

५०२. गिरा (गिर्)

णिगिरंति तामिति गिरा। (दअचू पृ १५९)

जो भाषावर्गणा के पुद्गलो का निगरण/भक्षण करती है, वह गिर्/वाणी है।

गीयते गिरति गृणाति वा गिरा।[3] (उचू पृ २०६)

जो शब्द करती है, वह गिर्/भाषा है।

---

१. गच्छति मरणात् परं स्वकारणभूतपञ्चत्वं प्राप्नोति यद्वा गम्यते स्थानात् स्थानान्तरं प्राप्यते सञ्चाल्यते वाऽनेन इति गात्रम्। (शब्द २ पृ ३२२)

२. ग्रसते रसानिति ग्रीष्मः। (वा पृ २७७५)

३. गॄ—शब्दे, विज्ञापने, निगरणे।

५०३. गिरि (गिरि)

गृणाति गिरंति वा तस्मिन् गिरी। (उचू पृ २०८)

जो गिरा/वाणी को प्रतिध्वनित करता है, वह गिरि/पर्वत है।

गृणन्ति—शब्दायन्ते जननिवासभूतत्वेनेति गिरयः।

(भटी प ३०६,७)

पर्वत निवासी मनुष्यो के द्वारा जो शब्दायमान रहते हैं, वे गिरि/पर्वत हैं।

५०४. गिह (गृह)

गृह्णातीति गृहम्।[1] (उचू पृ २१६)

जो ग्रहण करता है, वह गृह है।

५०५. गिहत्थ (गृहस्थ)

गृहे गृहलिङ्गे तिष्ठतीति गृहस्थः। (व्यभा ४/२ टी प २६)

जो घर मे रहते हैं, वे गृहस्थ हैं।

जो गृहस्थवेश मे रहते हैं, वे गृहस्थ हैं।

५०६. गिहि (गृहिन्)

गिहाणि संति जेसिं ते गिहिणो। (दअचू पृ २५१)

जिनके घर हैं, वे गृही/गृहस्थ हैं।

गिहं—पुत्त-दारं, तं जस्स अत्थि सो गिही। (दअचू पृ २६६)

जिसके गृह/पुत्र-पत्नी है, वह गृही है।

धर्मार्थकामान् गृह्णातीति गृही। (उचू पृ १३८)

जो धर्म, अर्थ और काम का ग्रहण/आसेवन करता है, वह गृही है।

---

१. गृह्णाति पुरुषोपार्जितं द्रव्यमिति गृहम्। (अचि पृ २१६)
जो पुरुष द्वारा उपार्जित द्रव्य/धन को ग्रहण करता है, उसका व्यय करता है, वह गृह है।

५०७. गीई (गीती)

गीएण होइ गीई ।[1] (बृभा ६९०)

जिसने गीत/सूत्र का सम्यक् अध्ययन किया है, वह गीती/सूत्रधर है ।

५०८. गीयत्थ (गीतार्थ)

गीएण य अत्थेण य गीयत्थो ।[2] (बृभा ६८९)

जो गीत/सूत्र और अर्थ को धारण करता है, वह गीतार्थ/बहुश्रुत है ।

गीतो—विज्ञातः कृत्याकृत्यलक्षणोऽर्थो यैस्ते गीतार्थाः । (प्रसाटी प २२४)

जो गीत/कृत्य और अकृत्य को जानता है, वह गीतार्थ/बहुश्रुत है ।

५०९. गुण (गुण)

गुण्यन्ते—संख्यायन्ते इति गुणाः । (अनुद्वामटी प १००)

जिनसे व्यक्ति गणित/प्रसिद्ध व्यक्तियों में गिना जाता है, वे गुण हैं ।

५१०. गुण (गुण)

गुण्यते—भिद्यते विशिष्यतेऽनेन द्रव्यमिति गुणः । (आटी प ९८)

जिसके द्वारा द्रव्य में गुणवत्ता/विशेषता आपादित होती है, वह गुण है ।

५११. गुणासाअ (गुणास्वाद)

गुणं सायति गुणासाता । (आचू पृ १७९)

जो गुणों/इन्द्रिय-विषयों का आस्वाद लेता है, वह गुणास्वाद है ।

---

१. गीतेन—सूत्रेण केवलेन सम्यक्पठितेन गीतमस्यास्तीति गीती भवति । (बृटी पृ २०७)

२. गीतेन—सूत्रेण चार्थेन च यो युक्तः स गीतार्थो भण्यते । (बृटी पृ २०७)

५१२. गुम्मिय (गौल्मिक)

गुल्मेन समुदायेन संचरन्तीति गौल्मिकाः। (व्याभा ३ टी प ६७)

जो गुल्म/समूह रूप में भ्रमण करते हैं, वे गौल्मिक/नगर-रक्षक हैं।

५१३. गुरु (गुरु)

गृणंति शास्त्रार्थमिति गुरवः।[1] (उचू पृ २)

जो शास्त्रों के अर्थ का कथन करते हैं, वे गुरु हैं।

गीर्यते वा गुरुः। (उचू पृ १६१)

जिसकी स्तुति की जाती है, वह गुरु है।

५१४. गुरुपरिभासय (गुरुपरिभाषक)

गुरून् परिभाषते—विवदते गुरुपरिभाषकः। (उशाटी प ४३४)

जो गुरु से परिभाष/विवाद करता है, वह गुरुपरिभाषक है।

५१५. गेय (गेय)

गेयं णाम यद् गीयते सरसंचारेण। (सूचू १ पृ ४)

जो स्वर-संचार के द्वारा गाया जाता है, वह गेय है।

५१६. गेविज्ज (ग्रैवेयक)

ग्रीवेव ग्रीवा लोकपुरुषस्य त्रयोदशरज्जूपरिवर्तीप्रदेशस्तस्मिन्निविष्टतयाऽतिभ्राजिष्णुतया च तदाभरणभूता ग्रैवेयाः।[2]

(उशाटी प ७०२)

जो लोकपुरुष मे ग्रीवा स्थानीय हैं तथा अत्यन्त दीप्त होने से आभूषण की भांति शोभित हैं, वे ग्रैवेय/देवों के आवास हैं।

---

१. 'गुरु' का अन्य निरुक्त—

गिरत्यज्ञानं गुरुः। (वा पृ २६१३)

जो अज्ञान का नाश करता है, वह गुरु है। (गृ-गिरणे, शब्दे)

२. लोकपुरुषस्य ग्रीवाप्रदेशविनिविष्टा ग्रीवाभरणभूता ग्रैवेयकाः।

(अचि पृ १९)

५१७. गेहि (गृद्धि)

गृह्यतेऽनेनेति गृद्धिः । (उचू पृ १५१)

जिससे प्राणी आसक्त होता है, वह गृद्धि है ।

५१८. गो (गो)

णिसिरिया लोगंतं गच्छतीति गो । (दअचू पृ १५६)

बोली जाने पर जो लोकान्त तक जाती है, वह गो/वाणी है ।

५१९. गोत्त (गोत्र)

गूयते इति गोत्रम् ।[1] (उचू पृ १०२)

जो प्राणियो की शुभता-अशुभता प्रकट करता है, वह गोत्र (कर्म) है ।

गोयते—शब्द्यते उच्चावचैः शब्दैः आत्मेति गोत्रम् । (उशाटी प ६४१)

जिसके द्वारा प्राणी उच्चावचरूप मे पुकारा जाता है, वह गोत्र है ।

गा वाचं त्रायतीति गोत्रम् । (प्राक १ टी प ५)

जो गो/वाणी की रक्षा करता है, वह गोत्र है ।

५२० गोपुर (गोपुर)

गोभिः पूर्यंत इति गोपुरम् ।[2] (उचू पृ १८२)

जो नगर-द्वार गो/प्रभा से परिपूर्ण होता है, वह गोपुर है ।

जो नगर-द्वार अपनी कलात्मकता के कारण गो/जननेत्रो से परिपूर्ण होता है, वह गोपुर है ।

---

१. **गूयते शुभाशुभता प्राणिना यद्वशात्तद्वा गोत्रम् ।** (पंसमटी प १०७)
गूङ्—शब्दे ।

२. 'गोपुर' के अन्य निरुक्त—
१. **गोप्यते गोपुरम् ।** (अचि पृ २१७)
जो नगर की रक्षा करता है, वह गोपुर/नगर-द्वार है ।
२. **गोपायति नगर रक्षतीति गोपुरम् ।** (शब्द २ पृ ३५६)

जो नगर-द्वार गो/रत्नों से परिपूरित/मंडित होता है, वह गोपुर है।

जो नगर-द्वार गो/शोभा से परिपूर्ण है, वह गोपुर है।

५२१ गोय (गोत्र)

गुप्यत इति गोत्रं। (सूचू १ पृ २३४)

जो रक्षा करता है, वह गोत्र/संयम है।

गां त्रायत इति गोत्रम्। (सूटी २ प १६८)

जो गो/पृथ्वी/प्राणीजगत् को त्राण देता है, वह गोत्र/संयम है।

५२२. गोयर (गोचर)

गोरिव मध्यस्थतया भिक्षार्थं चरणम् गोचरः।[1] (बृटी पृ १६६७)

गौ की भांति मध्यस्थभाव से भिक्षा के लिए चार/गमन करना गोचर है।

५२३. गोरहग (दे)

गोजोग्गा रहा गोरहजोगत्तणेण गच्छंति गोरहगा।

(दअचू पृ १७०)

जो रथ मे जुतने योग्य हैं, वे गोरहग/बैल हैं।

५२४. घड (घट)

घटनाद् घटः। (सूटी २ प १८८)

घटते—चेष्टते इति घटः। (स्थाटी प १४६)

जो घटित/कार्यंकर होता है, वह घट है।

जो क्रियाशील होता है, वह घट है।

५२५. घय (घृत)

जघर्त्ति घरत्ति वा घत।[2] (उचू पृ ६६)

जो सिञ्चन करता है, वह घृत है।

---

१. गौरिव परिचितेतरभूभागपरिभावनारहितत्वेन चरणं भ्रमणमस्मिन्निति गोचरः। (उशाटी प ४६२)

२. घृ—सेचने।

५२६. घसी (दे)

गसति सुहुमसरीरजीवविसेसा इति घसी । (दअचू पृ १५६)

जहा सूक्ष्म जीव ग्रसित/एकत्रित रहते हैं, वह घसी/पोली-भूमि है ।

५२७. घाइ (घाति)

स्वावार्यं गुणं घ्नन्ति इत्येवंशीलाः घातिन्यः । (नक ५ टी पृ २)

जो आत्मगुणो का घात करते हैं, वे घाति (कर्म) हैं ।

५२८. घास (ग्रास)

ग्रस्यत[1] इति ग्रासः । (उचू पृ ७५)

जिसको चबाया जाता है, वह ग्रास/भोजन है ।

५२९. घासेसणा (ग्रासैषणा)

घासं एसंतीति घासेसणा । (आचू पृ ३२३)

जिसमे ग्रास/भक्षण-क्रिया का विवेक किया जाता है, वह ग्रासैषणा है ।

५३०. घोर (घोर)

घूर्णत[2] इति घोरः ।[3] (उचू पृ ११६)

जो प्रकपित करता है, वह घोर/भयावह है ।

जो घूर/क्रूर है, वह घोर/निर्दय है ।

५३१. घोरमुहुत्त (घोरमुहूर्त्त)

घूर्णत[4] इति घोरः । (उचू पृ ११६)

जो घोर/गतिशील है, वह मुहूर्त्त/काल है ।

---

१. ग्रस—अदने ।

२. Ghoràh=horrible (Nepālī—ghurnu) (ए पृ १६२)

३. घूर—हिंसायाम् । घुर—भीमार्थशब्दयोः । हन्—हिंसागत्योः ।

४. घूर्णत्—भ्रमणे ।

५३२. चउत्थ (चतुर्थ)

चत्वारि भक्तानि यत्र त्यज्यन्ते तच्चतुर्थं (भक्तम्)।

(आटी प ७६)

जिसमें चार समय का आहार छोड़ा जाता है, वह चतुर्थ-भक्त/उपवास है।

५३३. चंडाल (चण्डाल)

चंडेन अलं यस्य भवति चंडालः।[1]

जो चड/क्रोध से परिपूर्ण है, वह चण्डाल/क्रोधी है।

चंडेन वा आगलितः चंडालः। (उचू पृ २६)

जो चड/क्रोध से उद्विग्न है, वह चण्डाल/क्रोधी है।

५३४. चक्कवट्टि (चक्रवर्तिन्)

चक्रेण वर्तयति पालयतीति चक्रवर्ती।[2] (अनुद्वामटी प १५८)

जो चक्र के द्वारा राज्य का संचालन करता है, प्रजा का पालन करता है, वह चक्रवर्ती है।

५३५. चक्किय (चाक्रिक)

चक्रं प्रहरणमेषामिति चाक्रिकाः।

चक्र जिनका शस्त्र है, वे चाक्रिक/योद्धा हैं।

---

१. चण्डमुग्रं कर्म अलति पर्याप्नोति चण्डालः। (अचि पृ १६८)

२ 'चक्रवर्ती' के अन्य निरुक्त—

नृपाणां चक्रे समूहे वर्तते स्वाम्यनेनेति चक्रवर्ती।

जो राजाओं के चक्र/समूह मे स्वामी होता है, वह चक्रवर्ती है।

चक्रं राष्ट्रं वर्तयतीति वा। (अचि पृ १५४)

जो राष्ट्र का पालन करता है, वह चक्रवर्ती है।

चक्रे भूमण्डले वर्तितु, चक्रं सैन्यचक्रं वा सर्वभूमौ वर्तयितु शीलमस्य चक्रवर्ती। (वा पृ २८३६)

जो (छह खण्ड) पृथ्वी पर शासन करता है, वह चक्रवर्ती है।

जिसकी सेना सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैल जाती है, वह चक्रवर्ती है।

चक्रं वास्ति येषां ते चाक्रिकाः ।

चक्र के द्वारा जो आजीविका प्राप्त करते है, वे चाक्रिक/कुंभकार, तैली आदि हैं ।

चक्रं वोपदर्श्य याचन्ते ये ते चाक्रिकाः । (ज्ञाटी प ६४)

जो चक्र दिखाकर याचना करते हैं वे चाक्रिक/भिखारी हैं।

५३६. चक्खु (चक्षुष्)

चक्ष्यतेऽनेनेति चक्षु. ।[2] (आवचू १ पृ ५३०)

जो देखती है, वह चक्षु (इन्द्रिय) है ।

५३७. चरक (चरक)

तवं चरइ त्ति चरको । (दअचू पृ ३७)

जो तप का आचरण करता है, वह चरक/श्रमण है ।

५३८ चरण (चरण)

चर्यत इति चरणम् । (सूटी २ प ४१)

जिसका आचरण किया जाता है, वह चरण/चारित्र है ।

चर्यते – गम्यते — प्राप्यतेऽनेन ससारोदधे. पर कूलमिति चरणम् । ।(विभाकोटी पृ ३)

जिसके द्वारा ससार-समुद्र का पार पाया जाता है, वह चरण/चारित्र है ।

चरन्ति — परमपदं गच्छन्ति जीवा अनेनेति चरणम् । (नक १ टी पृ ३०)

जिससे जीव परमपद/मोक्ष को प्राप्त करते हैं, वह चरण/चारित्र है ।

---

१. **चक्ष्—दर्शने ।**

२. '**चक्षु**' का अन्य निरुक्त—

चष्टे शुभाशुभं स्फुरणाच्चक्षुः । (अचि पृ १३०)

जिसके स्फुरण/स्पन्दन से शुभ-अशुभ का निर्देश किया जाता है, वह चक्षु है ।

५३९. चरणकरणपारविअ (चरणकरणपारविद्)

चरंति तदिति चरणं व्रताभ्युपगमं, कुर्वन्ति तदिति करणं पडिलेहणादि पारमन्तगमनमित्येकोऽर्थः, चरणकरणपारं विदंतीति चरणकरणपारविदु । (सूचू २ पृ ३३५)

व्रतो को स्वीकार करना 'चरण' है, प्रतिलेखन आदि दैनिक क्रियाए करना 'करण' है। जो इन दोनो के पार/अंतिम बिन्दु को जान लेते हैं, स्पर्श कर लेते हैं, वे चरणकरणपारविद् हैं।

५४०. चरित्त (चरित्र)

चर्यते—आसेव्यते यत् तेन वा चर्यते—गम्यते मोक्ष इति चरित्रम् । (स्थाटी प ४९)

जिसका चरण/आसेवन किया जाता है, वह चरित्र है।

जिससे मोक्ष प्राप्त किया जाता है, वह चरित्र है।

चरन्ति—गच्छन्त्यनिन्दितमनेनेति चरित्रम् ।[1] (आवमटी प ११७)

जिसके द्वारा चरण/अनिंद्य-आचरण किया जाता है, वह चरित्र है।

५४१. चरिया (चर्या)

चरणं चर्यते वा चर्या । (आटी प २०१)

जिसका आचरण किया जाता है, वह चर्या है।

५४२. चल (चल)

चलति चालयति वा चलो । (आचू पृ २४१)

जो विचलित होता है, वह चल है।

जो विचलित करता है, वह चल है।

५४३. चाउरंत (चातुरन्त)

चत्वारः चतुर्गतिलक्षणा अन्ताः अवयवाः यस्मिंस्तच्चातुरन्तम् । (उशाटी प ५८५)

जिसके चार गतिरूप अन्त/अवयव हैं, वह चातुरंत/संसार है।

---

१. **चरन्ति तस्मिं, सीलेसु परिपूरकारिताय पवत्तन्ती ति चारित्तं ।** (वि १/२५)

५४४. चाउरंत (चातुरन्त)

चत्वारोऽन्ताः पूर्वापरदक्षिणसमुद्रास्त्रयः चतुर्थो हिमवान् इत्येवं स्वरूपास्ते वश्यतयास्य सन्तीति चातुरन्तः। (जटी प १८१)

जिसके पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशाओ के समुद्र और हिमवान् पर्वत—ये चारो वश मे हैं, वह चातुरन्त/चक्रवर्ती है।

५४५. चारक (चारक)

चारयतीति चारकः।[1] (सू चू १ पृ ८२)

जो गुप्तचरी करता है, वह चारक/गुप्तचर है।

५४६. चारित्त (चारित्र)

चियस्स कम्मचयस्स रित्तीकरणं चारित्तं।[2] (निचू १ पृ २५)

जो सचित कर्मचय को रिक्त करता है, वह चारित्र है।

५४७. चालणा (चालना)

सूत्रगोचरमर्थगोचरं वा दूषणं चाल्यते—आक्षिप्यते यया वचनपद्धत्या सा चालना। (बृटी पृ २५८)

जिस वचन-पद्धति से सूत्र या अर्थविषयक गुण-दोषो का चालन/विमर्श किया जाता है, वह चालना/व्याख्या-पद्धति है।

५४८. चिइ (चिति)

चीयन्ते—मृतकदहनाय इन्धनानि अस्यामिति चितिः।[3] (उशाटी प ३८६)

मृतक को जलाने के लिए जहा लकडियो का उपचय किया जाता है, वह चिति/चिता है।

---

१ स्वपरराष्ट्रवृत्तान्तज्ञानार्थं राजनियोगेन इतस्ततो भ्रमणकर्त्तरि चारे। (वा पृ २८६८)

जो राजाज्ञा से स्वराष्ट्र और परराष्ट्र की प्रवृत्तियो को जानने के लिए इधर-उधर गमन करता है, वह चारक/गुप्तचर है।

२ चितस्य कर्मणो रिक्तीकरणात् चारित्रम्। (प्राक १ टी पृ १६)

३. चीयतेऽस्यामग्निरिति चितिः। (शब्द २ पृ ४४७)

५४९. चिइ (चिति)

चीयते असाविति चितिः। (आवहाटी २ पृ १४)

जिसका उपचय किया जाता है, वह चिति है।

५५०. चिंध (चिह्न)

चिह्नते—ज्ञायतेऽनेनेति चिह्नम्। (सूटी १ प १०२)

जिसके द्वारा जाना जाता है, वह चिन्ह है।

५५१. चिक्खल्ल (दे)

चिक्खं करोति खल्लं च भवति चिक्खल्लं। (अनुद्वा ३६८)

जो फिसलाता है और लिप्त कर देता है, वह चिक्खल/कर्दम है।

जो 'चिक् चिक्/चग् चग्' शब्द करता है, वह चिक्खल है।

५५२. चितका (चितका)

चीयन्ते इति चितकाः।[1] (सूचू १ पृ १३७)

जिसको चिना जाता है, वह चितका/चिता है।

५५३. चित्त (चित्त)

चिंतिज्जइ[2] जेण तं चित्तं।[3] (नचू पृ ५)

जिससे स्मरण किया जाता है, वह चित्त है।

चित्यते यैस्तानि चित्तानि। (नटी पृ ८)

जिनके द्वारा सज्ञान किया जाता है, वे चित्त हैं।

---

१. चीयते श्मशानाग्निरस्यां यद्वा चीयते उच्चीयतेऽसौ प्रेतस्य परलोकशर्मणे इति चिता। (शब्द २ पृ ४४७)

२. चित्-स्मृतौ, चित्-ज्ञाने।

३. 'चित्त' के अन्य निरुक्त—

चिन्तेति आरम्मणं उपनिज्झायति ति चित्तं।

जो आलम्बन को ग्रहण करता है, वह चित्त है।

सन्तानं चिनोतीति पि चित्तं। (विटी पृ १६)

जो व्यक्तित्व को पुष्ट करता है, वह चित्त है।

५५४. चित्ताणुग (चित्तानुग)

चित्तं अणुगच्छतीति चित्ताणुगा। (उचू पृ ३०)

जो चित्त के अनुकूल प्रवृत्ति करते हैं, वे चित्तानुग हैं।

५५५ चिरट्ठितीय (चिरस्थितिक)

चिरं तेसु चिट्ठंतीति चिरट्ठितीय। (सूचू १ पृ १२८)

जहां चिर/लंबे समय तक रहना होता है, वह चिरस्थितिक (नरक) है।

५५६. चीर (चीर)

चित्तंति तविति चीरं'।' (उचू पृ १३८)

जो ढांकता है, वह चीर/वल्कल है।

५५७. चेइय (चैत्य)

चीयत इति चेइय। चित्तति वा। ततः चेतनाभावो वा जायते चेतिय। (उचू पृ १८१)

जो चिति/वेदिका से युक्त होता है, वह चैत्य/चैत्यवृक्ष है।

जो चेतन प्राणियों (पशु-पक्षियों) से आकीर्ण होता है, वह चैत्य/चैत्यवृक्ष है।

५५८. चेइयथूभ (चैत्यस्तूप)

चैत्यस्य सिद्धायतनस्य प्रत्यासन्नाः स्तूपाः चैत्यस्तूपाः।

चित्ताह्लादकत्वात् वा चैत्याः स्तूपाः चैत्यस्तूपाः।

(स्थाटी प २२५)

चैत्य/सिद्धायतन के निकटवर्ती स्तूप चैत्यस्तूप कहलाते हैं।

जो चित्त में आह्लाद पैदा करते हैं, वे चैत्यस्तूप हैं।

---

१ **चिनोति आवृणोति वृक्षं कटिदेशादिकं वा चीरम्।**

(शब्द २ पृ ४५४)

५५९. चेल (चेल)

चिज्जतीति चेलं ।[1] (आचू पृ २१७)

जिसमें (तन्तुओं का) उपचय होता है, वह चेल/वस्त्र है ।

५६०. छउम (छद्म)

छादयति छद्म ।[2] (आवहाटी १ पृ ९०)

जो आच्छादित करता है,वह छद्म/कर्म है ।

५६१. छउमत्थ (छद्मस्थ)

छद्मनि तिष्ठन्तीति छद्मस्थाः । (आवहाटी १ पृ ९०)

जो आवरण मे अवस्थित हैं, वे छद्मस्थ/अवीतराग है ।

५६२. छंदोणुवत्ति (छन्दोनुवर्तिन्)

छंदो—गुरूणामभिप्रायस्तमनुवर्तते—आराधयतीत्येवंशीलः छंदोनुवर्ती । (व्यभा १ टी प ३१)

जो छद/अभिप्राय का अनुवर्तन करता है, वह छदोनुवर्ती है ।

५६३. छत्त (छत्र)

छादयतीति छत्रम् । (आटी प ४०२)

जो आच्छादित करता है, वह छत्र है ।

५६४. छवि (छवि)

छ्यति छिद्यते वा छविः । (उचू पृ ५६)

जिसे उधेडा जाता है, वह छवि/त्वचा है ।

---

१ 'चेल' का अन्य निरुक्त—

चिल्यते, चेलति वा चेलम् । (अचि पृ १४९)

जो पहना जाता है, वह चेल/वस्त्र है ।

(चिल्-वसने)

२. **छादयति आत्मानं गुणमात्मन इति छद्म ।** (प्राक ४ टी पृ ३२)

५६५. छाया (छाया)

छ्यति छिनत्ति वाऽऽतपमिति छाया ।　　　　(उशाटी प ३८)

जो आतप को छिन्न/नष्ट करती है, वह छाया है ।

५६६. छिड्ड (छिद्र)

छिद्रः छेदनस्यास्तित्वाच्छिद्रम् ।　　　　(भटी पृ १४३१)

जिसका अस्तित्व छिद्रमय है, वह छिद्र/आकाश है ।

५६७. छिड्डप्पेहि (छिद्रप्रेक्षिन्)

छिद्राणि प्रमत्ततादीनि प्रेक्षत इति छिद्रप्रेक्षी ।　(स्थाटी प २९०)

जो छिद्र/दोषो की प्रेक्षा करता है, वह छिद्रप्रेक्षी है ।

५६८. छेवट्ट (सेवार्त्त)

अस्थिद्वयपर्यन्तस्पर्शनलक्षणां सेवामार्त्तं सेवामागतमिति सेवार्त्तम् ।
(स्थाटी प ३४३)

जो दो हड्डियो के अन्त का स्पर्श करता है, वह 'सेवा' है । जो उस रूप मे आर्त्त है/प्रतिबद्ध है, वह सेवार्त्त (सहनन) है ।

५६९. छेवट्ठ (छेदवर्ति)

यत्रास्थीनि परस्परं छेदेन वर्तन्ते न कीलिकामात्रेणापि बन्धस्तत्, छेदवर्ति ।　　　　(जीटी प १५)

जहा अस्थियो मे परस्पर जुड़ने के लिए छिद्र होता है, कीलिका नहीं, वह छेदवर्ति (सहनन) है ।

५७०. जइ (यति)

जतमाणतो जती ।[1]　　　　(दअचू पृ २३३)

---

१. 'यति' के अन्य निरुक्त—

यतते मोक्षायेतिस्य यतिः ।

जो मोक्ष के लिए प्रयत्न करता है, वह यति है ।

यतं यमनमस्त्यस्य यती । (अचि पृ १४)

जो यमित/संयमित है, वह यति/मुनि है ।

यतते सर्वात्मना संयमानुष्ठानेष्विति यतिः । (बृटी पृ ६१)

जो संयम-अनुष्ठान में यत/प्रयत्नशील है, वह यति/मुनि है ।

५७१. जंतु (जन्तु)

जायंतीति जंतवो । (आचू पृ २०५)

जननाज्जन्तुः । (भटी पृ १४३२)

जो जन्म लेते हैं, वे जंतु हैं ।

५७२. जंबुद्दीवपण्णत्ति (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति)

जम्ब्वा—सुदर्शनापरनाम्न्याऽनादृतदेवावासभूतयोपलक्षितो द्वीपो जंबूद्वीपस्तस्य प्रकर्षेण—निःशेषकुतीर्थिकसाधर्म्यगम्य यथावस्थित-स्वरूप निरूपणलक्षणेन ज्ञप्तिः—ज्ञापनं यस्यां ग्रंथपद्धतौ, ज्ञप्तिर्ज्ञानं वा यस्याः सकाशात् सा जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिः ।

जम्बू/सुदर्शन नाम के देवता से अधिष्ठित द्वीप जम्बूद्वीप है । उस द्वीप के अन्तर्हित मत-मतान्तरो की सम्यक् ज्ञप्ति/अवगति देने वाला ग्रंथ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति है ।

जंबूद्वीपं प्रान्ति—पूरयन्ति स्वस्थित्येति जंबूद्वीपप्राः जगतीक्षेत्रवर्ष-धराद्यास्तेषां ज्ञप्तिर्येषां सकाशात् सा जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिः ।

(जंटी प ४)

जंबूद्वीप जगती, क्षेत्र और सीमांतक पर्वतो के द्वारा परिपूर्ण है । उन सबकी ज्ञप्ति/ज्ञान जिस ग्रंथ से होता है, वह जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति है ।

५७३. जक्ख (यक्ष)

यांति क्षयमिति यक्खा ।[१] (उचू पृ १००)

जो क्षय/निवास-स्थान को शीघ्र बदल लेते हैं, वे यक्ष हैं ।

यान्ति वा तथाविधर्द्धिसमुदयेऽपि क्षयमिति यक्षाः ।

जो विशिष्ट ऋद्धि के होने पर भी क्षय/मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वे यक्ष हैं ।

---

१. Swift creatures, changing their abode quickly and at will. (पा पृ ९४१)

इज्यन्ते पूज्यन्ते इति यक्षाः । (उशाटी प १८७)

जिनकी पूजा की जाती है, वे यक्ष हैं ।

५७४. जग (जग)

जगति विद्यन्ते ये, जायन्त इति वा जगाः । (सूचू १ पृ २०३)

जो जगत् मे विद्यमान हैं, वे जग/जन्तु हैं ।

जो उत्पन्न होते हैं, वे जग/जतु हैं ।

५७५. जग (जगत्)

जायत इति जगत् ।[1] (सूचू १ पृ १४६)

जो उत्पन्न होता है, वह जगत् है ।

५७६. जगसव्वदंसि (जगसर्वदर्शिन्)

जगे सव्वं पस्सतीति जगसव्वदंसी । (सूचू १ पृ ६८)

जो जगत् मे सब कुछ देखता है, वह जगसर्वदर्शी है ।

५७७. जडा (जटा)

जायत इति जडा ।[2] (उचू पृ १३८)

जो तपस्वी के या तपस्या मे उत्पन्न होती है, वह जटा है ।

५७८. जण (जन)

जइंति जाइस्संति य जाणंति वा कम्माणि जणा । (आचू पृ २३२)

जो कर्म-सस्कारो को उत्पन्न करते हैं, करेंगे, वे जन हैं ।

जो कर्म-सस्कारो को जानते हैं, वे जन हैं ।

---

१. **'जगत्'** का अन्य निरुक्त—

गच्छतीत्येवशीलं जगत् । (अचि पृ ३०६)

जो निरतर गतिशील है, वह जगत् है ।

२. (क) **जायते तपसि जटा ।** (अचि पृ १८१)

(ख) **'जटा'** का अन्य निरुक्त—

जटति परस्पर संलग्ना भवतीति जटा । (शब्द २ पृ ५०३)

परस्पर उलझे हुए केशो की संहति को जटा कहते हैं । (जट्-संहतौ)

५७९. जणणी (जननी)

जनयति—प्रादुर्भावयत्यपत्यमिति जननी। (उशाटी प ३८)

जो सन्तान को उत्पन्न करती है, वह जननी है।

५८०. जणवयपाल (जनपदपाल)

जनपदं पालयतीति जनपदपालः। (राटी पृ २४)

जो जनपद का पालन करता है, वह जनपदपाल है।

५८१. जण्ण (यज्ञ)

जयंते यजंति वा तमिति यज्ञः।[1] (दचू पृ २११)

जिससे (देवों को) प्रसन्न किया जाता है, वह यज्ञ है।

जिसमें (देवता की) पूजा की जाती है, वह यज्ञ है।

५८२. जय (जगत्)

अतिशयगमनाज्जगत्। (भटी पृ १४३२)

जो निरन्तर गति करता है, वह जगत्/जीव है।

५८३. जरा (जरा)

णरा जिज्जति जेण सा जरा। (आचू पृ १०७)

जिससे मनुष्य जीर्ण होता है, वह जरा/बुढापा है।

५८४. जराउय (जरायुज)

जराउवेढिता जायंति जराउजा। (दअचू पृ ७७)

जो जरा/झिल्ली से वेष्टित होकर जन्मते हैं, वे जरायुज हैं।

५८५. जलण (ज्वलन)

जलतीति जलणो। (अनुद्वा ३२०)

जो जलता है, वह ज्वलन/अग्नि है।

५८६. जलयर (जलचर)

जले चरन्ति—भक्षयन्ति चेति जलचराः। (उशाटी प ६९८)

जले चरन्ति—पर्यटन्तीति जलचराः। (प्रसाटी प २८६)

जो जल-जीवों का भक्षण करते हैं, वे जलचर हैं।

जो जल में पर्यटन करते हैं, वे जलचर हैं।

---

१. इज्यते यज्ञः। (अचि पृ १८२)

५८७. जल्ल (दे)

जायते लीयते वा जल्लं । (उचू पृ ८०)

जो उत्पन्न होता है, चिपकता है, वह जल्ल/मैल है।

५८८. जवणाली (यवनाली

जीए णालीए जवा वाविज्जंति सा जवणाली । (आवचू १ पृ ५६

जिस नलिका के द्वारा यव/जौ बोए जाते है, वह यवनालिका है।

५८९. जस (यशस्)

अश्नुते सर्वलोकेष्विति यशः । (उचू पृ १६७)

जो सारे लोक मे व्याप्त होता है, वह यश है।

५९० जहक्खाय (यथाख्यात)

अहसद्दो जाहत्थे आङोऽभिविहीए कहियमक्खायं ।

चरणमकसायमुदितं तमहक्खायं जहक्खायं ॥ (विभा १२७९)

यथातथ्येन अभिविधिना वा यत् ख्यातं—कथितं अकषायचारित्रमिति तत् अथाख्यातम् ।

जो यथार्थ में अकषायचारित्र आख्यात/कथित है, वह यथाख्यात (चारित्र) है।

सर्वस्मिन् जीवलोके ख्यातं—प्रसिद्धमकषायं भवति चारित्रमिति तथैव यदेतत् यथाख्यातम् । (प्रसाटी प २९२)

जो सारे लोक मे अकषायचारित्र के रूप में ख्यात/प्रसिद्ध है, वह यथाख्यात है।

५९१. जायतेय (जाततेज)

तेजेण सह जायति जायतेओ ।

जो तेज के साथ प्रादुर्भूत होता है, वह जाततेज/अग्नि है।

जायमाणस्स वा तेजः जाततेजो । (दश्रुचू पृ ७४)

जो प्रादुर्भूत होने पर तेजस्वी होता है, वह जाततेज/अग्नि है।

५९२. जावय (यापक)

यापयतीति यापकः। (दटी प ५७)

जिस बहाने समय का यापन किया जाता है, वह यापक/हेतु है।

५९३. जावसिय (यावसिक)

यवसः तत्प्रायोग्यमुद्गमाषादिरूपआहारस्तेन तद्वहनेन चरन्तीति यावसिकाः। (बृटी पृ ४६५)

जो मूग, उडद आदि के भोजन से जीवन चलाते हैं, वे यावसिक हैं।

५९४. जिण (जिन)

रागद्वेषमोहान् जयन्तीति जिनाः। (स्थाटी प १६८)

जो राग, द्वेष और मोह को जीतते हैं, वे जिन हैं।

५९५. जीव (जीव)

जीवत्तं आउयं च कम्मं उवजीवितं तम्हा जीवे। (भ २/१५)

जो जीवत्व और आयुष्य कर्म का भोग करता है, वह जीव है।

जीवइ जीविस्सइ य जिवं ति होइ जिओ। (जीतभा ७०४)

जो जीता है, जीएगा, वह जीव है।

जीवान् धारयतीति जीवः। (भटी पृ १३३३)

जो प्राणो को धारण करता है, वह जीव है।

५९६. जीवित (जीवित)

जीविज्जइ जेणं तं जीवितं। (आचू पृ ६६)

जिससे प्राणधारण किया जाता है, वह जीवित/जीवन है।

५९७. जीहा (जिह्वा)

जायते जयति[1] जिनति वा जिह्वा।[2] ((उचू पृ २०९)

जो जन्म के साथ उत्पन्न होती है, वह जिह्वा है।

जो सब इन्द्रियो को जीतती है, वश मे करती है, वह जिह्वा है।

५९८. जुवाण (युवन्)

यौवनस्थोऽहमित्यात्मानं मन्यते यः भवति जुवाणो।[3]

(अनुद्वाचू पृ ५६)

जो अपने आपको यौवन मे अवस्थित मानता है, वह युवक है।

युवा—यौवनस्थः प्राप्तवया एष इत्येवम् अणति—व्यपदिशति लोको यमसौ निरुक्तिवशात् जुवानः। (अनुद्वामटी प १६२)

'यह युवा है'—इस रूप मे लोग जिसका व्यपदेश करते हैं, वह युवक है।

५९९. जूव (यूप)

युवंति तेनात्मनः यूपा।[4] (उचू पृ २११)

जिससे पशुओ को बाधा जाता है, वह यूप/यज्ञ-स्तम्भ है।

---

१. **जिबिमन्विउ नायगु वसि करहु जसु अधिन्नइं अन्नइं।** (प्रा पृ ५६९)

२. 'जिह्वा' के अन्य निरुक्त—

जिह्वा कोकुवा। कोकूयमाना वर्णान्नुदतीति वा जिह्वा। (नि ५/२६)

जो पुन पुन. पुकारती है, वह जिह्वा है।

लेढि रसान् जिह्वा। (अचि पृ १३२)

जो रसो का आस्वाद लेती है, वह जिह्वा है। (लिहेर्जिह् च—उणा ५१३)

३. 'युवा' का अन्य निरुक्त—

यौति मिश्रीभवति स्त्रिया युवा। (अचि पृ ७९)

जो स्त्री के साथ युक्त होता है, वह युवा है।

४. **यूयते पशुरनेन यूपः।** (अचि पृ १८३) **यु-बन्धे।**

६००. जोइ (ज्योतिस्)

ज्योतयतीति ज्योतिः। (सूचू १ पृ २११)

जो प्रकाशित करती है, वह ज्योति है।

६०१. जोइ (ज्योतिस्)

द्योतयन्ति—प्रकाशयन्ति जगदिति ज्योतींषि। (प्रसाटी प ३३३)

जो जगत् को ज्योतित/प्रकाशित करते हैं, वे ज्योति/विमान हैं।

६०२. जोइ (द्योति)

द्युतते द्योतिः। (उचू पृ २१०)

जो द्योतित/प्रकाशित होती है, वह द्योति/अग्नि है।

६०३. जोइसिअ (ज्योतिष्क)

जोतकरा ज्योतिष्का। (सूचू २ पृ ३९७)

जो उद्योत करते हैं, वे ज्योतिष्क देव हैं।

६०४. जोग (योग)

जं जीवे जुजयती पेरयति वा ततो जोगा। (जीतभा ७३२)

जो जीव द्वारा प्रयुक्त हैं, वे योग/प्रवृत्तिया हैं।

जो जीव को प्रेरित करते हैं, वे योग हैं।

युज्यत इति योगः।[1] (आवचू १ पृ ६०६)

जो जोडता है, वह योग है।

६०५. जोगव (योगवत्)

योगो नाम संयम एव, योगो यस्यास्तीति स भवति योगवान्। (सूचू १ पृ ५४)

जो योग/संयम-संपन्न है, वह योगवान् है।

योगः-समाधिः सोऽस्यास्तीति योगवान्। (उशाटी प ३४३)

जो योग/समाधि-सपन्न है, वह योगवान् है।

---

१. युज्यते—धावनवल्गनादिक्रियासु व्यापार्यत इति योगः। (नक १ टी पृ ११३)

६०६. जोगवाहि (योगवाहिन्)

श्रुतोपधानकारितया योगेन वा समाधिना सर्वत्रानुत्सुकत्वलक्षणेन वहतीत्येवंशीलो योगवाही। (स्थाटी प ४६१)

जो योग/तपोयोग और समाधियोग से जीवनयापन करता है, वह योगवाही है।

६०७. जोणि (योनि)

जणोति जोणिः। (उचू पृ १६५)

जो पैदा करती है, वह योनि है।

यौति—मिश्रीभवति असुमान् यासु ता योनयः।

जिनमे जीव सम्मिश्रित होता है, वे योनिया हैं।

युवन्ति—तैजसकार्मणशरीरवन्तः सन्त औदारिकादिशरीरेण मिश्रीभवन्त्यास्यामिति योनिः। (नटी पृ ३)

जिसमे विविध शरीरो का मिश्रण होता है, वह योनि है।

आसु जन्तवो जुषन्ते सेवन्ते ता इति वा योनयः।

(उशाटी प १८३)

जीव जिनमे बार-बार आते है, रहते हैं, वे योनिया/उत्पत्ति-स्थल हैं।

६०८. झरग (स्मारक/ध्याता)

सुत्तत्थे य मणसा झायंतोज्झरको।[1] (नचू पृ ८)

जो सूत्र और अर्थ का मन से चिंतन करता है, वह स्मारक (स्मरण करने वाला) है।

६०९. झाण (ध्यान)

ध्यायते—चिन्त्यते वस्त्वनेनेति ध्यातिर्वा ध्यानम्। (प्रसाटी प ६८)

जिसके द्वारा वस्तु का चिंतन किया जाता है, वह ध्यान है।

६१०. झुसिर (शुषिर)

झुषेः—शोषस्य दानात् शुषिरम्। (भटी पृ १४३१)

जो शोष—पोलापन है, वह शुषिर/आकाश है।

---

१. स्मरेर्झरझूर । (प्रा ४/७४)

६११. ठवणा (स्थापना)

उडुबद्धातो अण्णा मेरा ठविज्जतीति ठवणा। (दशुचू प ५२)

ऋतुबद्ध काल के अतिरिक्त मर्यादा स्थापित करना स्थापना/पर्युषणा है।

६१२. ठवणा (स्थापना)

स्थाप्यत इति स्थापना। (स्थाटी प २)

स्थापित करना स्थापना है।

६१३. ठाण (स्थान)

तिट्ठंति तहिं तेण ठाणं। (आचू पृ ४४)

जहा ठहरा जाता है, वह स्थान है।

६१४. ठाण (स्थान)

ठाणे णं जीवा ठाविज्जंति, अजीवा···। (नं ८३)

ठाविज्जंति त्ति स्वरूपतः स्थाप्यंते, प्रज्ञाप्यंते। (नंचू पृ ६४)

जिसमे जीव-अजीव आदि स्थापित/प्ररूपित हैं, वह स्थानांग (सूत्र) है।

६१५. ठाण (स्थान)

तिष्ठंति स्वाध्यायव्यापृता अस्मिन्निति स्थानम्।

(व्यभा ३ टी प ५४)

स्वाध्यायी साधक जहा स्थित होते हैं, वह स्थान/स्वाध्याय-भूमि है।

६१६. ठाणाइय (स्थानातिग)

स्थानं—कायोत्सर्गस्तमतिगच्छति – करोतीति स्थानातिगः।

(औटी पृ ७५)

जो स्थान/कायोत्सर्ग करता है, वह स्थानातिग है।

६१७. ठिइ (स्थिति)

स्थीयतेऽनयेति स्थितिः। (प्राक १ टी पृ ४)

जिसके द्वारा ठहरा जाता है, वह स्थिति है।

६१८. ठियप्प (स्थितात्मन्)

णाणदंसणचरित्तेसु ठिओ अप्पा जस्स सो ठियप्पा ।

(दजिचू पृ ३४७)

जो ज्ञान, दर्शन और चारित्र मे स्थित है, वह स्थितात्मा है ।

६१९. णंद (नन्द)

नन्दति—समृद्धो भवतीति नन्दः । (औटी पृ १३९)

जो समृद्ध होता है, वह नन्द/पुत्र है ।

६२०. णंदण (नन्दन)

नन्दन्ति तत्रेति नन्दन । (सूचू १ पृ १४७)

णदंति जेण वणयर-जोतिस-भवण-वेमाणिया विज्जाहरमणुया य तेण णदणं । (नंचू पृ ५)

जहा व्यतर, ज्योतिष्क, भवनपति, वैमानिक, विद्याधर और मनुष्य आनन्द मनाते हैं, वह नदन (वन) है ।

६२१. णंदा (नन्दा)

नन्दयति—समृद्धि नयतीति नन्दा । (प्रटी प १०३)

जो समृद्धि की ओर ले जाती है, वह नन्दा/अहिंसा है ।

६२२. णंदी (नन्दी)

नन्दन्ति समृद्धिमवाप्नुवन्ति भव्यप्राणिनोऽनयेति नन्दी ।

(विभामहेटी १ पृ ४४)

जिससे प्राणी समृद्धि को प्राप्त होते हैं, वह नदी/ज्ञान है ।

६२३ णक्खत्त (नक्षत्र)

न क्षयं यान्तीति नक्षत्राणि ।[1] (सूचू १ पृ २००)

जिनका क्षय नही होता, वे नक्षत्र हैं ।

---

१. 'नक्षत्र' के अन्य निरुक्त—

नक्षति गच्छति व्योमनीति नक्षत्रं । न क्षरति प्रभामिति नक्षत्रम् ।

(अचि पृ २४)

६२४. णग (नग)

न गच्छतीति नगः। (उचू पृ २१४)

जो गति नहीं करता, वह नग/पर्वत है।

६२५. णगर (नगर)

न एत्थ करो विज्जतीति नगरं।[1] (आचू पृ २८१)

जहां किसी प्रकार का कर नहीं लगता, वह नगर है।

६२६. णय (नय)

नयंति गमयंति प्राप्नुवंति वस्तु ये ते नयाः। (उचू पृ २३४)

जो वस्तु का बोध कराते हैं, वे नय हैं।

६२७. णर (नर)

नृत्यत इति नरः।[2] (उचू पृ २१६)

जो शक्ति का आयतन है, वह नर है।

नृणन्ति—निश्चिन्वंति वस्तुतत्त्वमिति नराः।

(नक १ टी पृ ३९)

जो यथार्थ का निर्णय करते हैं, वे नर हैं।

नृणन्ति—विवेकमासाद्य नयधर्मपरा भवंतीति नराः।

(नक ४ टी पृ १२८)

जो नीतिमान् है, वे नर हैं।

जो आकाश मे गमन करता है, वह नक्षत्र है।

जिसकी प्रभा कभी आवृत नहीं होती, वह नक्षत्र है। (क्षद्-संवरणे)

१. 'नगर' का अन्य निरुक्त—

नगा इव प्रासादा सन्त्यत्र नगरम्। (आप्टे पृ ८७३)

जहा नग/पर्वत जितने ऊचे भवन होते हैं, वह नगर है।

२. क. नर (Ved. nara cp nrtu) to be strong. (पा पृ ३४७)

ख. 'नर' का अन्य निरुक्त—

नरति नेतीति नरो। (विटी १/७),

जो ले जाता है, वह नर है।

६२८. णरग (नरक)

नीयंते तस्मिन् पापकर्माण इति नरकाः ।

पापी जिसमे ले जाए जाते हैं, वे नरक हैं ।

न रमन्ति वा तस्मिन्निति नरकाः ।[1] (सुचू १ पृ १२६)

जहा प्राणी आनन्द का अनुभव नही करते, वे नरक हैं ।

नरान् कायन्ति आह्वयन्तीति नरकाः ।[2] (उशाटी प १८२)

जो पापी नरो को बुलाते हैं, वे नरक है ।

६२९. णह (नख)

न क्षीयंति नखाः ।[3] (उचू पृ २०८)

जो पूरे क्षीण नहीं होते, वे नख हैं।

६३०. णह (नभस्)

न भाति न दीप्यते इति नभः ।[4] (भटी पृ १४३१)

जो दीप्त/रूपायित नही होता, वह नभ है ।

---

१ 'नरक' के अन्य निरुक्त—

नृणाति शिक्षयति पापिनः नरकः । नरान् कृन्तीति कृणोति वेति वा । (अचि पृ ३०५)

जहा पापी प्राणियो को शिक्षा दी जाती है, वह नरक है ।

जहा मनुष्यो को काटा जाता है, वह नरक है ।

२ **नरान्—उपलक्षणत्वात् तिरश्चोऽपि प्रभूतपापकारिणः कायन्तीव आह्वयन्तीवेति नरकाः ।** (नक १ टी पृ ३९)

३. 'नख' के अन्य निरुक्त—

न ख छिद्रमत्र नखम् । (वा पृ ३९३४)

जिसमे ख/छिद्र नही होता, वह नख है ।

न खन्यते नखः ।

जिसे कुरेदा नही जाता, वह नख है ।

नखति गच्छतीति वा नखः । (अचि पृ १२०)

जो बढ़ता है, वह नख है ।

४. 'नभ' के अन्य निरुक्त—

नह्यते मेघैः नभः । (वा पृ ३९६५)

जो मेघो से घिर जाता है, वह नभ है । (नह्-बन्धने)

नभ्यतीति नभः । (अचि पृ ३७)

जो शब्द करता है, वह नभ/आकाश है । (नभ्—शब्दे)

६३१. णाअ (न्याय)

निपूर्वः नितरामीयते गम्यते मोक्षोऽनेनेति न्यायः ।

(व्यभा १ टी प ६)

जो निश्चित रूप से मोक्ष को प्राप्त कराता है, वह न्याय है ।

६३२. णाग (नाग)

नास्य किञ्चिदगम्यं नागः ।[1] (उचू पृ ५९)

जिसके लिए कुछ भी अगम्य नही है, वह नाग/हाथी है ।

६३३. णाग (नाग)

नास्य अगमं किञ्चिन्नागः । (उचू पृ १३४)

जिसके लिए कुछ भी अगम्य नही है, वह नाग/सर्प है ।

६३४. णाण (ज्ञान)

णज्जइ अणेणेति नाणं ।

जिससे जाना जाता है, वह ज्ञान है ।

णज्जति एतम्हित्ति णाणं । (नंचू पृ १३)

जिसमे ज्ञात होता है, वह ज्ञान है ।

६३५. णाणवि (ज्ञानवित्)

ज्ञानं—यथावस्थितपदार्थपरिच्छेदकं वेत्तीति ज्ञानवित् ।

(आटी प १५३)

ज्ञान/यथार्थ को जो जानता है, वह ज्ञानवित् है ।

६३६. णाणावरणीय (ज्ञानावरणीय)

ज्ञानमावृणोतीति ज्ञानावरणीयम् । (स्थाटी प ६१)

जो ज्ञान को आवृत करता है, वह ज्ञानावरणीय (कर्म) है ।

---

१. 'नाग' का अन्य निरुक्त—

नगे भवो नागः । (अचि पृ २७३)

जो पर्वत पर पैदा होता है, वह नाग है ।

६३७. णात (ज्ञात)

णज्जंति अणेण अत्था णातं । (दअचू पृ २०)

जिसके द्वारा अर्थ जाना जाता है, वह ज्ञात/उदाहरण है ।

णायति—आहरणा, दिट्ठंतियो वा णज्जति जेहऽत्थो ते णाता । (नचू पृ ६६)

जिसमे ज्ञात/दृष्टात निरूपित हैं, वह ज्ञाता/ज्ञाताधर्मकथा सूत्र का प्रथम श्रुतस्कन्ध है ।

६३८. णाम (नाम)

नयति नीयते वा नाम । (उचू पृ २०३)

जिससे (परिचय) प्राप्त होता है, जाना जाता है, वह नाम है ।

६३९. णाम (नाम)

नामयति—गत्यादिविविधभावानुभवनं प्रति प्रवणयति जीवमिति नाम । (प्रसाटी प ३५६)

जो गति आदि विविधभावो के अनुभवन मे जीव को आसक्त कर देता है, वह नाम (कर्म) है ।

नामयत्यधममध्यमोत्तमासु गतिषु प्राणिनं प्रह्वीकरोतीति नाम । (पसमटी प १०७)

जो प्राणियो को विविध गतियो मे प्रस्तुत करता है, वह नाम (कर्म) है ।

६४०. णाराय (नाराच)

नरं मुञ्चतीति नाराचः ।[1] (उचू पृ १८३)

जो नर को शरीर से मुक्त कर देता है, वह नाराच/बाण है ।

---

१. **नारं नरसमूहमञ्चतीति नाराचः ।** (अचि पृ १७२)
जो मनुष्यो तक पहुचता है, वह नाराच/बाण है ।
नरान् आचामति नाराचः । (वा पृ ४०४५)
जो मनुष्यो का भक्षण करता है, वह नाराच/बाण है ।

६४१. णालंदा (नालन्दा)

नालं ददातीति नालंदा ।[1] (सूटी २ प १५८)

जो पर्याप्त मात्रा मे/भरपूर देता है, वह नालन्दा है।

६४२. णावा (नौ)

नयति नीयते[2] वा नौः । (सूचू १ पृ २०२)

जो पार ले जाती है, वह नौका है।

(माझी) जिसे ले जाता है, वह नौका है।

६४३. णास (न्यास)

न्यस्यते—रक्षणायान्यस्मै समर्प्यत इति न्यासः । (पंटी पृ १६)

जिसे रक्षा के लिए दूसरों के पास रखा जाता है, वह न्यास/धरोहर है।

६४४. णाहियवादि (नास्तिकवादिन्)

नास्त्यात्मा एवं वदनशील नाहियवादी । (दश्रुचू प ३७)

'आत्मा नही है'—ऐसा जो कथन करता है, वह नास्तिकवादी है।

६४५. णिकरण (निकरण)

निश्चयेन नितरां वा नियतं वा क्रियन्ते नानादुःखावस्था जन्तवो येन तन्निकरणम् । (आटी प १४१)

जिससे प्राणी निरंतर दु ख का उत्पादन करता है, वह निकरण/परिग्रह/ संग्रह है।

६४६. णिकिर (निकिर)

निकरणं निकीर्यते वा निकिरः । (सूचू १ पृ ११४)

जो पशु के सामने बिखेरा जाता है, वह निकिर/घासफूस है।

---

१. प्रतिषेधवाचिनो नकारस्य तदर्थस्यैवालंशब्दस्य । (सूटी २ प १५८)
यहा न और अल—दोनों शब्द प्रतिषेधवाची हैं।

२. नुद्यते कर्णधारैर्नौः । (अचि पृ ८७६)

६४७. णिक्कम्मदंसि (निष्कर्मदर्शिन्)

णिक्कम्माणं पस्सतीति णिक्कम्मदंसी । (आचू पृ ११३)

जो निष्कर्म/मोक्ष को देखता है, वह निष्कर्मदर्शी है ।

६४८. णिक्करुण (निष्करुण)

निर्गता करुणा—दया यस्मादसौ निष्करुणः । (प्रटी प १५)

जो करुणा/दया से रहित है, वह निष्करुण/क्रूर है ।

६४९. णिक्खेव (निक्षेप)

गहणं आदाणं ती होति णिसद्दो तहाहियत्थम्मि ।

खिव पेरणे व भणितो अहिउक्खेवो तु णिक्खेवो ॥

(जीतभा ८०९)

'नि' शब्द के तीन अर्थ हैं— ग्रहण, आदान और आधिक्य । 'क्षेप' का अर्थ है—प्रेरित करना । जिस वचनपद्धति मे नि/अधिक क्षेप/विकल्प हैं, वह निक्षेप है ।

निक्षिप्यतेऽनेनेति निक्षेपः ।

नियतो निश्चितो क्षेपो निक्षेपः । (सूचू १ पृ १७)

जिसका क्षेप/स्थापन नियत और निश्चित होता है, वह निक्षेप है ।

६५०. णिगम (निगम)

नयन्तीति निगमाः । (उचू पृ ६६)

जहां नाना प्रकार के पदार्थ ले जाए जाते हैं, वह निगम/व्यापारिक स्थल है ।

निगमयन्ति तस्मिन्ननेकविधभाण्डानीति निगमः ।

(उशाटी प ६०५)

जहा अनेक प्रकार के पदार्थ विक्रयार्थ आते हैं, वह निगम है ।

६५१. णिगाइय (निकाचित)

नितरां काचनं—बन्धनं निकाचितम् । (स्थाटी प २१५)

जो निश्चित बन्धन है, वह निकाचित (बंध) है ।

६५२. णिग्गंथ (निर्ग्रन्थ)

बज्झ अब्भंतरातो गंथातो णिग्गतो णिग्गंथो । (सूचू १ पृ २४६)

जो बाह्य और आभ्यन्तर ग्रंथि से विनिर्मुक्त है, वह निर्ग्रन्थ है ।

६५३. णिग्गह (निग्रह)

निगृह्यन्त इन्द्रिय-कषायादयो भावशत्रवोऽनेनेति निग्रहः ।
(विभामहेटी १ पृ ३५४)

इन्द्रिय, कषाय आदि भाव शत्रु जिसके द्वारा निगृहीत किए जाते हैं, वह निग्रह/आवश्यक सूत्र है ।

६५४. णिग्घाय (निर्घात)

आधिक्येन घातः निर्घातः । (आवचू २ पृ २५१)

अधिक घात निर्घात/हिंसा है ।

६५५. णिग्घोस (निर्घोष)

नितरां घोषो निर्घोषः । (विपाटी प ८६)

निश्चित घोष/उद्घोषणा निर्घोष है ।

६५६. णिच्चय (निश्चय)

निराधिक्यं चयनं चयः अधिकश्चयोनिश्चयः ।
(अनुद्वाहाटी पृ १२४)

जो सघनता से चय/संकल्प है, वह निश्चय है ।

निश्चीयन्ते इति निश्चयाः । (राटी पृ २७७)

जो निर्णीत होते हैं, वे निश्चय हैं ।

६५७. णिच्छय (निश्चय)

निर्गतः कर्मचयो निश्चयः । (प्रटी प २)

जो कर्म-संचय से रहित है, वह निश्चय/मोक्ष है ।

६५८. णिओग (नियोग)

अहिगो जोगो निओगो । (बृभा १९४)

अतीव योगो नियोगो ।

आत्यंतिक योग नियोग/संबंध है ।

निश्चितो योगो नियोगो । (आवचू १ पृ ११५)

जो निश्चित योग है, वह नियोग है ।

६५९. णिज्जरापेहि (निर्जराप्रेक्षिन्)

णिज्जरं पेक्खतीति णिज्जरापेही । (आचू पृ २८९)

जो निर्जरा को देखता है/चाहता है, वह निर्जराप्रेक्षी है ।

६६०. णिज्जव (निर्याप)

निश्चितं यापयति प्रायश्चित्तविधिषु याप्यमालोचकं करोति निर्वा-हयतीति यावदिति निर्यापः । (व्यभा ३टी प १८)

जो प्रायश्चित्त विधि का यापन/निर्वहन कराता है, वह निर्याप/आराधनाकारक है ।

६६१. णिज्जावय (निर्यापक)

निर्यापयति तथा करोति यथा गुर्वपि प्रायश्चित्तं शिष्यो निर्वाहय-तीति निर्यापकः । (स्थाटी प ४०६)

जो कुशलता से प्रायश्चित्त का निर्यापन/निर्वहन कराता है, वह निर्यापक है ।

६६२. णिज्जुत्त (निर्युक्त)

निश्चयेन आधिक्येन सार्थाविती वा युक्ता निर्युक्ताः ।

(सूचू १ पृ ३)

जो अर्थ के साथ अधिक युक्त/संबद्ध है, वह निर्युक्त है ।

६६३. णिज्जुत्ति (निर्युक्ति)

णिज्जुत्ता ते अत्था जं बद्धा तेण होइ णिज्जुत्ती । (आवनि ८८)

जं निच्छयाइजुत्ता सुत्ते अत्था इमीए वक्खाया ।

तेणेयं निज्जुत्ती निज्जुत्तत्थाभिहाणाओ ।। (विभा १०८६)

नितरां युक्ताः सूत्रेण सह लोलीभावेन सम्बद्धा निर्युक्ता—अर्थास्तेषां युक्तिः—स्फुटरूपतापादनं निर्युक्तिः। एकस्य युक्तशब्दस्य लोपान्निर्युक्तिः। (अनुद्वामटी प २३९)

जिसमे निर्युक्तों/सूत्र के साथ सम्बद्ध जीव आदि का स्पष्ट प्रतिपादन किया जाता है, वह निर्युक्त है।

निर्युज्यन्ते—निश्चितं सम्बद्धा उपविश्य व्याख्यायन्ते यकाभिस्ता निर्युक्तयः। (पिटी प १)

जिनमे सूत्र के साथ अर्थ का निश्चित सम्बन्ध बताकर उनकी निर्योजना/व्याख्या की जाती है, वे निर्युक्तिया है।

सूत्रार्थयोः परस्परं निर्योजनं—सम्बन्धं निर्युक्तिः।
(आवमटी प १००)

सूत्र और अर्थ का परस्पर निर्योजन/सम्बन्ध-स्थापन निर्युक्ति है।

६६४. णिज्जोग (निर्योग)

निर्युज्यते—उपक्रियतेऽनेनेति निर्योगः। (पिटी प १२)

जिसके द्वारा निर्योग/उपकार किया जाता है, वह निर्योग/उपकरण है।

६६५. णिज्झवणा (निर्यापना)

निः—आधिक्येन यान्ति प्राणिनः प्राणास्तेषां निर्यातां निर्गच्छतां प्रयोजकत्वं निर्यापना। (प्रटी प ७)

जिसमे प्राणियो के प्राण अत्यधिक रूप में निर्गमन करते हैं, वह निर्यापना/हिंसा है।

६६६. णिट्ठित (निष्ठित)

ण एतीति णिट्ठितो। (आचू पृ १६७)

जो गति नहीं करता, स्थिर है, वह निष्ठित है।

६६७. णिदरिसण (निदर्शन)

अहियं दरिसणं निदरिसणं । (दअचू पृ २०)

निच्छियं दरिसिति अणेण अत्था तेण निदरिसणं ।
(दजिचू पृ ४०)

जिससे अर्थ का निश्चित दर्शन/प्रकटीकरण होता है, वह निदर्शन/उदाहरण है ।

६६८. णिदा (दे)

नितरां निश्चितं वा सम्यक् दीयते चित्तमस्यामिति निदा ।
(प्रज्ञाटी प ५५७)

जिसमे चित्त निश्चित रूप से निविष्ट होता है, वह णिदा/वेदना है ।

६६९. णिदाह (निदाघ)

अइदाहो निदाहो । (बृभा १९४)

अधिक दाह निदाघ/गर्मी है ।

६७०. णिद्दा (निद्रा)

नियतं द्राति—कुत्सितत्वमविस्पष्टत्वं गच्छति चैतन्यमनयेति निद्रा ।[1] (स्थाटी प ४२८)

जिससे चेतना निश्चितरूप से सुषुप्ति को प्राप्त होती है, वह निद्रा है ।

६७१. णिद्देसवत्ति (निर्देशवर्तिन्)

निद्देसो आणा तम्मि वट्टंति निद्देसवत्तिणो । (दअचू पृ २१८)

जो निर्देश/आज्ञा मे वर्तन करता है, वह निर्देशवर्ती/आज्ञानुवर्ती है ।

६७२. णिद्धम्म (निर्धर्मन्)

णिग्गतधम्मा णिद्धम्मा । (निचू १ पृ १२२)

जो धर्म से रहित हैं, वे निर्धर्म हैं ।

---

१. द्रा—कुत्सायां गतौ ।

६७३. णिप्पग्गह (निष्प्रग्रह)

निर्गतः प्रग्रहादिति निष्प्रग्रहः। (बृटी पृ २११)

जो प्रग्रह/नियंत्रण से निर्गत/रहित है, वह निष्प्रग्रह/अनियन्त्रित है।

६७४. णिब्भयणा (निर्भजना)

निश्चिता भजना निर्भजना। (आटी प ८६)

जिसमे भाग/विकल्प निश्चित होता है, वह निर्भजना है।

६७५. णिम्मद्दय (निर्मर्दक)

निरन्तरं मृद्नन्ति ये ते निर्मर्दकाः। (प्रटी प ४६)

जो निरन्तर मर्दन करते है, वे निर्मर्दक/चोर विशेष हैं।

६७६. णियडि (निकृति)

अधिका कृति निकृतिः। (दश्रुचू प ३७)

अधिक कृति/उपचार निकृति/माया है।

६७७. णियतिक (नैयतिक)

नियतिर्व्यवस्था तत्र नियुक्तास्तथा वा चरन्तीति (नै) नियतिकाः।
(व्यभा ३ टी प १३२)

जो धान्य आदि की नियति/व्यवस्था करते हैं, वे नैयतिक हैं।

६७८. णियाग (नियाग)

यजनं यागः[1] नियतो निश्चितो वा यागो नियागः।[2]
(आटी प ४२)

जिसमे याग/ज्ञान-दर्शन-चारित्र की निश्चित संगति/समन्विति है, वह नियाग/मोक्षमार्ग है।

---

१. यज्—संगतार्थत्वाद्धातोः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रात्मतया गतं संगतमिति। (आटी प ४२)

२. नियागं णाम चरित्तं पडिवण्णो। (सूचू २ पृ ३०८)

६७९. णियाण (निदान)

निश्चितमादानं निदानं। (आवचू २ पृ ७९)

ऐहिक प्राप्ति के लिए जो निश्चित संकल्प किया जाता है, वह निदान है।

निदायते—लूयते ज्ञानाद्याराधनालता येनाध्यवसायेन तन्निदानम्।[1] (स्थाटी प ४६१)

जिस अध्यवसाय/संकल्प से ज्ञान आदि की आराधना उखड़ जाती है, वह निदान है।

६८०. णिकाय (निकाय)

निर्गत कायः—औदारिकादिर्यस्माद्यस्मिन्वा सति स निकायः। (आटी प ४२)

जिसमे औदारिक आदि काय/शरीर नहीं है, वह निकाय/मोक्ष है।

६८१. णिरंगण (निरङ्गण)

रङ्गण—रागाद्युपरञ्जनं तस्मान्निर्गतः निरङ्गणः। (स्थाटी प ४४४)

जो राग आदि के रंगण/रंजन से उपरत है, वह निरङ्गण/निर्लिप्त है।

६८२. णिरय (निरय)

निर्गतम्—अविद्यमानमयम्—इष्टफलं कर्म येभ्यस्ते निरयाः। (स्थाटी प २६)

जिनमे से अय/पुण्यकर्म निकल गया है, वे निरय/नरक हैं।

६८३. णिरवकंख (निराकाक्ष)

निष्क्रान्तमाकाङ्क्षातो निराकाङ्क्षम्। (उशाटी प ६००)

जो (भोजन की) आकाक्षा से रहित है, वह निराकाक्ष (अनशन) है।

---

१. **निततरां दीयन्ते—लूयन्ते दीयन्ते वा खण्ड्यन्ते तथाविधसानुबन्धफलाभावतस्तपःप्रभृतीन्यनेनेति निदानम्।** (उशाटी प ३८४)

६८४. णिरामिस (निरामिष)

निष्क्रान्ता आमिषाद्—गृद्धिहेतोरभिलषितविषयाद् इति निरामिषाः । (उशाटी प ४०६)

जो आमिष/गृद्धि से रहित हैं, वे निरामिष/अनासक्त हैं ।

६८५. णिरुत्त (निरुक्त)

निच्छियवुत्तं निरुत्तं । (बृभा १८८)

निश्चित रूप से कथन करना निरुक्त है ।

णिव्वयणं वा णिरुत्तं । (सूचू १ पृ ३)

जो शब्द का निर्वचन है, वह निरुक्त है ।

६८६. णिरुत्ति (निरुक्ति)

निश्चिता उक्तिर्निरुक्तिः । (अनुद्वामटी पृ २४१)

जो निश्चित कथन है, वह निरुक्ति है ।

६८७. णिवारण (निवारण)

व्रियते येन तद् वारणं नियतं निश्चितं निपुणं वा वारणं निवारणं । (उचू पृ ५६)

जो नि/सम्यक् प्रकार से वारण/आच्छादन करता है, वह निवारण/कंबल है ।

६८८. णिव्वाण (निर्वाण)

निर्वान्ति—कर्मानलविध्यापनाच्छीतीभवन्त्यस्मिन् जन्तव इति निर्वाणम् । (उशाटी प ५११)

जहां कर्म रूपी अग्नि के बुझ जाने से जीव शीतल/शांत होते हैं, वह निर्वाण है ।

६८९. णिव्विइय (निर्विकृतिक)

निर्गतो घृतादिविकृतिभ्यो यः स निर्विकृतिकः । (स्थाटी प २८८)

जो घृत आदि विकृतियों का परित्याग करता है, वह निर्विकृतिक है ।

६६०. **णिव्विण्णचारि** (निर्विण्णचारिन्)

णिव्विण्णो चरति णिव्विण्णचारी । (आचू पृ १७८)

जो उदासीन भाव से आचरण करता है, वह निर्विण्णचारी है।

६६१. **णिव्वेयणी** (निर्वेदनी)

निर्विद्यते—संसारादेर्निर्विण्णः क्रियते अनयेति निर्वेदनी । (स्थाटी प २०४)

जो ससार से निर्विण्ण/उदासीन करती है, वह निर्वेदनी (कथा) है।

६६२. **णिसंस** (नृशंस)

नॄन्—नरान् शंसति—हिनस्तीति नृशंसः । (ज्ञाटी प ८६)

जो नर का शंसन/हनन करता है, वह नृशंस है।

६६३. **णिसण्ण** (निषण्ण)

अहियं सण्णो निसण्णो ।

जो (पाप मे) अत्यधिक निमग्न है, वह निषण्ण है।

णियतं णिच्छितं वा सण्णो णिसण्णो । (आचू पृ ११७)

जो निरतर निश्चितरूप से (पाप मे) निमग्न है, वह निषण्ण है।

६६४. **णिसाद** (निषाद)

निषीदन्ति स्वरा यस्मिन् स निषादः । (अनुद्वामटी प ११७)

जिसमे सभी स्वर निषण्ण/समाविष्ट होते हैं, वह निषाद स्वर है।[1]

६६५. **णिसिज्जा** (निषद्या)

णिसज्जंति सुत्तत्थाणनिमित्तं जत्थ भूपदेसे सा णिसिज्जा । (निचू १ पृ ६४)

---

१. **षड्जादयः यतोऽत्र स्वराः सर्वे मनोहराः ।**
निषीदन्ति यतो लोके निषादस्तेन कथ्यते ॥ (शब्द २, पृ ६०२)

जहां सूत्र और अर्थ के ग्रहण या परावर्तन के लिए बैठा जाता है, वह निषद्या/स्वाध्याय-भूमि है।

६९६. णिसीहिआ (नैषेधिकी)

निषेधेन—स्वाध्यायव्यतिरिक्तशेषव्यापारप्रतिषेधेन निर्वृत्ता नैषेधिकी।[1] (व्यभा ३ टी प ५४)

जहा स्वाध्याय के अतिरिक्त शेष प्रवृत्तियो का निषेध है, वह नैषेधिकी/स्वाध्याय भूमि) है।

६९७. णिसीहिआ (नैषेधिकी)

निषिध्यन्ते—निराक्रियन्ते अस्यां कर्माणीति नैषेधिकी।

(उशाटी प ३२२)

जहा कर्मों का निषेध/नाश होता है, वह नैषेधिकी/निर्वाण-भूमि है।

६९८. णिस्साणपद (निश्राणपद)

निश्रीयते—मन्दश्रद्धाकैरासेव्यत इति निश्राणं तच्च तत् पदं च निश्राणपदम्। (बृटी पृ २४१)

जो पद दुर्बल व्यक्तियो द्वारा निश्रित/आसेवित है, वह निश्राणपद/अपवादपद है।

६९९. णिस्सेयस (नि श्रेयस्)

नियतं निश्चितं वा श्रेयः निःश्रेयसम्। (उचू पृ १७१)

जो नियत और निश्चित रूप से श्रेयस्कर है, वह निःश्रेयस्/मोक्ष है।

७००. णिह (स्निह)

स्निह्यत इति स्निहः। (आटी प १२४)

जो स्नेह करता है, वह स्निह/स्नेहवान्/रागी है।

---

१. निषेधः—गमनादिव्यापारपरिहारः स प्रयोजनमस्याः तमर्हतीति वा नैषेधिकी। (बृटी पृ ६२५)

स्निह्यते—श्लिष्यतेऽष्टप्रकारेण कर्मणेति स्निहः । (आटी प १६०)

आठ प्रकार के कर्मों से जो श्लिष्ट होता है, वह स्निह/स्नेहवान् है ।

७०१. णिह (निह)

निहन्यत इति निहः । (सूटी २ प १५२)

जिसका निहनन/पीडन होता है, वह निह/पीड़ित है ।

७०२ णिहि (निधि)

नितरां धीयते — स्थाप्यते यस्मिन् स निधिः । (स्थाटी प ३२७)

जिसमे सदा कुछ न कुछ रखा जाता है, वह निधि है ।

७०३. णीरय (नीरजस्)

निर्गतो रजसः कर्मण इति नीरजाः । (उशाटी प ३१६)

जो कर्म-रजो से रहित है, वह नीरज है ।

७०४. णीसंस (निःशंस)

निष्क्रान्तो वा शंसायाः—श्लाघाया इति निःशंसः । (प्रटी प ५)

जो आशंसा/श्लाघा से रहित है, वह निःशंस है ।

७०५. णीसासग (निःश्वासक)

निःश्वसितीति निःश्वासकः । (आवहाटी १ पृ २२३)

जो निःश्वास लेता है, वह निःश्वासक है ।

७०६ णेआइय (नैयायिक)

न्यायेन चरतीति नैयायिकः । (आवचू १ पृ ६०२)

जो न्यायपूर्वक चलता है, वह नैयायिक है ।

७०७. णेउ (नेतृ)

नयतीति नेता । (सूचू १ पृ १४४)

जो ले जाता है, वह नेता है ।

७०८. णेगम (नैगम)

णेगेहिं माणेहिं मिणइत्ति णेगमस्स य निरुत्ती । (अनुद्वा ७१५)

जो अनेक प्रमाणों से वस्तु को जानता है, वह नैगम है ।

नैकोऽपि तु बहवो गमाः वस्तुपरिच्छेदा यस्यासौ निरुक्तविधिना ककारस्य लोपाद् नैगमः । (नटी पृ १७३)

जिसमें वस्तुबोध के अनेक गम/भग हैं, वह नैगम है ।

निश्चितो गमो नैगमः । (प्रसाटी प २४३)

जो निश्चित गम/विकल्प है, वह नैगम है ।

७०९. णेचइय (नैचयिक)

निचयेन संचयेनार्घाद् धान्यानां ये व्यवहरन्ति ते नैचयिकाः । (व्यभा ४/३ टी प ११)

जो निचय/सचय पूर्वक धान्य का व्यापार करते हैं, वे नैचयिक/धान्य के थोक व्यापारी हैं ।

७१०. णेत (नेत्र)

नयतीति नेत्रम् ।[1] (सूचू १ पृ २११)

जो दृश्य के साथ सबद्ध करता है, वह नेत्र है ।

७११. णेय (ज्ञेय)

ज्ञायते इति ज्ञेयम् । (निचू १ पृ ३७)

जो जाना जाता है, वह ज्ञेय है ।

७१२. णेयाइय (नैयायिक)

नयतीति नैयायिकः । (सूचू १ पृ ५८)

जो ले जाता है, वह नैयायिक/नेता है ।

७१३. णेयाउत (नैर्यात्रिक)

णयणसीलो णेयाउतो । (दश्रुचू प ७५)

जो पार ले जाता है, वह नैर्यात्रिक है ।

---

1. नीयतेऽनेन दृश्यमिति नेत्रम् । (अचि पृ १३०)

७१४. ण्हाण (स्नान)

स्नात्यनेनेति स्नानम् । (उशाटी प ४७६)

जिससे व्यक्ति स्नात/शुद्ध होता है, वह स्नान है।

७१५. ण्हाणीय (स्नानीय)

स्नाति जनोऽनेनेति स्नानीयम् । (बृटी पृ २५६)

जिससे व्यक्ति स्नान करता है, वह स्नानीय/चूर्ण है।

७१६. ण्हुसा (स्नुषा)[1]

स्नौति श्रवन्ति वा तामिति स्नुषा ।[1] (उचू पृ १५०)

जो (अपने पुत्र के लिए) क्षरण करती है, वह स्नुषा/पुत्र-वधू है।[1]

७१७. तंतज (तन्त्रज)

तन्यते इति तंत्रं—वेमविलेखमच्छनिकादि तत्र जातं तंत्रजं ।

(उचू पृ ७६)

जो ताने-बाने से उत्पन्न होता है, वह तंत्रज/कम्बल आदि है।

७१८. तंतु (तन्तु)

तनोत्यसौ तन्यते वा तंतुः । (उचू पृ ७६)

जो विस्तृत होता है या किया जाता है, वह तंतु है।

७१९. तंत्र (तन्त्र)

तन्यतेऽस्मादर्थ इति तन्त्रम् । (आवनिदी प ४४)

जिसके द्वारा अर्थ विस्तार पाता है, वह तंत्र/शास्त्र है।

---

१. (क) स्नौति अपत्यवात्सल्यात् स्नुषा । (अचि पृ ११७)

(ख) 'स्नुषा' के अन्य निरुक्त—

साधु सादिनीति वा, साधु सानिनीति वा, स्वपत्यं तत्सनोतीतिवा स्नुषा । (नि १२/९)

जो भली-भांति बैठती है, भली-भांति प्राप्त करती है, सु/अपत्य प्राप्त करती है, वह स्नुषा है।

७२० तण (तृण)

तरतीति तृणं। (उचू पृ ७८)

जो (जल में) तैरता है, वह तृण है।

तृणेहि तुब्बंति वा तमिति तणम्।[1] (उचू पृ २११)

पशु जिसका भक्षण करते हैं, वह तृण है।

७२१. तणु (तनु)

तनोति—विस्तारयत्यात्मप्रदेशानस्यामिति तनुः। (नक ४ टी पृ १२८)

जहां आत्मा अपने प्रदेशों को फैलाती है, वह तनु/शरीर है।

७२२. तम (तमस्)

तमयति—खेदयति जनलोचनानीति तमः। (उशाटी प १८)

जो आंखों को खिन्न करता है, वह तम/अंधकार है।

७२३. तमोकसिय (तमस्काषिन्)

तमसि कषितुं शीलं येषां ते तमसिकाषिणः। (सूटी २ प ५३)

जो तम/अंधेरे में दुराचार करते हैं, वे तमस्काषी हैं।

७२४. तमोकाइय (तमस्कायिक)

तमसि कार्यं कुर्वन्तीति तमोकाइया। (सूचू २ पृ ३४७)

जो अंधकार में क्रियाशील रहते हैं, वे तमस्कायिक/चोर हैं।

७२५. तरु (तरु)

अत्थाहमुदगं तरंति तेहिं तरवो।[2] (दअचू पृ ७)

जिनसे अथाह जल तरा जाता है, वे तरु हैं।

नदीतलागादीणि तेहिं तरिज्जंति तेण तरवो। (दजिचू पृ ११)

जिनसे नदी तालाब आदि तरे जाते हैं, वे तरु हैं।

---

१. तृण्यतेऽद्यते पशुभिरिति तृणम्। (अचि पृ २६९)

२. 'तरु' का अन्य निरुक्त—

तरन्त्यापदमनेन तरुः। (अचि पृ २४८)

जिससे आपत्ति का पार पाया जाता है, वह तरु है।

७२६ तव (तपस्)

रस-रुधिर-मांस-मेदोऽस्थि-मज्ज-शुक्राण्यनेन तप्यंते कर्माणि वाशुभा-नीत्यतस्तपः ।[1] (निचू १ पृ २६)

जिससे शरीरस्थ सारी धातुएं तप्त होती हैं, वह तप है।

जिससे अशुभ कर्म तप्त होते हैं, वह तप है।

७२७. तवण (तपन)

तवतीति तवणो । (अनुद्वा ३२०)

जो तपता है, वह तपन/सूर्य/अग्नि है।

७२८. तस (त्रस)

त्रसंतीति त्रसाः । (सूचू १ पृ ४७)

जो त्रस्त/भयभीत होते है, वे त्रस हैं।

त्रसन्ति अभिसन्धिपूर्वकं वा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् चलन्तीति त्रसाः । (जीटी प ६)

जो चिंतनपूर्वक गमन करते हैं, वे त्रस हैं।

७२९. तसरेणु (त्रसरेणु)

पौरस्त्यादिवायुप्रेरितस्त्रस्यति—गच्छतीति त्रसरेणुः ।[2] (स्थाटी प ४१६)

जो रेणु पवन से प्रेरित हो चलती है, वह त्रसरेणु सूक्ष्ममाप है।

७३०. तहावेय (तथावेद)

तथा वेदयंतीति तथावेदाः । (सूचू १ पृ १०६)

जो स्त्रिया जैसी हैं, वैसी जानते हैं, वे तथावेद/कामतत्रवित् हैं।

७३१. ताइ (त्रातृ)

त्रायतीति त्राता । (सूचू १ पृ ६४)

जो त्राण देता है, वह त्राता है।

---

१. **तापयत्यनेकभवोपात्तमष्टविधकर्मेति तपः ।** (आवहाटी १ पृ ४८)

२. **त्रसश्चञ्चलत्वात् भीत इव रेणुः । त्रिंशत्परमाणुपरिमाणम् । स गवाक्षान्तर्गते सूर्यकिरणे दृश्यते ।** (शब्द २ पृ ६५४)

७३२. ताय (तात)

तायते—सन्तानं करोति पालयति च सर्वापद्भ्य इति तातः ।[1]

(उशाटी प ३६८)

जो सन्तान को पैदा करता है और उसका पालन करता है, वह तात/पिता है ।

७३३. तायि (तायिन्)

तायोऽस्यास्तीति तायी ।[2] (दटी प २६२)

जो सुदृष्ट मार्ग की देशना के द्वारा शिष्यों का संरक्षण करता है, वह तायी है ।

७३४. तायि (त्रायिन्)

त्राएति संसारसागरे पडमाणे जीवे तम्हा तायी ।

(दअचू पृ २३३)

जो संसार-सागर मे गिरते हुए जीवो को त्राण देता है, वह त्रायी/रक्षक है ।

अन्नाणं अप्पं च तारयतीति तायी । (दजिचू पृ २११)

जो स्व और पर को त्राण देता है, वह त्रायी है ।

७३५. तालउट (तालपुट)

तालपुडसमयेण मारयतीति तालउडं । (दअचू पृ १६६)

जेणंतरेण ताला संपुडिज्जंति तेणंतरेण मारयतीति तालपुडं ।

(दजिचू पृ २६२)

जो विष ताल/हथेली संपुटित हो उतने समय मे मार डालता है, वह तालपुट कहलाता है ।

---

१. (क) तायृङ्—सन्तान पालनयोः ।

(ख) 'तात' का अन्य निरुक्त—

तनोति सन्तति तातः । (अचि पृ १२६)

जो सन्तति का विस्तार करता है, वह तात/पिता है ।

२. तायः सुदृष्टमार्गोक्तिः, सुपरिज्ञातदेशनया विनेयपालयितेत्यर्थः ।

(दटी प १६२)

७३६. ताव (ताप)

तावयतीति तापः । (आटी प १४)

जो तप्त करता है, वह ताप है ।

७३७. तावस (तापस)

तवो से अत्थि तावसो । (दअचू पृ ३७)

जो तप से युक्त है, वह तापस है ।

७३८. तासि (त्रासिन्)

स्वयं त्रस्तः परानपि त्रासयतीति त्रासी । (स्थाटी प २०२)

जो स्वयं त्रस्त होता हुआ दूसरो को त्रास देता है, वह त्रासी है ।

७३९. तिउला (दे)

तुदतीति तिउला । (उचू पृ ७९)

जो व्यथित करती है, वह तिउला/वेदना है ।

७४०. तिउला (त्रितुला)

त्रीणि मनोवाक्कायबलानि उपरिमध्यमाधस्तनकाय-विभागान् वा तुलयति—जयतीति त्रितुला । (स्थाटी प ४४१)

त्रीनपि मनोवाक्कायलक्षणानर्थांस्तुलयति—जयति तुलारूढानिव वा करोतीति त्रितुला । (ज्ञाटी प ७४)

जो मानसिक, वाचिक और शारीरिक शक्ति को तोलती है, वह त्रितुला/वेदना है ।

जो शरीर के ऊर्ध्व, मध्य और अधस्तन—तीनो भागो को तोलती है, वह त्रितुला है ।

७४१. तिण्ण (तीर्ण)

तरतीति तिण्णो । (आचू पृ २५)

तीर्णवान् तीर्यते वा तीर्णः । (उचू पृ १९३)

जो तैर जाता है/पार पहुंच जाता है, वह तीर्ण है ।

७४२. तित्थ (तीर्थ)

तिज्जइ जं तेण तहिं तओ व तित्थं ।[1] (विभा १०२६)

तीर्यते तार्यते वा तीर्थम् । ((उचू पृ १८०)

जिससे तरा जाता है, वह तीर्थ है ।

७४३. तित्थ (त्रिस्थ)

त्रिषु क्रोधाग्निदाहोपशमलोभतृष्णानिरासकर्ममलापनयनलक्षणेषु तिष्ठतीति त्रिस्थम् ।

जो क्रोध, लोभ और कर्ममल के अपनयन मे स्थित है, वह त्रिस्थ/तीर्थ है ।

ज्ञानादिलक्षणेषु वा अर्थेषु तिष्ठतीति त्रिस्थम् ।[2] (स्थाटी प ३०)

जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र—इन तीन अर्थों मे वास करता है, वह त्रिस्थ/तीर्थ है ।

७४४. तित्थ (त्र्यर्थ)

कोहाग्गिदाहसमणादओ व ते चेव जस्स तिण्णत्था ।
होइ तियत्थं तित्थं तमत्थसद्दो फलत्थोऽयं ॥
(विभा १०३६)

क्रोध का उपशमन, लोभ का निरसन और कर्मों का अपनयन—ये तीन जिसके अर्थ/फल हैं, वह त्र्यर्थ/तीर्थ है ।

१. (क) तरति पापादिकं यस्मात् (तत्तीर्थम्) । (शब्द २ पृ ६२५)
(ख) **देहाइतारयं जं वज्झमलावणयणाइमत्तं च ।**
णेगंताणच्चंतियफलं च तो दव्वतित्थं तं ॥ (विभा १०२८)

जं नाणदंसणचरित्तभावओ तव्विवक्खभावाओ ।
भवभावओ य तारेइ तेण तं भावओ तित्थं ॥ (विभा १०३३)

२. **दाहकोहलोहकम्ममयदाहतण्हामलावणयणाइं ।**
एगंतेणच्चंतं च कुणइ य सुद्धिं भवोघाओ ॥ (विभा १०३४)

दाहोवसमाइसु वा जं तिसु थियमहव दंसणाईसु ।
तो तित्थं...............................॥ (विभा १०३५)

अहवा सम्मद्दंसणनाणचरित्ताइ तिन्नि अत्थस्था ।
तं तित्थं पुव्वोइयमिह अत्थो वत्थुपज्जाओ ।।

(विभा १०३७)

सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र—ये तीन जिसके अर्थ/प्रयोजन हैं, वह त्र्यर्थ/तीर्थ है ।

७४५. तित्थयर (तीर्थंकर)

·· ···जे भावतित्थमेयं तु कुव्वंति पगासंति य ते तित्थयरा ।

(विभा १०४७)

जेहिं एयं दंसणणाणादिसंजुत्तं तित्थं कयं ते तित्थकरा भवन्ति ।

जो दर्शन, ज्ञान और चारित्रमय तीर्थ की स्थापना करते हैं, वे तीर्थंकर हैं ।

तित्थं गणहरा, तं जेहिं कय तं तित्थकरा ।

जो तीर्थ/गणधरो को तैयार करते है, वे तीर्थंकर हैं ।

तित्थं चाउवन्नो सघो, तं जेहिं कयं ते तित्थकरा ।

(आवचू १ पृ ८५)

जो श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविकारूप चतुर्विध तीर्थ/धर्मसघ की स्थापना करते हैं, वे तीर्थंकर है ।

७४६. तिप्पणया (तेपनता)

त्रीणि कायवाङ्मनोयोगान् तापयति तिप्पणया ।

(सूचू २ पृ ३६६)

जो शरीर, वाग् और मन को तप्त करती है, वह तेपनता/पीडा है ।

७४७. तिरिक्ख (तिर्यक्)

तिरोऽञ्चन्तीति—गच्छन्तीति तिर्यञ्चः ।

(उशाटी प ६४३)

जो तिरछी गति करते हैं, वे तिर्यंच हैं ।

७४८. तिलोगदंसि (त्रिलोकदर्शिन्)

त्रीन् लोकान् पश्यन्तीति त्रिलोकदर्शिनः। (सूचू १ पृ २३३)

जो तीनों लोकों को देखते हैं, वे त्रिलोकदर्शी हैं।

७४९. तिप्प (त्रिप्र)

त्रिभिस्तापयतीति त्रिप्रं। (सूचू १ पृ २५)

जो (मन, वचन और शरीर) तीनों को तप्त करता है, वह त्रिप्र/कर्म है।

७५०. तीय (अतीत)

अति—अतिशयेनेतो—गतोऽतीतः। (स्थाटी प १५२)

जो सदा के लिए बीत जाता है, वह अतीत है।

७५१. तीर (तीर)

तिष्ठति तमिति तीरं।[1] (आचू पृ ६९)

जहा ठहरा जाता है, वह तीर/तट है।

तरंति तेणेति तीरम्। (उचू पृ २१५)

जहा से तरा जाये, वह तीर है।

७५२. तीरट्ठि (तीरार्थिन्)

तीरं अत्थयति—मग्गतीति तीरट्ठी। (दअचू पृ २३४)

तीरेण जस्स अट्ठो स भवति तीरट्ठी। (सूचू २ पृ ३३५)

जो तीर/तट पर जाना चाहता है, वह तीरार्थी है।

तीरे ठितो तीरट्ठी। (दअचू पृ २३४)

जो तीर/तट पर स्थित है, वह तीरार्थी है।

७५३. तुद (तुद)

तुदंतीति तुदाः। (सूचू १ पृ १३५)

जो व्यथित करते हैं, वे तुद/चाबुक हैं।

---

१. 'तीर' का अन्य निरुक्त—

तीरयति समापयति नद्यादिकमिति तीरम्। (शब्द २ पृ ६२५)

नदी आदि को जहां तैर कर समाप्त किया जाता है, वह तीर है।

जहां नदी आदि की सीमा समाप्त हो जाती है, वह तीर है।

७५४. तुन्नवाय (तुन्नवाय)

तुन्नं—त्रुटितं वयति—सिव्यति यः स तुन्नवायः ।

(नंदी पृ १३९)

जो फटे हुए को सीता है, वह तुन्नवाय/दर्जी है ।

७५५. तुलणा (तुलना)

तोल्यते परीक्ष्यते आत्मा यया सा तुलना ।[1] (प्रसाटी प ११९)

जिसके द्वारा स्वय को तोला जाता है, वह तुलना/तुला है ।

७५६. तेइच्छिय (चैकित्सिक)

चिकित्सया चरति जीवति वा चैकित्सिकः । (बृटी पृ ५७१)

जो चिकित्सा से आजीविका चलाता है/जीवित रहता है, वह चिकित्सक/वैद्य है ।

७५७. तेण (स्तेन)

स्त्यायत इति स्तेनः ।[2] (उचू पृ १६०)

जो धन को बटोरता है, वह स्तेन/चोर है ।

जो समूहरूप मे रहता है, वह स्तेन/चोर है ।

७५८. तोत्त (तोत्र)

तुद्यते येन तुत्तं । (उचू पृ ४२)

जो व्यथित करता है, वह तोत्र/चाबुक/दोष है ।

७५९. थंडिल (स्थण्डिल)

थाणं ददातीति थंडिलं । (आचू पृ २८९)

जो स्थान प्रदान करता है, वह स्थण्डिल (भूमी) है ।

---

१. **तवेण सत्तेण सुत्तेण, एगत्तेण बलेण य ।**
तुलणा पंचहा वुत्ता, जिणकप्पं पडिवज्जओ । (बृनि १३२८)

२. **'स्तेन'** का अन्य निरुक्त—
स्तेनयति स्तेनः । (अचि पृ ८९)
जो चुराता है, वह स्तेन है । (**स्तेनण्—चौर्ये**)

७६०. थंभ (स्तम्भ)

स्तभ्नातीति स्तम्भः। (दजिचू पृ ३०)

जो स्तब्ध करता है, वह स्तम्भ/मान है।

७६१. थल (स्थल)

तिष्ठति तस्मिन्निति स्थलम्। (उचू पृ २०५)

जहा ठहरा जाता है, वह स्थल है।

७६२. थलयर (स्थलचर)

स्थलं—निर्जलो भूभागस्तस्मिश्चरन्तीति स्थलचराः।
(उशाटी प ६९८)

जो स्थल/भूमि पर चलते हैं, वे स्थलचर (प्राणी) हैं।

७६३. थावर (स्थावर)

तिष्ठंतीति स्थवराः।[1] (सूचू १ पृ ४७)

जो स्थितिशील हैं, वे स्थावर हैं।

७६४. थिर (स्थिर)

तिष्ठतीति स्थिरः। (सूचू १ पृ १४५)

जो ठहरता है, वह स्थिर हैं।

७६५ थिरीकरण (स्थिरीकरण)

वयणकिरियासहायत्तेण जं संजमे थिरं करेतित्ति थिरीकरणं।
(निचू १ पृ १८)

वाणी और क्रिया का सहयोग देकर संयमच्युत व्यक्ति को पुन संयम मे स्थिर करना स्थिरीकरण है।

७६६. थीणद्धि (स्त्यानर्द्धि/स्त्यानगृद्धि)

इड्ढं चित्तं तं थीणं जस्स अच्चंतदरिसणावरणकम्मोदया सो थीणद्धी।[2] (निचू १ पृ ५५)

१. स्थावरनामकर्मोदयात् तिष्ठन्तीत्येवंशीलाः स्थावराः—पृथिव्यादयः। (स्थाटी प ३६)

२. जह उदगम्मि घए वा थीणम्मि णोवलब्भए किंचि।
इड्ढं चित्तं भण्णति, तं थीणं तेण थीणद्धी॥ (जीतभा २५२६)

स्त्याना—पिण्डीभूता ऋद्धिः—आत्मशक्तिरूपा यस्यां स्वापावस्थायां सा स्त्यानर्द्धिः। (प्रज्ञाटी प ४६७)

जिसमे चित्त अत्यन्त स्त्यान/जड़ीभूत हो जाता है, वह स्त्यानर्द्धि/निद्रा का एक प्रकार है।

७६७. थेर (स्थविर)

सीदतः साधून् स्थिरीकरोतीति स्थविरः। (प्रसाटी प २४)

जो सयम मे अस्थिर व्यक्ति को स्थिर करता है, वह स्थविर है।

७६८. दंड (दण्ड)

दम्मन्ति जेण सो दंडो। (आचू पृ १८६)

जिससे दमन/निग्रह किया जाता है, वह दण्ड/शस्त्र है।

दण्ड्यतेऽनेनेति दण्डः। (उचू पृ २०७)

जो दंडित करता है, वह दंड है।

७६९. दंड (दण्ड)

दण्ड्यन्ते—व्यापाद्यन्ते प्राणिनो येन स दण्डः: (आटी प ११४)

जिससे प्राणियो को दडित/प्राणच्युत किया जाता है, वह दड/हिंसा है।

७७०. दंडभीरु (दण्डभीरु)

डंडाओ बीभेति डंडभीरू। (आचू पृ २६०)

जो दड/हिसा से भी/भयभीत होता है, वह दडभीरु/मुनि है।

७७१. दंत (दन्त)

दस्यते एभिरिति दन्ताः।[1] (उचू पृ २०८)

जो काटते हैं, वे दांत हैं।

---

१. 'दंत' का अन्य निरुक्त—

दाम्यन्त्यम्लभक्षणात् दन्ताः। (अचि पृ १३२)

जो अम्ल द्रव्य के भक्षण से बेकार हो जाते हैं, वे दात है।

७७२. दंत (दान्त)

दान्तः यः पापेभ्यः उपरतोऽथवा दान्तोनाम इन्द्रियदमेन नोइन्द्रिय-दमेन च ।[1] (व्यभा १० टी प ६०)

जो पाप से उपरत है, वह दान्त है।

जिसने इन्द्रिय और मन का दमन/उपशमन किया है, वह दांत है।

७७३. दंतवक्क (दान्तवाक्य)

दम्यन्ते यस्य वाक्येन शत्रवः स भवति दान्तवाक्यः ।

(सूचू १ पृ १४८)

जिसके वचनों से शत्रु का दमन होता है, वह दांतवाक्य/चक्रवर्ती है।

७७४. दंतसोहण (दन्तशोधन)

दंता सोहिज्जंति जेण तं दंतसोहणं । (दजिचू पृ २१६)

जिससे दांतों का शोधन होता है, वह दन्तशोधन/दतून है।

७७५ दंस (दश)

दशन्तीति दंशाः । (उशाटी प ८२)

जो काटते हैं, वे दंश/डांस/मच्छर हैं।

७७६. दंसण (दर्शन)

दृश्यन्ते—श्रद्धीयन्ते पदार्था अनेनास्मादस्मिन् वेति दर्शनम् ।

(स्थाटी प २१)

जिसके द्वारा पदार्थों पर दर्शन/श्रद्धान किया जाता है, वह दर्शन/दृष्टि है।

७७७. दंसण (दर्शन)

दृश्यतेऽनेन सामान्यरूपेण वस्त्विति दर्शनम् । (उशाटी प २१०)

जिसके द्वारा वस्तु के स्वरूप का सामान्य दर्शन/बोध होता है, वह दर्शन है।

---

१. दाम्यतीति दान्तः । (शब्द २ पृ ७०१)

७७८. दंसणावरण (दर्शनावरण)

दर्शनं—सामान्यावबोधस्तदाव्रियते अनेनेति दर्शनावरणम् ।
(उशाटी प ६४१)

दर्शन/सामान्य अवबोध जिसके द्वारा आवृत होता है, वह दर्शनावरणीय (कर्म) है ।

७७९. दगवीणिया (दकविनीता)

विणयति जम्हा उदग दगवीणिय भण्णते तम्हा ।[1] (निभा ६३४)

जिससे दक/पानी ले जाया जाता है, वह दकविनीता/जल-प्रणालिका है ।

७८०. दढप्पहारि (दृढप्रहारिन्)

निक्किवं पहणइत्ति दढप्पहारी । (आवहाटी १ पृ २६२)

जो निर्दयता से प्रहार करता है, वह दृढप्रहारी (चोर) है ।

७८१. दप्पणिज्जा (दर्पणीया)

दर्पयतीति दर्पणीया । (प्रज्ञाटी प ३६६)

जो दर्प/उन्माद पैदा करती है, वह दर्पणीया (शराब) है ।

७८२. दमअ (द्रमक)

भोयणनिमित्तं घरे घरे द्रमति गच्छतीति दमओ ।
(दअचू पृ १६८)

जो भोजन के लिए घर घर भटकता है, वह द्रमक/भिखारी है ।

७८३. दया (दया)

दीयत इति दया ।[2] (आचू पृ २७०)

जिसके द्वारा सहानुभूति प्रगट की जाती है, वह दया है ।

---

१ **'दगं' पाणी तं 'वीणिया' वाहो, दगस्स वीणिया दगवीणिया ।**
(निचू २ पृ ३६)

२. **'दया'**का अन्य निरुक्त—
दयन्तेऽनया दया । (अचि पृ ८६)
जिसके द्वारा प्राणियो की रक्षा की जाती है, वह दया है ।

७८४. दरिसण (दर्शन)

दिस्सति जेण पस्सति वा तं दरिसणं । (आचू पृ १२६)

दृश्यते तत्त्वमस्मिन्निति दर्शनम् । (उशाटी प ५५६)

जिससे तत्त्व देखा-जाना जाता है, वह दर्शन/अर्हत्-वाणी है ।

७८५. दव्व (द्रव्य)

द्रवते द्रूयते वा द्रव्यम् ।

जिसके पर्याय बदलते रहते है, वह द्रव्य है ।

द्रवति—स्वपर्यायान् प्राप्नोति क्षरति च, द्रूयते गम्यते तैस्तैः द्रव्यम् ।

जो पर्यायो के लय और विलय से जाना जाता है, वह द्रव्य है ।

द्रवति—गच्छति तांस्तान् पर्यायविशेषानिति द्रव्यम् ।
(सूचू १ पृ ५)

जो विशेष पर्यायो को प्राप्त करता है, वह द्रव्य है ।

७८६. दव्विकर (दर्वीकर)

दर्वी—फणा तत्करणशीला दर्वीकराः । (जीटी प ३९)

जो दर्वी/फण करते हैं, वे दर्वीकर/सर्प है ।

७८७. दसवेकालिय (दशवैकालिक)

विगते काले विकाले दसकमज्झयणाण कतमिति दसवेकालियं ।[1]

जिसके दस अध्ययन विकाल मे रचे गए हैं, वह दशवैकालिक (सूत्र) है ।

चउपोरिसितो सज्झायकालो तम्मि विगते वि पढिज्जतीति विगय-कालियं दसवेकालियं । (दअचू पृ ३)

१. मणगं पडुच्च सेज्जंभवेण निज्जूहिया दसऽज्झयणा ।
वेयालियाइ ठविया तम्हा दसकालियं णामं ।। (दनि १५)

जिसका स्वाध्याय विकाल मे भी किया जाता है, वह दशवैकालिक (सूत्र) है।

दस वि अज्झयणा निज्जूहिज्जंता विकाले निज्जूढा थोवावसेसे दिवसे तेण दसवेकालियं त्ति। (दअचू पृ ५)

जिसके दस अध्ययनो का निर्यूहण करते करते विकाल हो गया, वह दशवैकालिक (सूत्र) है।

७८८. दसवेयालिय (दशवैतालिक)

दसमं वा वेतालियोपजातिवृत्तेहिं नियमितमज्झयणमिति दसवेतालियं। (दअचू पृ ३)

जिसका दसवा अध्ययन वैतालिक छद मे बनाया गया है, वह दशवैतालिक/दशवैकालिक (सूत्र) है।

७८९. दस्सु (दस्यु)

दंसतीति दंसुगाणि।[1] (आचू पृ ३५६)

जो दूसरो का विनाश करते हैं, वे दस्यु है।

दसणेहिं·· दंतेहिं दंसति तेण दसू। (निचू ४ पृ १२४)

जो दातो से काटता है, वह दस्यु है।

७९०. दहण (दहन)

दहतीति दहणो। (आवचू १ पृ २६)

जो जलता है, वह दहन/अग्नि है।

७९१. दाण (दान)

दीयत इति दानम्। (सूचू १ पृ १४८)

जो दिया जाता है, वह दान है।

७९२. दाणीय (दानीय)

दीयतेऽस्मै इति दानीयः। (बृटी पृ २५६)

जिसे दिया जाता है, वह दानीय/अतिथि है।

---

१. **दसति उपक्षणोति दस्युः।** (अचि पृ ८९)

७९३. दाय (दातृ)

ददातीति दाता । (उचू पृ २१८)

जो देता है, वह दाता है ।

७९४. दारुण (दारुण)

मणं दारयंतीति दारुणा । (उचू पृ ७०)

जो मन को विदीर्ण करते हैं, वे दारुण हैं ।

७९५. दावर (द्वापर)

द्विपर्यवसितो द्वापरः ।[1] (आटी प १३)

जो द्वा/सतयुग और त्रेता—इन दो युगों के पर/बाद में आता है, वह द्वापर (युग) है ।

जिससे द्वा/सतयुग और त्रेता—ये दो युग पर/श्रेष्ठ हैं, वह द्वापर युग है ।

७९६. दास (दास)

दयित[2] **इति दासः ।** (उचू पृ १०१)

जिसका दान दिया जाता है, जो बेचा जाता है, वह दास है ।

जिसको पीड़ित किया जा सकता है, मारा जा सकता है, वह दास है ।

दास्यते[3] **दीयते एभ्य इति दासाः ।**[4] (उशाटी प १८८)

जिन्हे दिया जाता है, वे दास हैं ।

७९७. दिट्ठिवाय (दृष्टिवाद)

सव्वाणतदिट्ठीओ तत्था वदंति त्ति दिट्ठिवातो । (नंचू पृ ७२)

---

१. द्वौ सत्यत्रेतायुगौ परौ श्रेष्ठौ यस्मात् (द्वापरः) । (शब्द २ पृ ७६५)

२. दय—दाने, वधे ।

३. दासृङ्—दाने ।

४. दास्यते दीयते भृतिमूल्यादिकं यस्मै सो दासः । (शब्द २ पृ ७०७)

दृष्टयो—दर्शनानि नया उद्यन्ते—अभिधीयन्ते यस्मिन्नसौ दृष्टि-वादः (स्थाटी प १९२)

जिसमे अनेक दृष्टियो/दर्शनो का कथन है, वह दृष्टिवाद/बारहवां अंग (आगम) है।

७९८. **दिट्ठिवाअ** ((दृष्टिपात)

सव्वणतदिट्ठीओ तत्थ पतंति त्ति दिट्ठिवातो। (नंचू पृ ७१)

दृष्टयो—दर्शनानि नया पतन्ति—अवतरन्ति यस्मिन्नसौ दृष्टिपातः। (स्थाटी प १९२)

जिसमे अनेक दृष्टिया/दर्शन पतित/अवतरित हैं, वह दृष्टि-पात/दृष्टिवाद है।

७९९. **दिट्ठंत** (दृष्टान्त)

दीसंति अणेण अत्था तेण दिट्ठंतो। (दजिचू पृ)

जिसके द्वारा अर्थ दृष्ट/ज्ञात होता है, वह दृष्टांत/उदाहरण है।

दृष्टमर्थमन्तं नयतीति दृष्टान्तः। (दटी प ३४)

जो दृष्ट अर्थ की पुष्टि करता है, वह दृष्टात है।

८००. **दिणयर** (दिनकर)

दिनं करोतीति दिनकरः। (अनुद्वामटी प २१)

जो दिन को करता है, वह दिनकर/सूर्य है।

८०१. **दिय** (द्विज)

दो जम्माणि जस्स सो दिओ। (आचू पृ २२६)

गर्भाण्डाच्च द्विर्वा जातो द्विजः। (सूचू १ पृ २२८)

जो गर्भ से और अडे से—इस प्रकार दो बार उत्पन्न होता है, वह द्विज/पक्षी है।

८०२. **दिव्व** (दिव्य)

अक्षैर्दीव्यतीति दिव्यम्। (सूचू १ पृ ६६)

जो हारजीत के लिए पाशो से खेला जाता है, वह दिव्य/जूआ है।

८०३. दिसा (दिश्)

दिस्सते आ सा दिसा ।[1] (आचू पृ १०)

जो पूर्व आदि का व्यपदेश/कथन करती है, वह दिशा है ।

दिस्सति जेण सा दिसा ।[2] (आचू पृ १७८)

जो अवकाश देती है, वह दिशा है ।

दिश्यते यया शिष्यः सा दिक् । (पंटी प १७४)

जिससे शिष्य को कालज्ञान कराया जाता है, वह दिशा है ।

८०४. दीण (दीन)

दीयते इति दीनः । (उचू पृ ५३)

जिसे दिया जाता है, वह दीन है ।

८०५. दीव (द्वीप)

द्विधा पिबति वा द्वीपः ।[3] (सूचू १ पृ २००)

जो दो विपरीत दिशाओं (पूर्व-पश्चिम या उत्तर-दक्षिण) से पान/जल का स्पर्श करता है, वह द्वीप है ।

८०६. दीव (दीप)

दीप्यते दीपः । (दटी प १६)

जो दीप्त होता है, वह दीप है ।

---

१. (क) दिश्यते—व्यपदिश्यते पूर्वादितया वस्त्वनयेति दिक् ।
(स्थाटी प १२७)

(ख) कृत्वैवमवधिं तस्मादिदं पूर्वञ्च पश्चिमम् ।
इति देशो निर्दिश्येत यया सा दिगिति स्मृता ॥
(शब्द २ पृ ७०८)

२. दिशति अवकाशं ददाति या सा दिक् । (शब्द २ पृ ७०८)

३. द्विर्गता आपोऽस्मिन्निति द्वीपः । (आटी प २४६)

८०७. दीवग (दीपक)

दीवइ जं तत्ते दीवगं तं तु । (प्रसा ९४६)

तत्त्वानि दीपयति—परस्य प्रकाशयति दीपकम् ।
(प्रसाटी प २८३)

जो तत्त्वो को दीपित/प्रकाशित करती है, वह दीपक (सम्यक्त्व) है ।

८०८. दुक्ख (दुःख)

दुःखयतीति दुःखम् ।[1] (आटी प ७१)

जो दुःखित/उत्पीडित करता है, वह दुःख है ।

८०९. दुक्खबोहि (दुःखबोधि)

दुक्खेण बुज्झइ दुक्खबोही । (आचू पृ १९)

जो कठिनाई से समझता है, वह दुःखबोधी है ।

८१०. दुक्खसह (दुःखसह)

दुक्खं सारीर-माणसं सहतीति दुक्खसहो । (दअचू पृ २०१)

जो शारीरिक और मानसिक दुःखो को सहन करता है, वह दुःखसह है ।

८११. दुग्ग (दुर्ग)

दुःखं गम्यत इति दुर्गः । (सूचू १ पृ १४६)

जहां दुःख/कष्टपूर्वक जाया जाता है, वह दुर्ग है ।

८१२. दुग्गम (दुर्गम)

दुःखेन गम्यत इति दुर्गमम् । (स्थाटी प २८६)

जो कठिनाई से जाना जाता है, वह दुर्गम है ।

---

१. 'दुःख' का अन्य निरुक्त—

दु इति अयं सद्दो कुच्छिते दिस्सति । खं सद्दो पुन तुच्छे । तस्मा कुच्छितत्ता तुच्छत्ता च दुक्खं ति वुच्चति (वि १६/१०)

८१३. दुच्चर (दुश्चर)

दुक्करं चरिज्जतीति दुच्चरं । (आचू पृ ३१८)

जिसका कठिनाई से आचरण किया जाता है, वह दुश्चर है ।

८१४. दुज्जय (दुर्जय)

दुक्खं जिणिज्जंतीति दुज्जया: । (उचू पृ १८४)

दु:खेन जीयन्ते--अभिभूयन्ते इति दुर्जयाः । (उशाटी प १९०)

जो कठिनाई से जीता जाता है, वह दुर्जय है ।

८१५. दुण्णाम (दुर्नाम)

मदाद् दुष्टं नमनं दुर्नाम । (भटी पृ १०५१)

अभिमान वश कठिनाई से नमन करना दुर्नाम/दुर्नमन है ।

८१६. दुतितिक्ख (दुस्तितिक्ष)

दु:खेन तितिक्ष्यते—सह्यते इति दुस्तितिक्षम् । (स्थाटी प २८६)

जो दु खपूर्वक सहा जाये, वह दुस्तितिक्ष है ।

८१७. दुद्दंत (दुर्दान्त)

दुष्ट दमनं दुर्दान्तम् । (उशाटी प ६३१)

जिसका कठिनाई से दमन किया जाता है, वह दुर्दान्त है ।

८१८. दुपरिच्चय (दुष्परित्यज)

दु:खेन—कृच्छ्रेण परित्यज्यन्ते—परिह्रियन्ते इति दुष्परित्यजाः । (उशाटी प २९२)

जो कठिनाई से परित्यक्त होते हैं, वे दुष्परित्यज हैं ।

८१९. दुपस्स (दुर्दर्श)

दु:खेन दर्श्यते इति दुर्दर्शम् । (स्थाटी प २८७)

जिस तत्त्व का कठिनाई से निर्देशन किया जाता है, वह दुर्दर्श (तत्त्व) है ।

८२०. दुप्पजीवि (दुष्प्रजीविन्)

दुःखेन—कृच्छ्रेण प्रकर्षेणोदारभोगापेक्षया जीवितुं शीला दुष्प्रजी-विनः । (दटी प २७२)

जो अत्यन्त दु ख मे जीवन यापन करते हैं, वे दुष्प्रजीवी हैं ।

८२१. दुप्पहंसय (दुष्प्रधर्षक)

दुःखेन प्रधर्ष्य—पराभूयन्ते केनापीति दुष्प्रधर्षकाः । (उशाटी प ३५३)

जिन्हे कठिनाई से प्रधर्षित/पराभूत किया जाता है, वे दुष्प्र-धर्षक/बहुश्रुत हैं ।

८२२. दुप्पूरय (दुष्पूरक)

दुःखं पूर्यत इति दुष्पूरए । (उचू पृ १७६)

जो कठिनाई से पूर्ण होता है, वह दुष्पूरक है ।

८२३. दुम (द्रुम)

भूमीए आगासे य दोसु माया दुमा ।

जो भूमि और आकाश—दोनो में समाते है, वे द्रुम/वृक्ष हैं ।

द्रूः—साहा ताओ तेसिं विज्जंति ते द्रूमा । (दअचू पृ ७)

जिनके द्रू/शाखाएं हैं, वे द्रुम हैं ।

८२४. दुम्मारि (दुर्मारि)

दुष्टदेवताविकृतं सर्वगतं मरणं दुर्मारि । (प्रसाटी प १०८)

दुष्ट देव आदि के द्वारा जो व्यापक मरण होता है, वह दुर्मारि है ।

८२५. दुरणुपाल (दुरनुपाल)

दुःखेनानुपाल्यत इति दुरनुपालः । (उशाटी प ५०२)

जिसका अनुपालन कठिनाई से किया जाता है, वह दुरनुपाल है ।

८२६. दुरहि (दुरभि)

दौर्मुख्यकृत् दुरभिः । (अनुद्वाहाटी प ६०)

जो मुख को दुर्/विकृत बना देती है, वह दुरभि/दुर्गंध है ।

८२७. दुरारुह (दुरारोह)

दुःखेनारुह्यते—अध्यास्यत इति दुरारोहम् । (उशाटी प ५१०)

जहा कठिनाई से आरोहण किया जाता है, वह दुरारोह है ।

८२८. दुरासय (दुराश्रय)

दुक्खमाश्रीयते दुरासतं । (दअचू पृ १५०)

जिसे अपने आश्रित करना दुष्कर है, वह दुराश्रय/अग्नि है ।

८२९. दुरुत्तर (दुरुत्तर)

दुक्खं उत्तरिज्जति दुरुत्तरम् । (उचू पृ १३०)

जो कठिनाई से पार किया जाता है, वह दुरुत्तर है ।

८३०. दुरुवणीय (दुरुपनीत)

दुष्टमुपनीतं —निगमितं योजितमस्मिन्निति दुरुपनीतम् ।
(स्थाटी प २५०)

जिसका निगमन/उपसहार उचित रूप मे उपनीत/योजित नही होता, वह दुरुपनीत है ।

८३१. दुरूवभक्खि ('दुरूव' भक्षिन्)

दुरूवं भक्खयन्तीति दुरूवभक्खी । (सूचू १ पृ १३१)

जो दूरूव/मल-मूत्र का भक्षण करते हैं, वे दुरूवभक्खी/नैरयिक हैं ।

८३२. दुल्लह (दुर्लभ)

दुःखेन लभ्यत इति दुर्लभः । (उचू पृ ९८)

जो कठिनाई से प्राप्त होता है, वह दुर्लभ है ।

८३३. दुव्विसोज्झ (दुर्विशोध्य)

दुःखेन विशोधयितु—निर्मलतां नेतु शक्यो दुर्विशोध्यः।

(उशाटी प ५०२)

जो कठिनाई से शुद्ध/निर्मल होता है, वह दुर्विशोध्य है।

८३४. दुसन्नप्प (दु.संज्ञाप्य)

दुःखेन—कृच्छ्रेण संज्ञाप्यन्ते—प्रज्ञाप्यन्ते—बोध्यन्त इति दुःसंज्ञाप्याः। (स्थाटी प १६०)

जिसको कठिनाई से समझाया जाता है, वह दु.संज्ञाप्य है।

८३५. दुस्संबोध (दुस्सम्बोध)

दुःखेन सम्बोध्यते—धर्मचरणप्रतिपत्ति कार्यत इति दुस्सम्बोधः।

(आटी प ३५)

जो कठिनाई से संबुद्ध होता है, वह दुस्सबोध है।

८३६. दुहिल (द्रुहिल)

दुहणसीलो दुहिलो। (उचू पृ १६६)

जो द्रोह करता है, वह द्रुहिल है।

८३७. दूइज्ज (द्रु)

दोसु सिसिरगिम्हेसु रीतिज्जति दूइज्जति।

जो दो ऋतुओ/शिशिर और ग्रीष्म मे आना-जाना होता है, वह दूइज्जण/गमन है।

दोसु वा पाएसु रीइज्जति दूइज्जति। (निचू ३ पृ १२१)

दो पैरो से गमन करना/पैदल चलना दूइज्जण/गमन है।

८३८. देव (देव)

दीवं आगासं तंमि आगासे जे वसंति ते देवा। (दजिचू पृ १५)

जो दिव/आकाश मे रहते हैं, वे देव है।

दीव्यन्तीति देवाः। (दटीप २१)

जो दीप्त है, वे देव हैं।

दीव्यन्ति—क्रीडन्ति देवाः । (उपाटी प १२३)

जो क्रीड़ा करते रहते हैं, वे देव हैं ।

दीव्यन्ते—स्तूयन्ते जगत्त्रयेणापीति देवाः । (उपाटी प ६१६)

जो तीनों लोकों के द्वारा स्तुत्य हैं, वे देव हैं ।

८३९. देवराय (देवराज)

देवानां मध्ये राजमानत्वात्—शोभमानत्वाद्देवराजः ।

(उपाटी प १२४)

जो देवों के मध्य राजित/सुशोभित होता है, वह देवराज/इन्द्र है ।

८४०. दोस (द्वेष)

दूसंति तेण तम्मि व दूसणमह दोसणं व दोसो त्ति ।[1]

(विभा २९६६)

जिससे प्राणी दूषित/विकृत होते हैं, वह द्वेष है ।

जिसके होने पर अप्रीति उत्पन्न होती है, वह द्वेष है ।

८४१. देसअ (देशक)

देशयन्तीति देशकाः । (आवहाटी १ पृ ९०)

जो उपदेश करते हैं, वे देशक/उपदेशक हैं ।

८४२. देसणा (देशना)

अत्थं देसयतीति देसणा । (दजिचू पृ २३५)

जो अर्थ का देशन/कथन करती है, वह देशना/भाषा है ।

---

१. दुष्यन्ति विकृतिं भजन्ति तेन तस्मिन् वा प्राणिन इति द्वेषः । (दुष्—वैकृत्ये)

द्विषन्ति—अप्रीतिं भजन्ति तेन तस्मिन् वा प्राणिन इति द्वेषः । (द्विष्—अप्रीतौ) (विभामहेटी २ पृ २२३)

द्विषत्यनेनेति द्वेषः । (आवचू २ पृ ७६)

जिस भावना से द्वेष/शत्रुता पैदा होती है, वह द्वेष है ।

८४३. देह (देह)

देहियत इति देहो ।[1] (आचू पृ २६६)

जो बढता है/सम्पुष्ट होता है, वह देह है ।

दिह्यते इति देहः ।[2] (सूचू १ पृ ५५)

दिह्यते—उपचीयन्ते पुद्गलैरिति देहः । (उशाटी प ४१)

जो पुद्गलो से उपचित होता है, वह देह है ।

८४४. दोकिरिय (द्वैक्रिय)

द्वे क्रिये—शीतवेदनोष्णवेदनादिस्वरूपे एकत्र समये जीवोऽनुभवतीत्येवं वदन्ति ये ते द्वैक्रियाः । (औटी पृ २०२)

जीव एक समय मे एक साथ दो क्रियाओ/शीत-उष्णवेदना आदि का अनुभव करता है—ऐसा प्रतिपादन करने वाले द्वैक्रियवादी/गंगाचार्यमतावलम्बी है ।

८४५. दोग्गइ (दुर्गति)

दुट्ठा गती दुग्गती ।

जो खराब गति है, वह दुर्गति है ।

दुग्गा वा गती दुग्गती ।

जो दुर्ग/भयकर गति है, वह दुर्गति है ।

दुक्खं वा जंसि विज्जति गतीए एसा गई दुग्गती ।

(निचू १ पृ ११)

जो दु.खपूर्ण गति है, वह दुर्गति/नरकगति-तिर्यंचगति है ।

८४६. दोणमुह (द्रोणमुख)

दोहिं गम्मति जलेण वि थलेण वि दोणमुहं । (आचू पृ २८२)

जिसमे जल और थल—दोनो मार्गों से जाया जा सके, वह द्रोणमुख है ।

द्रोण्यो—नावो मुखमस्येति द्रोणमुखम् । (उशाटी प ६०५)

---

१. देग्धि प्रतिबिनं देहः । (शब्द २ पृ ७४६) (दिह्-वृद्धौ)

२. धातुर्भिर्दिह्यते देहः । (अचि पृ १२७)

जिसमें द्रोणी/नौका के द्वारा मुख/प्रवेश होता है, वह द्रोणमुख है।

८४७. दोस (द्वेष)

दूसंति तेण तम्मि व··········(दोसो)। (विभा २९६९)

जिससे प्राणी दूषित/विकृत होते हैं, वह दोष/द्वेष है।

८४८. दोस (दोष)

दूसयतीति दोसो। (दअचू पृ १०२)

दूसिज्जति जेण स दोसो। (निचू १ पृ ३७)

जो दूषित करता है, वह दोष है।

८४९. धण (धन)

दधाति[1] धीयते[2] वा धनम्।[3] (उचू पृ १९२)

जो सुख को धारण करता है, वह धन है।

जो पूर्ण करता है, वह धन है।

८५०. धणु (धनुष)

हन्यते तेन धारयंति वा धनुः।[4] (उचू पृ १८३)

जिससे मारा जाता है, वह धनुष है।

जिससे धारण/रक्षण किया जाता है, वह धनुष है।

---

१. **दधाति सुखमिति धनम्।** (शब्द २ पृ ७७६)

२. **धी (धीयते)** पूर्ण करना (आप्टे पृ ८६२)

३. '**धन**' शब्द का अन्य निरुक्त—
धनति शब्दायते धनम्। (अचि पृ ४५)
जो व्यक्ति को प्रसिद्ध करता है, वह धन है।

४. '**धनुष**' के अन्य निरुक्त—
धन्यतेऽर्यते, धनति शब्दायते ज्याघातेन वा धनुः। (अचि पृ १७०)
जिससे विजय प्राप्त होती है, वह धनुष है।
जो ज्या/धनुष की डोरी के आघात से शब्द करता है, वह धनुष है।
धन्वन्त्यस्मादिषवः धनुः। (नि ९/१६)
जिससे बाण छूटते हैं, वह धनुष है। (**धन्वतेर्गतिकर्मणः, वध कर्मणो वा**)

८५१. धण्ण (धन्य)

णाणदंसणचरित्ताणि धणं एतेण धणेण धण्णो ।

(आवचू १ पृ ५३८)

जो ज्ञान, दर्शन और चरित्र रूप धन से संपन्न है, वह धन्य है ।

८५२. धण्णा (धन्या)

धनमर्हति लप्स्यते वा या सा धन्या । (अंतटी प ८)

जो धन/प्रशसा के योग्य है, प्रशसा को प्राप्त करती है, वह धन्या है ।

८५३. धम्म (धर्म)

धारेति संसारे पडमाणमिति धम्मो ।[1] (दअचू पृ १)

धारेति दुग्गतिमहापडणे पतंतमिति धम्मो । (दअचू पृ ६)

जो ससार अथवा दुर्गति मे पडती हुई आत्मा को धारण करता है/बचाता है, वह धर्म है ।

८५४. धम्मक्खाइ (धर्माख्यायिन्)

धर्ममाख्यान्ति भव्यानां प्रतिपादयन्तीति धर्माख्यायिनः ।

(औटी पृ २०२)

जो धर्म का आख्यान/प्रतिपादन करते हैं, वे धर्माख्यायी हैं ।

८५५. धम्मक्खाति (धर्मख्याति)

धर्माद् वा ख्यातिः प्रसिद्धिर्येषां ते धर्मख्यातयः ।

(औटी पृ २०२)

जो धर्म से ख्याति/प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं, वे धर्मख्याति हैं ।

---

१. (क) **दुर्गतिप्रसृतान् जीवान् यस्माद् धारयते ततः ।**
धत्ते चैतान् शुभस्थाने, तस्माद् धर्म इति स्मृतः ।।

(आवहाटी २ पृ १९८)

(ख) 'धर्म' का अन्य निरुक्त—

ध्रियते पुण्यात्मभिरिति धर्मः । (शब्द २ पृ ७८३)

पवित्र आत्मा जिसे धारण करती है, वह धर्म है ।

८५६. धम्मत्थकाम (धर्मार्थकाम)

धम्मस्स अत्थं कामयंतीति धम्मत्थकामा। (दअचू पृ १३९)

धम्मस्स फलं मोक्खो, सो चेव अत्थो। तं अत्थं कामेन्ति धम्मत्थकामा।[1] (दअचू पृ १४३)

जो धर्म के अर्थ/मोक्ष की कामना करते हैं, वे धर्मार्थकाम/मुमुक्षु हैं।

८५७. धम्मद (धर्मद)

धर्म—चारित्ररूपं ददतीति धर्मदाः। (जीटी प २५६)

जो धर्म को प्रदान करते हैं, वे धर्मदाता/तीर्थंकर हैं।

८५८. धम्मदेसय (धर्मदेशक)

धर्मं दिशन्तीति धर्मदेशकाः। (जीटी प २५६)

जो धर्म की देशना देते हैं, वे धर्मदेशक/तीर्थंकर हैं।

८५९. धम्मपण्णत्ति (धर्मप्रज्ञप्ति)

धम्मो पण्णविज्जए जाए सा धम्मपण्णत्ती।[2] (दअचू पृ ७३)

जिसमे धर्म की प्रज्ञापना/प्ररूपणा है, वह धर्मप्रज्ञप्ति/दशवैकालिक सूत्र का चतुर्थ अध्ययन है।

८६०. धम्मपलज्जण (धर्मप्ररज्यन)

धर्मे प्ररज्यन्ते—आसज्यन्ते ये ते धर्मप्ररज्यनाः।

(औटी पृ २०२)

जिनका धर्म के प्रति अनुराग है, वे धर्मप्ररज्यन हैं।

८६१. धम्मपलोइय (धर्मप्रलोकिन्)

धर्मं प्रलोकयन्ति—उपादेयतया प्रेक्षन्ते पाषण्डिषु वा गवेषयन्तीति धर्मप्रलोकिनः। (औटी पृ २०२)

जो धर्म का प्रलोकन/गवेषण करते हैं, वे धर्मप्रलोकी हैं।

---

१. धम्मस्स फलं मोक्खो.........।
तमभिप्पाया साहू तम्हा धम्मत्थकामत्ति ॥ (दनि १६७)

२. आयप्पवायपुव्वा निज्जूढा होइ धम्मपण्णत्ती (दनि १६)

८६२. धम्मविदु (धर्मविद्)

धम्मं विदतीति धम्मविदः। (आचू पृ १४४)

जो धर्म को जानता है, वह धर्मवित् है।

८६३. धम्माणुअ (धर्मानुग)

धर्मं—श्रुतरूपमनुगच्छन्ति ये ते धर्मानुगाः। (औटी पृ १०२)

जो धर्म का अनुगमन करते है, वे धर्मानुग हैं।

८६४. धर (धर)

धरतीति धरः। (नटी पृ १३)

जो धारण करता है, वह धर/धारक है।

८६५. धरणा ((धरणा)

अवायाणंतरं तमत्थं अविच्चुतीए जहण्णुक्कोसेणं अन्तमुहुत्तं धरेंतस्स धरणा। (नंचू पृ ३७)

जो अर्थबोध अपाय के पश्चात् अतर्मुहूर्त्त के लिए स्थिर रहता है, वह धरणा/धारणा है।

८६६. धव (धव)

धारयति तां स्त्रियं धीयते वा तेन पुंसा वा स्त्री दधाति सर्वात्मना पुष्णाति वा तेन कारणेन धवः।[1] (व्यभा ७ टी प ८६)

जो स्त्री का सर्वात्मना धारण/पोषण करता है, वह धव/पति है।

८६७. धाई (धात्री)

धारेइ[2] धीयए[3] वा धयंति[4] वा तमिति तेण धाई उ। (पिनि ४११)

---

१. 'धव' का अन्य निरुक्त—

धुनाति धवः। (अचि पृ ११८)

जो प्रकम्पित/उत्तेजित होता है, वह धव/पति है।

२. धारयति बालकमिति धात्री। ध्रियते—पोष्यते इति धात्री। (पिटी प १२२)

३. धीयते—धार्यते बालानां दुग्धपानाद्यर्थमिति धात्री। (प्रसाटी प १४४)

४. धयन्ति—पिबन्ति बालकास्तामिति धात्री। (पिटी प १२२)

जो बालक का धारण/पोषण करती है, वह धात्री/धाय है।

बच्चों के दुग्धपान आदि के लिए जिसे रखा जाता है, वह धात्री है।

बालक जिसका स्तन-पान करते हैं, वह धात्री है।

८६८. धारणा (धारणा)

अवगतार्थविशेषधरणं धारणा। (स्थाटी प २७३)

अवगत अर्थ को विशेषरूप से धारण करना धारणा/मति-ज्ञान का एक भेद है।

८६९. धिक्कार (धिक्कार)

धिगधिक्षेपार्थ एव तस्य करणं—उच्चारणं धिक्कारः। (स्थाटी प ३८२)

तिरस्कार को दिखाने के लिए 'धिग्' शब्द का उच्चारण करना धिक्कार है।

८७०. धीर (धीर)

धीः बुद्धिः सा जस्स अत्थि सो धीरो।[1] (दअचू पृ १७६)

धीः बुद्धिः इतः—परिगतः तया इति धीरः। (उचू पृ ३५)

जो धी/बुद्धिसम्पन्न है, वह धीर है।

धीः—बुद्धिस्तया राजन्त इति धीराः। (आवचू २ पृ २५४)

जो धी/बुद्धि से राजित/सुशोभित होता है, वह धीर है।

बुद्ध्यादीन् गुणान् दधातो धीरः।[2] (सूचू १ पृ २१)

जो बुद्धि आदि गुणो को धारण करता है, वह धीर है।

८७१. धुत (धुत)

जो विहुणइ कम्माइं···धुयं तं वियाणाहि। (आनि २५२)

---

१. धियमीरयतीति धीरः। (अचि पृ ८०)

२. 'धीर' का अन्य निरुक्त—धियं रातीति धीरः। (वा पृ ३८९६)

जो धी/विवेक देता है, वह धीर है। (रा-दाने)

धुतं नाम येन कर्माणि विधूयन्ते । (सूचू १ पृ ५३)

जिसके द्वारा कर्मों को धुना जाता है, वह धुत/साधना का एक अंग है ।

८७२. धुवण (धुवन)

धूयतेऽनेनेति धुवणं । (सूचू २ पृ ३५१)

जिसके द्वारा गरीबी को धुत/प्रकंपित किया जाता है, वह धुवन/कार्य/शिल्प है ।

८७३ धुवनिग्गह (ध्रुवनिग्रह)

ध्रुवं—कर्म, तद् निगृह्यतेऽनेनेति ध्रुवनिग्रहः ।
(विभामहेटी १ पृ ३५४)

जो ध्रुव/कर्म का निग्रह करता है, वह ध्रुवनिग्रह/आवश्यक सूत्र है ।

८७४. धूय (धूत)

धूयते इति धूतम । (सूटी २ प ७४)

जिसको प्रकंपित किया जाता है, वह धूत/कर्म है ।

८७५. धूया (दुहितृ)

दोग्धि केवलं जननीं स्तन्यार्थमिति दुहिता ।[1] (उशाटी प ३८)

जो दूध के लिए केवल जननी का दोहन करती है, वह दुहिता/पुत्री है ।

---

१. 'दुहिता' के अन्य निरुक्त—

दोग्धि विवाहादिकाले धनादिकमाकृष्य गृह्णातीति दुहिता ।

जो विवाह आदि के अवसर पर माता-पिता आदि से धन आदि का दोहन/ग्रहण करती है, वह दुहिता है ।

यद्वा दोग्धि गा इति दुहिता । (आर्यकाले कन्यासु एव गोदोहन-भारस्थितेस्तथात्वम्) । (शब्द २ पृ ७३५)

जो गायों का दोहन करती है, वह दुहिता है ।

८७६. धेवत (धैवत)

अभिसन्धयते—अनुसंधयति शेषस्वरानिति धैवतः।[1]

(अनुद्वारमटी प ११७)

जो शेष सभी स्वरों का अनुसंधान करता है, वह धैवत/षष्ठ स्वर है।

८७७. पइ (पति)

पाति—रक्षति तामिति पतिः। (उशाटी प ३८)

जो पत्नी की रक्षा करता है, वह पति है।

८७८. पइट्ठा (प्रतिष्ठा)

अपायावधारितमेवार्थं हृदि प्रतिष्ठापयतः प्रतिष्ठा भण्यते।

(नंदी पृ ५१)

अपाय द्वारा गृहीत अर्थ को विकल्पपूर्वक प्रतिष्ठित करना प्रतिष्ठा/धारणा है।

८७९. पइट्ठा (प्रतिष्ठा)

प्रतीत्य— आश्रित्य तिष्ठन्त्यत्र दुःखाभिहताः प्राणिन इति प्रतिष्ठा।

(उशाटी प ५०८)

जहां दुःखी प्राणी आश्वस्त होकर रहते हैं, वह प्रतिष्ठा/प्रतिष्ठान है।

८८०. पईव (प्रदीप)

प्रदीप्यते इति प्रदीपः। (पिटी प ५)

जिसे प्रदीप्त/प्रज्वलित किया जाता है, वह प्रदीप/दीपकलिका है।

८८१. पएस (प्रदेश)

प्रदिश्यते इति प्रदेशः।[2] (सूत्र २ पृ ४५१)

जो पूछा जाता है, वह प्रदेश/प्रश्न है।

---

१. गत्वा नाभेरधोभागं वस्ति प्राप्योर्ध्वगः पुनः।
धावन्निव च यो याति कण्ठदेशं स धैवतः॥ (शब्द २पृ ८०७)

२. प्रवचनस्य प्रश्न इत्यर्थः। (सूत्र २ पृ ४५१)

८८२. पएस (प्रदेश)

प्रकृष्टो—निरंशो देशः प्रदेशः । (स्थाटी प २२)

जो वस्तु का प्रकृष्ट/अविभाज्य देश/विभाग है, वह देश/अवयव विशेष है ।

प्रकर्षेण सूक्ष्मातिशयलक्षणेन दिश्यन्ते—कथ्यन्ते इति प्रदेशाः ।
(उशाटी प २५)

जो अत्यत सूक्ष्म कहे जाते हैं, वे प्रदेश हैं ।

८८३. पओग (प्रयोग)

प्रकर्षेण युज्यत इति प्रयोगः । (आटी प ९३)

जो प्रकर्ष/सघनता से किया जाता है, वह प्रयोग है ।

८८४. पंक (पङ्क)

पतंत्यस्मिन्निति पंकः ।[1] (उचू पृ ७९)

जिसमे प्राणी गिर जाते हैं, वह पक/कीचड है ।

पङ्कयतीति पङ्कः । (सूटी २ प ७४)

जो पकिल बनाता है, वह पक है ।

८८५. पंचम (पञ्चम)

पञ्चानां षड्जादिस्वराणां निर्देशक्रममाश्रित्य पूरणः पञ्चमः ।

षड्ज आदि स्वर-क्रम मे जो पञ्चम स्थान की पूर्ति करता है, वह पञ्चम (स्वर) है ।

पञ्चसु—नाभ्यादिस्थानेषु मातीति पञ्चमः (स्वरः) ।[1]
(अनुद्वामटी प ११७)

---

१. 'पंक' का अन्य निरुक्त—
पञ्चयते विस्तार्यते जलेन पङ्कः । (अचि पृ २४२)
जो जल के द्वारा विस्तृत होता है, वह पंक/कीचड है ।

१. वायुसमुद्भूतो नाभेरुरोहृत्कण्ठमूर्द्धसु ।
विचरन् पञ्चमस्थानमाप्त्या पञ्चम उच्यते ।।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।
एतेषां समवायेन जायते पञ्चमः स्वरः । (वा पृ ४१८६)

जो नाभि आदि पांच स्थानों में समाता है, वह पञ्चम (स्वर) है।

८८६. पंडित (पण्डित)

पापाड्डीनः पंडितः।[1]

जो पाप से डयन/पलायन करता है, वह पंडित है।

पण्डा वा बुद्धि तयानुगतः पण्डितः। (उचू पृ २८)

जो पंडा/बुद्धि से संपन्न है, वह पंडित है।

८८७. पंत (प्रान्त)

प्रगतं अन्तं प्रान्तम्। (उचू पृ १७५)

जो अंतिम है, वह प्रान्त/बचाखुचा (भोजन) है।

८८८. पंथ (पथिन्)

पद्यत इति पंथाः।[2] (सूचू १ पृ ६८)

जिस पर गति की जाती है, वह पथ है।

८८९. पंथपेहि (पथप्रेक्षिन्)

पंथं पेहति पंथपेही। (आचू पृ ३१०)

जो पथ को देखता है, वह पथप्रेक्षी है।

८९०. पंसु (पांशु)

पंसयति पांसयति वा पांशुः।[3] (उचू पृ २०४)

जो मलिन करती है, वह पांशु/धूल है।

८९१. पकप्प (प्रकल्प)

प्रकृष्टकल्पाभिधायकत्वात् प्रकल्पः। (स्थाटी प ११३)

---

१. 'पंडित' का अन्य निरुक्त—
पण्ड्यते तत्त्वज्ञानं प्राप्यतेऽस्मात् इति पण्डितः। (शब्द ३ पृ २०)
तत्त्वज्ञान जिससे प्राप्त किया जाता है, वह पण्डित है।

२. पतन्ति अस्मिन् पन्थाः। (अचि पृ २१६) (पथे गतौ)

३. पंशयति नाशयति आत्मानमिति पांशुः। (शब्द ३ पृ ८८)

जो संपूर्णरूप से कल्प/आचार का प्रतिपादन करता है, वह प्रकल्प/निशीथसूत्र है।

८९२. पकिरण (प्रकिरण)

प्रदातु कीर्यते विक्षिप्यते इति प्रकिरणम्।[1] (व्यभा १ टी प ५)

फलदान के लिए जिसे बिखेरा जाता है, वह प्रकिरण/वपन है।

८९३. पकुव्वय (प्रकारिन्)

यः शुद्धि प्रकर्षेण कारयति स प्रकारीति। (स्थाटी प ४०६)

जो प्रकृष्ट रूप से शुद्धि करता है, वह प्रकारी/प्रायश्चित्त-दाता है।

८९४. पकुव्वि (प्रकुर्विन्)

प्रकुर्वतीत्येवंशीलः प्रकुर्वी।[2] (व्यभा ३ टी प १८)

जो उचित प्रायश्चित्त के द्वारा दोषसेवी की विशुद्धि करता है, वह प्रकुर्वी/आचार्य है।

८९५. पक्खि (पक्षिन्)

पक्खा तेसि संतीति पक्खिणो। (आचू पृ ३१४)

जिनके पक्ष/पख हैं, वे पक्षी हैं।

८९६. पग्गह (प्रग्रह)

प्रगृह्यते—उपादीयते आदेयवचनत्वाद्यः स प्रग्रहः। (स्थाटी प ३)

आदेयवचन के कारण जिसका प्रग्रहण/स्वीकरण किया जाता है, वह प्रग्रह/सर्वमान्य नायक है।

---

१. **प्र शब्दोऽत्र दाने।** (व्यभा १ टी प ५)

२. **कुर्व इत्यागम प्रसिद्धो धातुरस्ति यस्य विकुर्वणेति प्रयोगः। आलोचकेनालोचितेऽपराधेषु यः सम्यक् प्रायश्चित्तप्रदानत आलोचकस्य विशुद्धिमुपजनयति स प्रकुर्वी।** (व्यभा ३ प १८)

८९७. पच्चक्ख (प्रत्यक्ष)

जीवो अक्खो तं पति जं वट्टइ तं तु होति पच्चक्खं ।[1]

(जीतभा ११)

मन और इन्द्रिय से निरपेक्ष केवल अक्ष/आत्मा द्वारा जो ज्ञान होता है, वह प्रत्यक्ष (प्रमाण) है ।

८९८. पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान)

प्रमादप्रतिकूल्येन मर्यादया ख्यानं—कथनं प्रत्याख्यानम् ।[2]

(स्थाटी प ४१)

अप्रमत्तभाव को जगाने के लिए जो मर्यादापूर्वक संकल्प किया जाता है, वह प्रत्याख्यान है ।

८९९. पच्चय (प्रत्यय)

प्रतीयतेऽनेनार्थ इति प्रत्ययः । (उचू पृ २४)

जिससे अर्थ/तत्त्व की प्रतीति होती है, वह प्रत्यय है ।

९००. पच्चवाय (प्रत्यपाय)

प्रत्यपाययति—प्रत्यपाये पातयतीति प्रत्यपायः । (बृटी पृ १७१)

जो प्रत्यपाय/विघ्न में डालता है, वह प्रत्यपाय/विराधना है ।

९०१. पच्चावट्टण (प्रत्यावर्तन)

प्रतिपत्त्याऽऽवर्तनं प्रत्यावर्तनम् । (नंदी पृ ५१)

प्रतिपत्ति/ज्ञानपूर्वक आवर्तन करना प्रत्यावर्तन/अवाय/मतिज्ञान का एक भेद है ।

९०२. पच्चुप्पन्न (प्रत्युत्पन्न)

साम्प्रतमुत्पन्नं प्रत्युत्पन्नम् ।

---

१. अश्नाति—भुङ्क्ते अश्नुते वा—व्याप्नोति ज्ञानेनार्थानित्यक्षः—आत्मा तं प्रति यद् वर्तते इन्द्रियमनोनिरपेक्षत्वेन तत्प्रत्यक्षम् ।

(स्थाटी प ४६)

२. विधिनिषेधविषया प्रतिज्ञेत्यर्थः । (स्थाटी प ४१)

जो तत्काल/वर्तमान में उत्पन्न होता है, वह प्रत्युत्पन्न है।

प्रति प्रति वोत्पन्नं प्रत्युत्पन्नम् । (आवहाटी १ पृ १८९)

जो व्यक्ति व्यक्ति मे भिन्न रूप से उत्पन्न होता है, वह प्रत्युत्पन्न है।

९०३. पच्छण्णपडिसेवि (प्रच्छन्नप्रतिसेविन्)

प्रच्छन्नं प्रतिसेवत इति प्रच्छन्नप्रतिसेवी । (स्थाटी प २११)

जो छिप छिप कर दोषो की प्रतिसेवना करता है, वह प्रच्छन्नप्रतिसेवी है।

९०४. पच्छाणुपुव्वि (पश्चानुपूर्विन्)

पाश्चात्यः—चरमस्तस्मादारभ्य व्यत्ययेनैवानुपूर्वी—परिपाटिः विरच्यते यस्यां स पश्चानुपूर्वी । (अनुद्वामटी प ६७)

जो पाश्चात्य/अंतिम बिंदु से प्रारंभ होकर उल्टेरूप मे क्रम निर्धारित करता है, वह पश्चानुपूर्वी है।

९०५. पच्छित्त (प्रायश्चित्त)

पायेण वा वि चित्तं सोहयई तेण पच्छित्तं । (जीतभा ५)

प्रायः बाहुल्येन चित्तं—जीवं शोधयति मूलोत्तरगुणविषयातीचारजनितकर्ममलमलिनं निर्मलं करोतीति प्रायश्चित्तम् ।

(प्रसाटी प ६७)

जो प्राय. चित्त का शोधन कर देता है, वह प्रायश्चित्त है।

९०६. पजणण (प्रजनन)

प्रजन्यते अनेनेति प्रजननं । (सूचू १ पृ १०२)

जिसके द्वारा पैदा किया जाता है वह प्रजनन/शिश्न है।

९०७. पजा (प्रजा)

प्रकर्षेण जायते पाकनिष्पत्तिरस्यामिति प्रजा ।

(व्यभा ९ टी प ४)

जिसमे प्रकृष्ट रूप से अन्न आदि पकता है, वह प्रजा/चुल्ही है।

908. पज्जय (पर्याय)

परि—समन्ताद् आयः पर्यायः । (नंदि पृ ११२)

जिसमें चारों ओर से आय/प्राप्ति होती है, वह पर्याय है।

909. पज्जव (पर्यव)

परि-समन्तादवन्ति—अपगच्छन्ति न तु द्रव्यवत् सर्वदैवाव-तिष्ठन्त इति पर्यवाः ।

जो द्रव्य की तरह सदैव एक रूप में न रहकर बदलते रहते हैं, वे पर्यव हैं।

परि—समन्ताद् अवनानि गमनानि द्रव्यस्यावस्थान्तरप्राप्ति-रूपाणि पर्यवाः ।

जिनसे द्रव्य अवस्थान्तर को प्राप्त होते हैं, वे पर्यव हैं।

परि—सामस्त्येन एति—अभिगच्छति व्याप्नोति वस्तुतामिति पर्यायाः । (अनुद्वामटी प १०१)

जो सपूर्णरूप से वस्तु में व्याप्त हो जाते हैं, वे पर्याय हैं।

910. पज्जुसणा (पर्युषणा)

सव्वासु दिसासु ण परिब्भमंतीति पज्जुसणा । (दश्रुचू प ५२)

किसी भी दिशा में परिभ्रमण नहीं करना पर्युषणा है।

परि-सर्वथा वसनं एकत्र निवासो नियतकालविशिना पर्युषणा ।[1] (प्रसाटी प १८७)

परि/सर्वथा एक स्थान पर रहना पर्युषणा है।

911. पज्जोसवणा (पर्युपशमना)

परीति—सर्वतः क्रोधादिभावेभ्यः उपशम्यते यस्यां सा पर्युप-शमना । (स्थाटी प ४८९)

जिस (पर्व) मे क्रोध आदि कषायो से सर्वथा उपशांत रहा जाता है, वह पर्युपशमना/पर्युषण है।

1. परि सर्वथा एक क्षेत्रे जघन्यतः सप्तदिनानि उत्कृष्टतः षण्मासान् वसनं पर्युषणा । (स्थाटी प ४८९)

९१२. पज्जोसवणा (पर्यासवना)

पर्याया—ऋतुबद्धिकाः द्रव्यक्षेत्रकालभावसम्बन्धिन उत्सृज्यन्ते —उज्झ्यन्ते यस्यां सा पर्यासवना । (स्थाटी प ४८९)

जिसमे ऋतुबद्ध विहार के सारे पर्याय छोड़ दिए जाते हैं, वह पर्यासवना/पर्युषणा है ।

९१३. पज्जोसवित (पर्युषित)

परीति सामस्त्येनोषिता पज्जोसविता । (स्थाटी प २९८)

सम्पूर्णरूप से (धर्माराधना मे) निवास करना पर्युषित है ।

९१४. पट्टन (पत्तन)

पतन्ति तस्मिन् समस्तदिग्भ्यो जना इति पत्तनम् ।

(उशाटी प ६०५)

जहा सभी दिशाओ से लोग आते हैं, वह पत्तन है ।

९१५. पडिक्कमण (प्रतिक्रमण)

प्रतीप क्रमणं प्रतिक्रमणं । (आवचू २ पृ ५२)

(सद्भाव मे) पुन लौट आना प्रतिक्रमण है ।

९१६. पडिच्छिअ (प्रतीच्छिक)

गच्छान्तरादागतस्य सूत्रस्यार्थस्य वा प्रतीच्छनं प्रतीच्छा, तया चरति प्रतीच्छिकः । (व्यभा ४/१ टी प ७६)

एक गण से दूसरे गण मे आकर सूत्र और अर्थ का ग्रहण प्रतीच्छा है । जो प्रतीच्छासेवी है, वह प्रतीच्छिक है ।

९१७. पडिबोहग (प्रतिबोधक)

प्रतिबोधयतीति प्रतिबोधकः । (नंटी पृ ५२)

जो प्रतिबोध देता है, वह प्रतिबोधक है ।

९१८. पडिमाट्ठाइ (प्रतिमास्थायिन्)

प्रतिमया—एकरात्रिक्यादिकया कायोत्सर्गविशेषेणैव तिष्ठतीत्येवं-शीलो यः स प्रतिमास्थायी । (स्थाटी प २८८)

जो (एकरात्रिक आदी) प्रतिमा में स्थित है, वह प्रतिमा-स्थायी है ।

९१९. पडिमाण (प्रतिमान)

जण्णं पडिमिणिज्जइ (पडिमाणं) । (अनुद्वा ३८४)

जिससे तोला जाता है, वह प्रतिमान है ।

प्रतिमीयतेऽनेन गुंजादिना प्रतिरूपं वा मानं प्रतिमानं ।
(अनुद्वाहाटी पृ ७६)

प्रतिरूप/सदृश मान/तुला प्रतिमान है ।

९२०. पडिलेहय (प्रतिलेखक)

प्रतिलिखतीति प्रतिलेखकः । (ओटी प १३)

जो प्रतिलेखन/वस्तु-निरीक्षण करता है, वह प्रतिलेखक है ।

९२१. पडिवाइ (प्रतिपाति)

प्रतिपतनशीलं प्रतिपाति । (स्थाटी प ३५६)

जो पतनशील है, वह प्रतिपाती है ।

९२२. पडिसंलीण (प्रतिसंलीन)

क्रोधादिकं वस्तु वस्तु प्रतिसम्यग्लीन निरोधवन्तः प्रतिसंलीनाः ।
(स्थाटी प २००)

जिन्होंने क्रोध आदि का सम्यक् लय किया है, वे प्रति-संलीन हैं ।

९२३. पडिसग (प्रतिश्रय)

प्रतिश्रीयत इति प्रतिश्रयः । (बृटी पृ ९२५)

जो आश्रय देता है, वह प्रतिश्रय/उपाश्रय/मुनि का निवास-स्थान है ।

९२४. पडिसुणणा (प्रतिश्रवण)

प्रतिश्रूयते—अभ्युपगम्यते यत् तत् प्रतिश्रवणम् ।
(पिटी १ प ३६)

जिसको प्रतिश्रुत/स्वीकृत किया जाता है, वह प्रतिश्रवण है

९२५. पडिसेवअ (प्रतिसेवक)

प्रतिषिद्धं सेवते इति प्रतिसेवकः। (व्यभा १ टी प १६)

जो प्रतिषिद्ध/निषिद्ध का सेवन करता है, वह प्रतिसेवक है।

९२६. पडिसेवणा (प्रतिसेवना)

सम्यगाराधनविपरीता प्रतिगता वा सेवना प्रतिसेवना।

(स्थाटी प ३२४)

प्रतिकूल आसेवन/आचरण करना प्रतिसेवना है।

९२७. पडिसेह (प्रतिषेध)

प्रतिषिध्यतेऽनेनेति प्रतिषेधः। (बृटी पृ २६१)

जिससे निषेध किया जाता है, वह प्रतिषेध है।

९२८. पडिहारिय (प्रतिहार्य)

प्रतिहरणीयं प्रतिहार्यं। (दश्रुचू प २२)

जो पुनः देने योग्य है, वह प्रतिहार्य (वस्तु) है।

९२९. पडोयार (प्रत्यवतार)

प्रति सर्वतः सामस्त्येन अवतीर्यंते—व्याप्यते यैस्ते प्रत्यवताराः।

(प्रज्ञाटी प ५३२)

जो परित अवतरित/व्याप्त हैं, वे प्रत्यवतार/परिधियां हैं।

९३०. पडोयर (प्रत्यवतार)

प्रत्यवतार्यते पात्रमस्मिन्निति प्रत्यवतारः। (पिटी प १३)

जिससे पात्र का प्रत्यवतरण/स्थापन किया जाता है, वह प्रत्यवतार/झोली है।

९३१. पणामअ (प्रणामक)

प्रणामयन्तीति प्रणामकाः। (सूचू १ पृ ६७)

जो अत्यन्त नीचे झुकाते/गिराते हैं, वे प्रणामक/कामभोग हैं।

९३२. पणिहाण (प्रणिधान)

प्रकर्षेण नियते आलम्बने धानं—धरणं मनःप्रभृतेरिति प्रणिधानम्।

(भटी पृ १३८१)

मन को निश्चित आलम्बन पर संपूर्णरूप से टिका देना प्रणिधान है।

९३३. पणिहि (प्रणिधि)

प्रणिधीयते प्रणिधिः। (दजिचू पृ २७१)

जिससे प्रणिधान/एकाग्रता होती है, वह प्रणिधि/समाधि है।

९३४. पणीतत्थ (पणितार्थ)

पणीयो—परभवं जस्स जीवितत्थो सो पणीतत्थो। (दअचू पृ १७४)

जो अर्थ/धन के लिए जीवन की पणित/बाजी लगा देता है, वह पणितार्थ/चोर है।

९३५. पणीय (प्रणीत)

प्रकरिसेण णीतं प्रणीतं। (नंचू पृ ४९)

जो प्रकृष्ट रूप मे नीत/ग्रथित है, वह प्रणीत है।

९३६. पणीयरस (प्रणीतरस)

णेह-लवण-संभारातीहि प्रकरिसेण सुरसत्तं णीतं पणीतरसं। (दअचू पृ १९९)

जो प्रकृष्ट रूप से (घृत, लवण, मशाले आदि के द्वारा) स्वादिष्ट बनाया जाता है, वह प्रणीतरस (भोजन) है।

९३७. पण्णग (पण्यक)

पण्णंति तमिति पण्णगम्। (सूचू २ पृ ४२५)

जिसका सौदा किया जाता है, वह पण्य/विक्रेय वस्तु है।

९३८. पण्णत्त (प्रज्ञप्त)

पहाणपण्णेण अवाप्तं पण्णत्तं।

जो विशेष प्रज्ञावान् से प्राप्त है, वह प्रज्ञप्त है।

पहाणपण्णातो अवाप्तं पण्णत्तं।

जो विशेष प्रज्ञा से प्राप्त है, वह प्रज्ञप्त है।

पण्णा—बुद्धी ताए अवाप्तं पण्णत्तं । (नंचू पृ १३)

जो बुद्धि से गृहीत है, वह प्रज्ञप्त है।

६३९. पण्णत्त (प्राज्ञाप्त)

प्राज्ञात्—तीर्थंकरादाप्तं—प्राप्तं गणधरैरिति प्राज्ञाप्तम् ।

जो प्राज्ञ/तीर्थंकरो से गणधरो द्वारा प्राप्त किया गया है, वह प्राज्ञाप्त है।

प्राज्ञैः—गणधरैस्तीर्थंकरादाप्तं—गृहीतमिति प्राज्ञाप्तम् ।

जो प्राज्ञ/गणधरो द्वारा प्राप्त है, वह प्राज्ञाप्त है।

प्रज्ञया आप्तं—प्राप्तं प्राज्ञाप्तम् । (अनुद्वामटी प २)

जो प्रज्ञा द्वारा प्राप्त है, वह प्राज्ञाप्त है।

६४०. पण्णवग (प्रज्ञापक)

पण्णवतीति पण्णवयो । (दअचू पृ २३३)

जो मोक्षमार्ग का प्रज्ञापन/प्ररूपण करता है, वह प्रज्ञापक/मुनि है।

६४१. पण्णवणा (प्रज्ञापना)

प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते जीवादयो भावा अनया शब्दसंहत्या इति प्रज्ञापना । (प्रज्ञाटी प ४)

जिसमे जीव आदि पदार्थों का प्ररूपण है, वह प्रज्ञापना (सूत्र) है।

६४२. पण्णवणी (प्रज्ञापनी)

पण्णविज्जति तीए इति पण्णवणी । (दअचू पृ १५९)

जो प्रज्ञापन/निरूपण करती है, वह प्रज्ञापनी/भाषा है।

६४३. पण्णा (प्रज्ञा)

प्रज्ञायते अनयेति प्रज्ञा । (सूचू २ पृ ३५४)

जिससे विशेष जाना जाता है, वह प्रज्ञा है।

९४४. पण्णा (प्रज्ञा)

प्रज्ञा अस्यां जायत इति पण्णा ।[1] (दचूर्णि प ३)

जिस वय में प्रज्ञा उत्पन्न होती है, वह प्रज्ञा (अवस्था) है ।

९४५. पण्णाण (प्रज्ञान)

प्रकर्षेण ज्ञायतेऽनेनेति प्रज्ञानम् । (आटी प २३३)

जिसके द्वारा उत्कृष्ट रूप में जाना जाता है, वह प्रज्ञान है ।

९४६. पण्णावग (प्रज्ञापक)

प्रज्ञापयतीति प्रज्ञापकः । (नंटी पृ ५२)

जो अच्छे प्रकार से ज्ञापन करता है/बताता है, वह प्रज्ञापक है ।

९४७. पतंग (पतङ्ग)

पतं पतंतीति पतंगा ।[2] (उचू पृ २०९)

जो फुदक फुदक कर चलते हैं, वे पतंग/कीटविशेष हैं ।

९४८. पतग्गह (पतद्ग्रह)

पतत् भक्तं पानं वा गृह्णातीति पतद्ग्रहः । (राटी पृ २९२)

जो गिरते हुए भक्त-पान को ग्रहण करता है, वह पतद्ग्रह/पात्र है ।

९४९. पतत्त (पतत्र)

पतन्तं त्रायन्तीति पतत्राणि । (सूचू १ पृ २२८)

जो गिरते हुए की रक्षा करते हैं, वे पतत्र/पंख हैं ।

९५०. पतिभा (प्रतिभा)

तांस्तान् प्रति अर्थान् भातीति प्रतिभा ।

जो अर्थों/रहस्यों को प्रकट करती है, वह प्रतिभा है ।

---

१. पंचमि तु दसं पत्तो, आणुपुव्वीइ जो नरो ।
इच्छियत्थं विचिंतेइ, कुडुंबं वाभिकंखई ।। (दटी प ८)

२. पतः गच्छति पतङ्गः । (अचि पृ २७२)
पतन् उत्प्लवन् गच्छति पतङ्गः । (वा पृ ४२०४)

पभणति वा पतिभा । (सूचू १ पृ २३३)

जो प्रकर्षरूप से कथन करती है, वह प्रतिभा है ।

९५१. पत्त (पात्र)

पतन्तमाहारं पातीति पात्रम् ।[1] (आटी प २७६)

जो गिरते हुए आहार को धारण करता है, वह पात्र है ।

९५२ पत्त (पत्र)

पात्यतेऽनेनात्मा तस्मिति पत्रम् । (सूचू २ पृ ३४७)

जिसके द्वारा पक्षी उडान भरता है, वह पत्र/पख है ।

पतन्तं त्रायत इति पत्रम् । (उशाटी प २६६)

जो गिरते हुए की रक्षा करता है, वह पत्र/पख है ।

९५३. पत्ती (पत्नी)

पाति तमिति पत्निः । (उचू पृ २०८)

जिसकी रक्षा की जाती है, वह पत्नी है ।

९५४. पत्तोवय (पत्रोपग)

पत्राण्युपगच्छति—प्राप्नोति पत्तोपगः । (स्थाटी प १०७)

जो पत्तो से युक्त होते हैं, वे पत्रोपग/वृक्ष है ।

९५५. पत्थार (प्रस्तार)

प्रस्तीर्यत इति प्रस्तारः । (बृटी पृ ६६१)

जिसे प्रस्तारित किया जाता है/फैलाया जाता है, वह प्रस्तार/चटाई है ।

९५६. पद (पद)

गम्मते इति पदं । (दअचू पृ ३९)

---

१. 'पात्र' के अन्य निरुक्त—
पाति आधेयं पात्रम् ।
जो आधेय की रक्षा करता है, वह पात्र है ।
पीयतेऽस्मादिति पात्रम् । (अचि पृ २२७)
जिससे पान किया जाता है, वह पात्र है ।

पद्यतेऽनेन पदम् । (दटी प ८७)

जिससे चला जाता है, वह पद/पैर है।

९५७. पद (पद)

पद्यतेऽनेनेति पदं । (सूचू १ पृ ५९)

जिसके द्वारा जाया जाता है, वह पद/मार्ग है।

९५८. पदपास (पदपाश)

पदं पाशयतीति पदपाशः । (सूचू १ पृ ३३)

जो पद/पैर को बाधता है, वह पादपाश/जाल है।

९५९. पभंगुर (प्रभगुर)

भिसं भंगसीलं पभंगुरं । (आचू पृ २०५)

जो अत्यन्त विनाशधर्मा है, वह प्रभंगुर/शरीर है।

९६०. पभावणा (प्रभावना)

प्रभाव्यते विशेषतः प्रकाश्यते इति प्रभावना ।

(व्यभा १ टी प २७)

किसी वस्तु को प्रकर्ष से प्रकाश मे लाना प्रभावना है।

९६१. पभु (प्रभु)

प्रभवतीति प्रभुः । (सूचू १ पृ १५०)

जो समर्थ होता है, वह प्रभु है।

९६२. पमत्त (प्रमत्त)

प्रमाद्यन्ति—संयमयोगेषु सीदन्ति स्म प्रमत्ताः ।

(प्रज्ञाटी प ४२४)

जो संयमयोगो मे प्रमाद/आलस्य करते हैं, वे प्रमत्त हैं।

९६३. पमाण (प्रमाण)

प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम् । (उचू पृ ११)

जिससे मापा जाता है, वह प्रमाण है।

९६४. पमेविल (प्रमेदुर)

अतीव मेवो जस्स सो पमेइलो । (दजिचू पृ २५३)

जो अधिक मेद/वसा वाला है, वह प्रमेदुर है ।

९६५. पमोक्ख (प्रमोक्ष)

प्रकर्षेण मोक्षयति—मोचयतीति प्रमोक्षः । (उशाटी प ६२१)

जो सर्वथा मुक्त करता है, वह प्रमोक्ष है ।

९६६ पय (पद)

पद्यते—गम्यते इति पदम् । (स्थाटी प २१७)

जिसके द्वारा जाना जाता है, वह पद/संख्यास्थान है ।

९६७. पयला (प्रचला)

उपविष्ट ऊर्ध्वस्थितो वा प्रचलत्यस्यां स्वापावस्थायामिति प्रचला । (स्थाटी प ४२८)

नींद के कारण जिसमे बैठे-बैठे या खडे-खडे सिर का प्रचलन/डोलना होता है, वह प्रचला/निद्रा-विशेष है ।

प्रचलति घूर्णतेऽस्यामिति प्रचला । (प्राक १ टी पृ १४)

जिस निद्रा मे घर्-घर् शब्द सुनाई देता है, वह प्रचला है ।

९६८ पया (प्रजा)

पयांति पजणेंति वा पया । (आचू पृ ११६)

जो पैदा करती हैं, वे प्रजा/स्त्रिया हैं ।

९६९ पयायसाल (प्रजातशाल)

खंधविणिग्गता डालमूला साला जेसिं पकरिसेण जाता ते पयायसाला । (दअचू पृ १७२)

जिस वृक्ष के अत्यधिक शालाएं/शाखाएं हैं, वह प्रजातशाल/वृक्ष है ।

९७०. पयोद (पयोद)

पयं ददातीति पयोदो । (दजिचू पृ २६३)

जो पय/पानी देता है, वह पयोद/बादल है ।

९७१. परंतम (परंतम)

परं—शिष्यादिकं तमयतीति परंतमः । (स्थाटी प २०७)

जो शिष्यों को तमित/नियंत्रित करता है, वह परंतम है ।

९७२. परंदम (परन्दम)

परे य दमयतीति परंदम । (उचू पृ १६०)

जो दूसरों का दमन करता है, वह परंदम है ।

९७३. परक्कम (पराक्रम)

पराक्रमन्ते येण परक्कमो । (दअचू १ पृ १००)

जिससे दूरी पार की जाती है, वह पराक्रम/मार्ग है ।

९७४. परक्कम (पराक्रम)

परा (न्) क्रमतीति पराक्रमः । (आवचू पृ ४८६)

जो दूसरों को आक्रान्त/परास्त करता है, वह पराक्रम है ।

९७५. परग्घ (परार्घ्य)

परमो जस्स अग्घो तं परग्घं । (दअचू पृ १७५)

जिसका उत्कृष्ट अर्घ्य/मूल्य है, वह परार्घ्य है ।

९७६ परतरग (परतरक)

ये तपः कर्तुमसमर्था वैयावृत्यं चाचार्यादीनां कुर्वन्ति ते परं तारयन्तीति परतरकाः । (व्यभा ३ टी प ३)

जो दूसरों को तारते हैं, सेवा करते हैं, वे परतारक हैं ।

९७७. परपंडित (परपण्डित)

परः—प्रकृष्टः पण्डितः परपण्डितः । (स्थाटी प ४३२)

जो प्रकृष्ट पण्डित है, वह परपण्डित है ।

९७८. परपरिवाय (परपरिवाद)

परेषामपवदनं परपरिवादः । (भटी पृ १०५१)

पर/दूसरों का अपवाद/निंदा करना परपरिवाद (पाप) है।

९७९. परम (परम)

परं माणं जस्स तं परमं । (आचू पृ १११)

जिसका मान—परिमाण उत्कृष्ट है, वह परम है।

९८०. परमचक्खु (परमचक्षुष्)

परं—केवलनाणं तं जस्स चक्खु परमचक्खू । (आचू पृ १७०)

जिसका चक्षु परम/उत्कृष्ट ज्ञान है, वह परमचक्षु है।

९८१. परमट्ठपय (परमार्थपद)

परमः—प्रधानः अर्थः परमार्थो—मोक्षः स पद्यते—गम्यते यैस्तानि परमार्थपदानि । (उशाटी प ४८७)

जिनके द्वारा परम-अर्थ/मोक्ष प्राप्त होता है, वे परमार्थपद/सम्यक्-दर्शन आदि है।

९८२. परमट्ठाणुगामिय (परमार्थानुगामिक)

ज्ञानादयो वा परमार्थाः तान् अनुगच्छतीति परमार्थानुगामिकः । (सूचू १ पृ १७६)

जो परमार्थ/ज्ञान आदि का अनुगमन करते हैं, वे परमार्थानुगामिक हैं।

९८३. परमदंसि (परमदर्शिन्)

परो संजमो मोक्खो वा, परं पस्सतीति परमदंसी । (आचू पृ ११४)

जो परम/सयम/मोक्ष को देखता है, वह परमदर्शी है।

९८४. परमसंजत (परमसंयत)

परमः—प्रधानः स चेह मोक्षस्तदर्थं सम्यग् यतते परमसंयतः । (उशाटी प ६६५)

जो परम/मोक्ष के लिए सम्यक् प्रयत्न करते हैं, वे परम-संयत हैं।

९८५. पराघाय (पराघात)

परानाहन्ति पराघातनाम। (प्राक १ टी पृ ३३)

जो दूसरो का हनन/घात करता है, वह पराघात (नामकर्म) है।

९८६. पावाउय (प्रावादुक)

भृशं वदंतीति प्रावादुकाः। (सूचू २ पृ ३७१)

जो पुनः पुन. अपने मत का प्रतिपादन करते हैं, वे प्राव-दुक/मतप्रवर्तक हैं।

९८७. परिग्गह (परिग्रह)

परिगृह्यत इति परिग्रहः। (प्रटी प ९३)

जिसका परिग्रहण/स्वीकरण किया जाता है, वह परिग्रह है।

९८८. परिचियसुय (परिचितश्रुत)

परिचितमत्यन्तमभ्यस्तीकृतं श्रुतं येन स परिचितश्रुतः। (व्यभा ३ टी प ६७)

जिसने श्रुत को परिचित/अभ्यस्त कर लिया है, वह परि-चितश्रुत है।

९८९. परिजिय (परिजित)

परि—समन्तात् सर्वप्रकारैर्जितं परिजितम्। (अनुद्वामटी प १४)

जो सब प्रकार से जित/स्मृत है, वह परिजित/परिचित (श्रुत) है।

९९०. परिण्णचारि (परिज्ञचारिन्)

परिण्णा—ज्ञानं परिण्णा। चरतीति परिण्णचारी। (आचू पृ ३८१)

जो परिज्ञा/ज्ञानपूर्वक आचरण करता है, वह परिज्ञचारी है।

९९१. परिणिट्ठिय (परिनिष्ठित)

परि—समन्तान्निष्ठितः परिनिष्ठितः। (प्रसाटी प २२२)

जो सर्वथा निष्ठित/पूर्ण हो जाता है, वह परिनिष्ठित है।

९९२. परिणिव्वाण (परिनिर्वाण)

परि—समन्तान्निर्वाणं—सकलकर्म्मकृतविकारनिराकरणतः स्वस्थीभवनं परिनिर्वाणम्। (स्थाटी प २२)

जो सर्वथा कर्मविकार का निराकरण/निरसन करता है, वह परिनिर्वाण/मोक्ष है।

९९३. परिताण (परितान)

परितन्यत इति परितानः। (सूचू १ पृ ३२)

जो फैलाया जाता है, वह परितान/जाल है।

९९४. परियाण (परियान)

परियायते—गम्यते यैस्तानि परियानानि।
(स्थाटी प ४२१)

जिनके द्वारा गमन किया जाता है, वे परियान/वाहन है।

९९५. परियाणिय (परियानिक)

परियानं—गमनं तत् प्रयोजनमस्येति परियानिकम्।
(बृटी पृ १०८१)

जो परियान/गमन के काम आता है, वह पारियानिक/वाहन है।

९९६. परियारग (परिचारक)

परिचरन्ति—सेवन्ते स्त्रियमिति परिचारकाः। (स्थाटी प ६५)

जो परिचरण/मैथुन सेवन करते हैं, वे परिचारक हैं।

९९७ परिरय (परिरय)

परि समन्तात् रयणं परिरयः।[1] (बृटी पृ ३०२)

परितः/चारों ओर से रयण/भ्रमण परिरय/परिभ्रमण है।

९९८. परिवसणा (परिवसना)

पागतिया गिहत्था एगत्थ चत्तारि मासा परिवसंतीति परिवसणा। (दशचू पृ ५२)

साधारण गृहस्थ जिसमे चार मास तक एक स्थान पर रहते हैं, वह परिवसना/वर्षावास है।

९९९. परिवाय (परिपात)

परिपातो वा गुणेभ्यः परिपातनमिति। (भटी पृ १०५१)

गुणों से पतित करना परिपात/निंदा है।

१०००. परिवायअ (परिव्राजक)

पावाइं परिहरंतो पारिव्वातो। (दजिचू पृ ३७)

परिसमन्तात् पापवर्जनेन व्रजति—गच्छतीति परिव्राजकः। (दटी प ८४)

जो पूर्णरूप से पाप का वर्जन कर व्रजन/गमन करता है, वह परिव्राजक है।

१००१. परिवेसण (परिवेषण)

परिवेष्यते—भोजनं दीयते येभ्यस्ते परिवेषणाः। (पिटी प १०५)

जिनको भोजन परोसा जाता है, वे परिवेषण हैं।

१००२. परिसप्प (परिसर्प)

परि-समन्तात्सर्पन्ति—गच्छन्तीति परिसर्पाः। (उशाटी प ६९९)

जो संपूर्ण शरीर से सर्पण/गमन करते हैं, वे परिसर्प हैं।

---

१. रींङ्—गतिरेषणयोः।

१००३. परिसा (परिषद्)

परितः सर्वतः सीदति परिषत् । (दशुचू प ७०)

जहां चारों ओर लोग बैठे रहते हैं, वह परिषद् है ।

१००४. परिसाडण (परिशाटन)

परिशटति परिभ्रश्यति इति परिशाटनानि ।
परिशाट्यन्ते इति परिशाटनानि । (व्यभा १ टी प ५)

जिन्हें परिशाटित/विकीर्ण किया जाता है, वे परिशाटन/बीज हैं ।

१००५. परिस्सव (परिस्रव)

परि—समन्तात् स्रवति—गलति यैरनुष्ठानविशेषैस्ते परिस्रवाः । (आटी प १८१)

जिन अनुष्ठानों से सर्वत परिस्रवण/निर्जरण होता है, वे परिस्रव/निर्जरास्थान हैं ।

१००६. परिहरण (परिहरण)

परिह्रियते इति परिहरणम् । (व्यभा २ टी प १०)

परिहार करना/छोडना परिहरण है ।

१००७. परिहार (परिहार)

परिहार्यते इति परिहारः ।
परिह्रियते वर्ज्यते च अस्मात् परिहारः । (निचू ४ पृ ३८८)

जिससे प्राप्त प्रायश्चित्त का वहन और दोष का वर्जन/शोधन होता है, वह परिहार/प्रायश्चित्त का एक प्रकार है ।

१००८. परीसह (परीषह)

परिसहिज्जंते इति परीसहा । (आवचू २ पृ १३९)

जो सहन किए जाते हैं, वे परीषह हैं ।

१००९. परूवणा (प्ररूपणा)

साधु प्रकृष्टा प्रधाना प्रगता प्ररूपणा वर्णानां प्ररूपणा । (आवचू १ पृ ५०४)

वर्णों (शब्द-शास्त्र) का जो प्रकृष्ट प्रतिपादन है, वह प्ररूपणा है।

१०१०. परोक्ख (परोक्ष)

परओ पुण अक्खस्सा, वट्टंत होइ पारोक्खं। (जीतभा ११)

अक्खो जीवो तस्स जं परतो तं परोक्खं। (आवचू १ पृ ७)

अक्ष/आत्मा से व्यतिरिक्त (इन्द्रिय आदि के द्वारा) जो ज्ञान होता है, वह परोक्ष है।

परैरुक्षा—सम्बन्धनं जन्यजनकभावलक्षणमस्येति परोक्षम्। (स्याटी प ४६)

जिसका जन्य-जनकभावलक्षणरूप उक्षा/संबंध पर/दूसरों से होता है (आत्मा से नही), वह परोक्ष है।

१०११. पलास (पलाश)

पलं असतीति पलासो। (अनुद्वा ३२१)

जो पल/मांस खाता है, वह पलाश/राक्षस है।

१०१२. पलिउंचण (पलिकुञ्चन)

परि—समन्तात् कुञ्चयन्ते—वक्रतामापाद्यन्ते येन तत्पलिकुञ्चनम्। (सूचू १ प १७६)

जिसके द्वारा सारी प्रवृत्ति वक्र हो जाती है, वह पलिकुञ्चन/माया है।

प्रतिकुच्यते अन्यथा प्रतिसेवितमन्यथा कथ्यते यया सा प्रतिकुंचना। (व्यभा १ टी प ५०)

जिसके द्वारा प्रतिकुंचित किया जाता है/छिपाया जाता है, वह प्रतिकुंचना/माया है।

१०१३ पलिमंथु (परिमन्थु)

पगरिसेण संजमो मंथिज्जति जेण सो पलिमंथो। (निचू २ पृ २३७)

परि—सर्वतो मथ्नन्ति—विलोडयन्ति परिमन्थवः। (बृटी पृ १६६७)

जो सब ओर से (संयम को) मथ डालता है, वह परिमन्थु/व्याघात है।

१०१४. पलीण (प्रलीन)

पइ पइ लीणा उ होंति तु पलीणा।
मोहादी वा पलयं जेसि गया ते पलीणा तु ॥[1]

(जीतभा ६६५)

जो पद पद पर लीन हैं, वे प्रलीन हैं।

जिनके क्रोध आदि (कषाय) प्रलय को प्राप्त हो गए हैं, वे प्रलीन हैं।

१०१५. पलंब (प्रलम्ब)

प्रलम्बते इति प्रलम्बः। (राटी पृ १०८)

जो लटकता है, वह प्रलम्ब है।

१०१६. पलंब (प्रलंब)

प्रकर्षेण वृद्धि याति वृक्षोऽस्मादिति प्रलम्बम्। (व्यभा २ टी प २)

जिसके द्वारा वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होता है, वह प्रलंब/मूल है।

१०१७. पल्लवगाहि (पल्लवग्राहिन्)

अपरापरशास्त्रतरूणां पल्लवान्—तन्मध्यगतालापक-श्लोक-गाथा-रूपान् सूत्रार्थलवान् स्वरुच्या ग्रहीतु शीलमस्येति पल्लवग्राही।

(बृटी पृ २३५)

जिसका पल्लव/थोडा थोड़ा या बीच-बीच से ग्रहण करने का स्वभाव है, वह पल्लवग्राही/अपूर्णज्ञाता है।

१०१८. पल्ली (पल्ली)

पाल्यन्तेऽनया दुष्कृतविधायिनो जना इति पल्ली।

(उशाटी प ६०५)

---

१. **प्रकर्षेण लीना लयं विनाशं गताः क्रोधादय येषामिति प्रलीनाः।**

(व्यभा १० टी प ६०)

जो पापकारी प्रवृत्ति करने वाले लोगों का पालन/संरक्षण करती है, वह पल्ली/छोटा गांव है ।

१०१९. पल्हायणिज्जा (प्रह्लादनीया)

प्रह्लादयतीति प्रह्लादनीया । (प्रज्ञाटी प २६६)

जो प्रह्लाद/आनन्द उत्पन्न करती है, वह प्रह्लादनीया है ।

१०२०. पवंचा (प्रपञ्चा)

प्रपञ्चयते—व्यक्तीकरोति प्रपञ्चयति वा विस्तारयति खेलकासादि या सा प्रपञ्चा ।

जो श्लेष्म, खांसी आदि रोगों को प्रपञ्चित/विस्तृत और व्यक्त करती है, वह प्रपंचा (जीवन के सातवें दशक की अवस्था) है ।

प्रपञ्चयति वा—स्रंसयति आरोग्यादिति प्रपञ्चा ।
(स्थाटी प ४६७)

जो आरोग्य से दूर करती है, वह प्रपञ्चा है ।

१०२१. पवत्ति (प्रवर्तिन्)

तवसंजमजोगेसु जो जोगो तत्थ तं पवत्तेइ ।
असहुं च नियत्तेइ गणतत्तिल्लो पवत्तीओ ।।

यथोचितं प्रशस्तयोगेषु साधून् प्रवर्तयतीति प्रवर्तकः ।
(प्रज्ञाटी प २४)

जो साधुओं को प्रशस्त योगों में प्रवृत्त करता है, वह प्रवर्तक है ।

१०२२. पवण (पवन)

पवतीति पवणो । (अनुद्वा ३२०)

पवते पुनातीति वा पवनः । (पिटी प ५)

जो तेज चलता है, वह पवन है ।

जो पवित्र करता है, वह पवन/वायु है ।

१०२३. पवयण (प्रवचन)

अहवा पगयपसत्थ, पहाणवयणं व पवयणं ।
अहव पवत्तयतीई, नाणाई पवयणं तेणं ।। (जीतभा २)

जो प्रशस्त और प्रधान वचन है, वह प्रवचन है ।

जो ज्ञान आदि का प्रवर्तन करता है, वह प्रवचन है ।

प्रकर्षेण वक्ति तत्त्वानीति प्रवचनं । (आक्चू १ पृ ३६)

जो प्रकृष्टरूप से जीव आदि तत्त्वों का प्रतिपादन करता है, वह प्रवचन है ।

१०२४. पवयणनिण्हव (प्रवचननिह्नव)

प्रवचनं—जिनागमं निह्नुवते—अपलपन्त्यन्यथा तदेकदेशस्याभ्युपगमात्ते प्रवचननिह्नवकाः । (औटी पृ २०२)

जो जिनप्रवचन का निह्नवन/अन्यथा अपलपन करते हैं, वे प्रवचननिह्नव हैं ।

१०२५. पवह (प्रवह)

प्रवहति—प्रवर्त्तते अस्मादिति प्रवहः । (भटी पृ १११५)

जहा से प्रादुर्भाव होता है, वह प्रवह/उद्गम स्थल है ।

१०२६. पवा (प्रपा)

पिबिस्संति पेहियादि सा पवा । (आचू पृ ३१२)

जहा पथिक पानी पीते हैं, वह प्रपा/प्याऊ है ।

१०२७. पव्वइय (प्रव्रजित)

पव्वइए इति प्रगतो णिहातो संसारातो वा । (दअचू पृ ३६)

जो घर या संसार से निकल जाता है, वह प्रव्रजित है ।

वधादीयो पावादो व्रजितो पव्वयितो । (दअचू पृ २३४)

जो प्राणातिपात आदि पापों से व्रजित/दूर है, वह प्रव्रजित है ।

१०२८. पव्वज्जा (प्रव्रज्या)

पव्वयणं पव्वज्जा पावाओ सुद्धचरणजोगेसु ।

(स्थाटी प १२३)

पाप से हटकर शुद्ध चरणयोगों मे प्रव्रजन/गमन करना प्रव्रज्या है ।

१०२९. पव्वय (पर्वत)

पर्वतीति[1] पर्वतः ।[2] (उचू पृ १८५)

जो पत्थरो से परिपूर्ण होता है, वह पर्वत है ।

१०३०. पसत्थु (प्रशास्तृ)

प्रशासति—शिक्षयन्ति ये ते प्रशास्तारः । (स्थाटी प ४६३)

जो प्रशासन/शिक्षण देते हैं, वे प्रशास्ता/धर्मोपदेशक हैं ।

१०३१. पसप्पग (प्रसर्पक)

प्रकर्षेण सर्पन्ति—गच्छन्ति भोगार्थं देशान्तुदेशम् ।

(स्थाटी प २५५)

जो अर्थार्जन के लिए एक देशसे दूसरे देश मे निरंतर प्रसर्पण/गमन करते है, वे प्रसर्पक हैं ।

१०३२. पसु (पशु)

पश्यते तर्मिति पशुः । (उचू पृ १०१)

जिसे बाधा जाता है, वह पशु है ।

पश्यतीति[3] पशु.[4] । (उचू पृ १५१)

जो समान रूप से देखता है, वह पशु है ।

---

१. पर्व्यते पूर्यते शिलाभि. पर्वतः । (पर्व-पूर्तौ)

२. 'पर्वत' का अन्य निरुक्त—

पर्वाणि सन्त्यत्र वा पर्वतः । (अचि पृ २२८)

जहा पर्व/भाग होते है, वह पर्वत है ।

३. **सर्वमविशेषेण पश्यति, दृश-कु पशादेशः ।** (आप्टे पृ ६६६)

४. पशु का अन्य निरुक्त—

स्पशति बाधते पशुः । (अचि पृ २७३)

जो बाधा पहुंचाता है, वह पशु है ।

१०३३. पहाण (प्रहान)

प्रहीयत इति पहाणं । (उचू पृ ६८)

प्रकृष्ट रूप से क्षीण होना प्रहान है ।

१०३४. पहिय (पथिक)

पथि गच्छन्तीति पथिकाः । (ज्ञाटी प १५६)

जो पथ पर चलते है, वे पथिक हैं ।

१०३५. पाई (पात्री)

पतंति तस्यामिति पात्री । (सूचू २ पृ ३६३)

जिसमे (पदार्थ) गिरते हैं, वह पात्री है ।

१०३६. पाउक्करण (प्रादुष्करण)

प्रादुः—प्रकटत्वेन देयस्य वस्तुनः करणं प्रादुष्करणम् । (प्रसाटी प १३६)

साधु को देने के लिए अप्रकाशित वस्तु को प्रकाशित करना प्रादुष्करण/ भिक्षा का एक दोष है ।

१०३७. पाओवगमन (पादपोपगमन)

पादपो—वृक्षः, तस्येव छिन्नपतितस्योपगमनम्—अत्यन्तनिश्चेष्ट-तयाऽवस्थानं यस्मिंस्तत्पादपोपगमनम् । (स्थाटी प ८६)

छिन्न पादप/वृक्ष की तरह उपगमन/अवस्थान करना पादपोपगमन है ।

१०३८. पागसासण (पाकशासन)

पागे बलवगे अरी जो सासेति सो पागसासणो । (दश्रुचू प ६४)

जो पाक नामक बलवान् शत्रु को शासित करता है, वह पाकशासन/इन्द्र है ।

१०३९. पागार (प्राकार)

प्रकुर्वन्तीति प्राकाराः। (उचू पृ १८२)

प्रकर्षेण मर्यादया च कुर्वन्ति प्राकाराः। (उशाटी प ३११)

जो विशालरूप मे तथा सीमा मे बनाए जाते हैं, वे प्राकार/परकोटे हैं।

१०४०. पाठ (पाठ)

पठ्यते एतदिति पाठः। (आवनिदी प ४४)

जो पढ़ा जाता है, वह पाठ है।

१०४१. पाडिपंथिय (प्रातिपथिक)

पन्थानं प्रति योऽन्यः पन्थाः स प्रतिपथः प्रतिपन्था वा, तेन गच्छतीति प्रातिपथिकः। (सूचू १ पृ ८१)

जो प्रतिपथ/अपमार्ग से जाता है, वह प्रातिपथिक है।

१०४२. पाण (प्राण)

आणमइ-पाणमइ तम्हा पाणे। (भ २/१५)

जो आन-प्राण/उच्छ्वास-निःश्वास लेता है, वह प्राण/जीव है।

१०४३. पाण (प्राण)

प्रकर्षेणानन्तीति—श्वसन्तीति प्राणाः। (उशाटी प ३७०)

जो अपेक्षाकृत तेज श्वसन क्रिया करते हैं, वे प्राण (द्वीन्द्रिय आदि) हैं।

१०४४. पाण (पान)

पाणाणुग्गहे पाणं। (आवनि १५८८)

जो प्राणो का उपग्रह/पोषण करता है, वह पान है।

पीयते इति पानम्। (आटी प २६४)

जो पीया जाता है, वह पान है।

१०४५. पाणि (प्राणिन्)

दुःखेनाभिभूतास्त्रस्यन्ति—उद्विजन्ति प्राणा इति प्राणिनः ।
(आटी प ७१)

दुःख से जिनके प्राण काप उठते हैं, वे प्राणी हैं ।

१०४६. पाणिपेज्जा (प्राणिपेया)

तडत्थेहिं हत्थेहिं पेज्जा पाणिपेज्जा । (दअचू पृ १७४)

वह तालाब या नदी, जिसके तट पर बैठ कर प्राणी पाणि/हाथ से पानी पी लेते है, वह पाणिपेज्जा या प्राणिपेया नदी है ।

१०४७. पायच्छित्त (प्रायश्चित्त)

पावं छिंदति जम्हा, पायच्छित्तं त्ति भण्णते तेणं ।
(आवनि १५०८)

जो पाप का छेदन करता है, वह प्रायश्चित्त है ।

१०४८. पायरास (प्रातराश)

पावे आसणं पातरासणं । (आचू पृ ७७)

जिसको प्रात खाया जाता है, वह प्रातराश है ।

१०४९. पायव (पादप)

पादेहिं पिबंति पालिज्जंति वा पायवा ।[1] (दअचू पृ ७)

जो पाद/मूलद्वारा जलग्रहण करते हैं, वे पादप है ।

जिनका पालन/पोषण पाद/जडो से होता है, वे पादप है ।

१०५०. पारंगम (पारङ्गम)

पारः—तटः परकूलं तद्गच्छन्तीति पारङ्गमाः । (आटी प १२३)

जो पार/तट पर पहुच जाते हैं, वे पारगम हैं ।

१०५१. पारंचिअ (पाराञ्चिक)

पारं—तीरं तपसा अपराधस्याञ्चति—गच्छति ततो दीक्ष्यते यः स

---

१. (क) पा पाणे धातुः रक्खणे वा, पाया—मूला पिज्जंति तेसु तेसु कारणेसु । (दअचू पृ ७)

(ख) पादैर्मूलैः पिबति पादपः । (अचि पृ २४८)

पाराञ्ची स एव पाराञ्चिकः । (स्थाटी प १५७)

जो तपः प्रायश्चित्त के द्वारा अपराधों का पार/विशोधन कर पुनः दीक्षित होता है, वह पाराञ्चिक है ।

१०५२. पारंचिय (पाराञ्चित)

यस्मिन् प्रतिसेविते लिङ्गक्षेत्रकालतपसां पारमञ्चति तत् पाराञ्चितम् ।

जिसका प्रतिसेवन करने पर लिङ्ग, क्षेत्र, काल, तप आदि का पार/अंत हो जाता है, वह पाराञ्चित/अन्तिम प्रायश्चित्त है ।

पारं—अन्तं प्रायश्चित्तानां तत उत्कृष्टतरप्रायश्चित्ताभावात् ।

(प्रसाटी प २८१)

जो प्रायश्चित्तो मे अन्तिम/उत्कृष्ट प्रायश्चित्त है, वह पाराञ्चित है ।

१०५३. पारय (पारग)

पारं गच्छतीति पारगो । (आचू पृ २६६)

जो पार पा लेता है, वह पारग है ।

१०५४. पारविउ (पारविद्)

पारं—तीरं पर्यन्तगमनं तद्वेत्तीति पारविद् । (सूटी २ प ४१)

जो पार पाना जानते हैं, वे पारविद् हैं ।

१०५५. पारिणामिया (पारिणामिकी)

परि—समन्तान्नमनं परिणामः (सुदीर्घकालपूर्वापरार्थावलोकनादिजन्य आत्मधर्मः) स कारणं यस्याः सा पारिणामिकी ।

(भटी पृ १०५३)

जो परिणाम/सुदीर्घ अतीत की ज्ञानसंपदा से उत्पन्न होती है, वह पारिणामिकी (बुद्धि) है ।

१०५६. पारिहारिक (पारिहारिक)

परिहरणं परिहारः तपोविशेषस्तेन चरन्तीति पारिहारिकाः ।

(प्रसाटी प १६१)

जो परिहार तप का आचरण करते हैं, वे पारिहारिक (मुनि) हैं।

१०५७. पाली (पाली)

पालयतीति उवस्सयं तेण होति सा पाली। (बृभा ३७०६)

जो उपाश्रय/प्रवासस्थल का पालन/रक्षण करती है, वह पाली/स्थविरा है।

१०५८. पाव (पाप)

पासयति पातयति वा पापम्।[1] (उचू पृ १५२)

पांसयति—गुण्डयत्यात्मानं पातयति चात्मन आनन्दरसं शोषयति क्षपयतीति पापम्।[1] (स्थाटी प १६)

जो आत्मा को बाधता है, वह पाप है।

जो नीचे गिराता है, वह पाप है।

जो आत्मा के आनन्दरस का क्षय करता है, वह पाप है।

१०५९ पावग (प्रापक)

सुराणं पावयतीति पावकः[2]**।** (दअचू पृ १५०)

जो पावक/हव्य को देवताओं तक पहुंचाती है, वह प्रापक/अग्नि है।

१०६०. पावग (पावक)

पाप एव पापकस्तं प्रभूतसत्त्वापकारित्वेनाशुभम्। (दटी प २०१)

जो अनेक प्राणियों की घातक है, वह पापक/अग्नि है।

---

१. 'पाप' का अन्य निरुक्त—

पाति रक्षति अस्मादात्मानमिति पापम्। (शब्द ३ पृ ११६)

आत्मा को जिससे बचाया जाता है, वह पाप है।

२. 'पावक' का अन्य निरुक्त—

पुनाति पावकः। (अचि पृ २४४)

जो पवित्र करता है, वह पावक/अग्नि है।

१०६१. पावपरिक्खेवि (पापपरिक्षेपिन्)

पापैः कथञ्चित् समित्यादिषु स्खलितलक्षणैः परिक्षिपति—तिरस्कुरुत इत्येवंशीलः पापपरिक्षेपी । (उशाटी प ३४६)

जो पाप/स्खलना करने वालों का परिक्षेप/तिरस्कार करता है, वह पापपरिक्षेपी (अविनीतशिष्य) है ।

१०६२. पावयण (प्रावचन)

प्रवचनं वेत्ति प्रावचनः । (आचू पृ ३७३)

जो प्रवचन/श्रुत को जानता है, वह प्रावचन/बहुश्रुत है ।

१०६३. पावासि (प्रवासिन्)

प्रवसतीत्येवंशीलः प्रवासी । (व्यभा ७ टी प ६६)

जो प्रवास करता है, वह प्रवासी है ।

१०६४. पास (पाश)

पाश्यतेऽनेनेति पाशः ।[1] (उचू पृ १५०)

जो बांधता है, वह पाश है ।

पारवश्यहेतुतया पाशाः । (उशाटी प ५०५)

जो परवशता/परतन्त्रता का हेतु है, वह पाश/बंधन है ।

१०६५. पासंडत्थ (पाषण्डस्थ)

पाषण्डं – व्रतं तत्र तिष्ठन्तीति पाषण्डस्थाः । (अनुद्वाहाटी प २३)

जो पाषंड/व्रत मे उपस्थित हैं, वे पाषण्डस्थ हैं ।

१०६६. पासंडि (पाषण्डिन्)

अट्ठविधकम्मपासातो डीणो पासंडी । (दअचू पृ २३४)

पाशाड्डीनः पाषण्डी । (दटी प २६२)

जो अष्टविध कर्मपाश से दूर है, वह पाषण्डी/मुनि है ।

---

१. (क) पश्यते बध्यतेऽनेन पाशः ।

(ख) 'पाश' का अन्य निरुक्त—

पाल्यतेऽनेन वा पाशः । (अचि पृ २०५)

जिससे रक्षा की जाती है, वह पाश है ।

१०६७. पासत्थ (पार्श्वस्थ)

पार्श्वे—बहिर्ज्ञानादीनां देशतः सर्वतो वा तिष्ठतीति पार्श्वस्थः ।
(स्थाटी प ४६१)

जो ज्ञान आदि से पार्श्व/बाहर रहता है, वह पार्श्वस्थ है ।

१०६८. पासत्थ (पाशस्थ)

मिथ्यात्वादयो बन्धहेतवः पाशाः पाशेषु तिष्ठतीति पाशस्थः ।
(आवहाटी २ पृ १८)

जो मिथ्यात्व आदि के पाश मे बधा हुआ है, वह पाशस्थ/पार्श्वस्थ है ।

१०६९. पासत्थ (प्रास्वस्थ)

प्रकर्षेणासमन्तात् ज्ञानादिषु निरुद्यमतयास्वस्थः प्रास्वस्थः ।
(व्यभा ३ टी प १११)

जो सपूर्ण रूप से ज्ञान आदि के विषय मे अस्वस्थ है, वह प्रास्वस्थ/पार्श्वस्थ है ।

१०७०. पासवण (प्रश्रवण)

पसवइत्ति पासवण ।[1] (आनि ३२१)

पाद्यं सवती जम्हा, तम्हा तू होति पासवण । (जीतभा ९८७)

जो प्रस्रवित होता है, वह प्रस्रवण/मूत्र है ।

१०७१ पासवण (प्रश्रवण)

प्रश्रवति—क्षरतीति प्रश्रवणः । (भटी प १४२)

जो प्रश्रवित होता है/बहता है, वह प्रश्रवण/प्रस्यन्दन/झरना है ।

१०७२. पासाय (प्रासाद)

पसीयंति जम्मि जणस्स मणो णयणाणि सो पासाओ ।
(दअचू पृ १७१)

जिसमे व्यक्ति के नयन और मन प्रसन्न होते हैं, वह प्रासाद है ।

---

१ **प्रकर्षेण श्रवतीति प्रश्रवणम्—एकिका ।** (आटी प ४०९)

१०७३. पासिम (दृष्टिमत्)

पस्सतीति पासिमं । (आचू पृ १२५)

जो देखता है, वह पश्यक/द्रष्टा है ।

१०७४. पासिय (पाशिक)

पाशेन—बन्धनविशेषेण चरन्तीति पाशिकाः । (प्रटी प ३७)

जो पाश/जाल आदि के द्वारा जीवन यापन करते हैं, वे पाशिक हैं ।

१०७५. पाहुडा (प्राभृता)

प्र इति प्रकर्षेण आ इति—साधुदानलक्षणमर्यादया भृता-निर्वर्तिता यका भिक्षा सा प्राभृता । (प्रसाटी प १३६)

जो भिक्षा खासतौर पर साधु को देने के लिए बनाई जाती है, वह प्राभृता है ।

१०७६. पाहुणिज्ज (प्राहवनीय)

प्रकर्षेण आहवनीयं पाहुणिज्जं । (औटी पृ १०)

जहां लोग प्रचुर मात्रा में भेंट चढ़ाते हैं, वह प्राहवनीय/चैत्य है ।

१०७७. पिउ (पितृ)

पाति बिभर्ति वा पुत्रमिति पिता । (उचू पृ १५०)

जो पुत्र/सन्तान का रक्षण/पोषण करता है, वह पिता है ।

१०७८. पिंडोलग (दे)

पिंडेसु दिज्जमाणेसु उल्लंतीति पिंडोलगा ।

(आचू पृ ३२३)

जो पिण्ड/भिक्षा से निर्वाह करता है, वह पिंडोलग/भिक्षाजीवी है ।

१०७९. पिंडोलय (पिण्डावलग)

पिण्ड्यते तत्तद्गृहेभ्य आदाय संघात्यत इति पिण्डः । तमवलगति—सेवते पिण्डावलगः । (उशाटी प २५०)

जो भोजन घर-घर से इकट्ठा किया जाता है, वह पिण्ड है।

जो पिण्ड का अवलगन/सेवन करता है, वह पिण्डावलग है।

१०८०. पिट्ठ (पृष्ठ)

स्पृशंति तां पृश्यते वाऽसाविति पृष्ठिः।[1] (उचू पृ २०६)

जिसे तैल आदि से सींचा जाता है, वह पृष्ठ/पीठ है।

१०८१. पिट्ठिमंसित (पृष्ठमासिक)

पिट्ठीमंसं खायतीति पिट्ठिमंसितो। (दश्रुचू प ४०)

जो पीठ पीछे/परोक्ष मे निंदा करता है, वह पृष्ठमांसिक/चुगलखोर है।

१०८२. पियवाइ (प्रियवादिन्)

प्रियमेव वदतीत्येवंशील: प्रियवादी। (उशाटी प ३४७)

जो प्रिय ही बोलता है, वह प्रियवादी है।

१०८३. पिसुण (पिशुन)

पीतिसुण्णो पिसुणो। (निभा ६२१२)

पोतिसुण्णं करोतित्ति पिसुणो। (दजिचू पृ ३१६)

जो प्रीति से शून्य करता है, वह पिशुन/चुगलखोर है।

१०८४. पीढसप्पि (पीठसर्पिन्)

पीठाभ्यां परिसर्पतीति पीठसप्पी। (सूचू १ पृ ६६)

जो पीठ के सहारे चलता है, वह पीठसर्पी/पंगु है।

१०८५. पुक्खलसंवट्टग (पुष्कलसंवर्त्तक)

पुष्कलं—सर्वअशुभानुभावरूपं भरतभूरौक्ष्यदाहादिकं प्रशस्तस्वोदकेन संवर्त्तयति—नाशयतीति पुष्कलसंवर्त्तक:।

(जटी प १७३)

जो पृथ्वी के पुष्कल/सम्पूर्ण दोषो का अपने प्रशस्त जल से संवर्त्तन/नाश करता है, वह पुष्कलसंवर्त्तक (मेघ) है।

---

१. (क) **पृष्यते सिच्यते इति पृष्ठम्।** (शब्द ३ पृ २३१)

(ख) **स्पृश्**—to sprinkle (आप्टे पृ १७२८)

१०८६. पुग्गल (पुद्गल)

पूरणगलणधम्मत्तो पुग्गलो ।[1] (अनुद्वाचू पृ २२)

द्रव्याद् गलन्ति—वियुज्यन्ते किञ्चित्तु द्रव्यं स्वसंयोगतः पूरयन्ति —पुष्टं कुर्वन्ति पुद्गलाः । (प्रसाटी प २८६)

जो द्रव्य से गलित/वियुक्त होते हैं, और अपने संयोग से द्रव्य को पुष्ट करते हैं, वे पुद्गल हैं ।

१०८७. पुढवी (पृथिवी)

प्रथते पृथति वा तस्यां पृथिवी ।[2] (उचू पृ १८९)

जो प्रथित/विस्तृत है, वह पृथ्वी है ।

जिस पर सब फैले हुए हैं, वह पृथ्वी है ।

१०८८. पुण्ण (पुण्य)

पुणाति—सोधयतीति पुण्णं । (दअचू पृ २६१)

जो पवित्र/विशुद्ध करता है, वह पुण्य है ।

१०८९. पुण्णमासी (पौर्णमासी)

पूर्णो माः चन्द्रमाः अस्यामिति पौर्णमासी[3] । (जीटी प ३०५)

जिस रात्री मे मा/चाद पूर्ण हो, वह पौर्णमासी/पूर्णिमा है ।

१०९०. पुत्त (पुत्र)

पुनाति पितरं पाति वा पितृमर्यादामिति पुत्रः[4] । (स्थाटी प ४९३)

---

१. पुत् वर्द्धनशील: गलो ह्रासधर्मोऽस्ति पुद्गल: । (शब्द ३ पृ १७०)

२. पृथुत्वात् पृथ्वी । (अचि पृ २०७)

३. 'पौर्णमासी' का अन्य निरुक्त—
पूर्णमास इयमिति पौर्णमासी । (अचि पृ ३३)
जो महीने को पूर्ण करती है, वह पौर्णमासी है ।

४. 'पुत्र' का अन्य निरुक्त—
पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रः । (अचि पृ १२४)
जो पुत् नामक नरक से रक्षा करता है, वह पुत्र है ।

जो माता-पिता को पवित्र करता है, वह पुत्र है।

जो पितृमर्यादा/कुलमर्यादा का पालन/रक्षण करता है, वह पुत्र है।

१०६१. पुप्फ (पुष्प)

पुष्पन्ति—विकसन्तीति पुष्पाणि। (बृटी पृ ६३)

जो पुष्पित/विकसित होते हैं, वे पुष्प हैं।

१०६२. पुर (पुर)

पूर्यंत इति पुरम्। (उचू पृ २२२)

जो जनाकीर्ण है, वह पुर है।

१०६३. पुरंदर (पुरन्दर)

असुरादीणं पुराणि दारइत्ति पुरंदरो। (दश्रुचू पृ ६४)

जो असुर आदि के पुरो/नगरो का विदारण करता है, वह पुरदर/इन्द्र है।

१०६४. पुरक्कार (पुरस्कार)

पुरस्करोति—प्राधान्येनाङ्गीकुरुत इति पुरस्कारः। (उशाटी प ५१६)

जो पुर/प्रधानरूप से ग्रहण किया जाता है, वह पुरस्कार है।

१०६५. पुरिस (पुरुष)

पुन्नो सुहदुक्खाणं पुरिसो।

जो सुख-दु ख से पूर्ण है, वह पुरुष है।

---

१. **पुरि शरीरे शेते पुरुषः।** (अचि पृ ३०६)

२. 'पुरुष' के अन्य निरुक्त—

पृणाति पुमर्थानिति पुरुषः। (अचि पृ ७९)

जो पुमर्थ/पुरुषार्थ चतुष्टयी को पुष्ट करता है, वह पुरुष है।

पुरि उच्चे ठाणे सेति पव्वत्तीति पुरिसो (विटी १ पृ १६)

जो महान् स्थानों में प्रवर्तित होता है, वह पुरुष है।

पुरि' सयणा वा पुरिसो'। (आचू पृ १५)

जो पुर/शरीर मे निवास करता है, वह पुरुष है।

पिबति प्रीणाति चात्मानमिति पुरुषः। (उचू पृ १४७)

जो आत्मा का उपभोग करता है, उसे तृप्त करता है, वह पुरुष है।

१०९६. पुरिसविजय (पुरुषविचय)

पुरुषा विचीयन्ते—मृग्यन्ते विज्ञानद्वारेणान्वेष्यन्ते येन स पुरुषविचयः। (सूटी २ प ५९)

जिस विज्ञान से पुरुष का विश्लेषण किया जाता है, वह पुरुषविचय है।

१०९७. पुरिसादाणिय (पुरुषादानीय)

पुरुषाणां मध्ये आदीयत इत्यादानीयः। (स्थाटी प ४१२)

जो पुरुषो मे आदानीय/उपादेय है, वह पुरुषादानीय है।

१०९८. पुव्व (पूर्व)

पूरयतीति पूर्वः। (उचू पृ १५१)

पिपर्तीति पूर्वः। (नटि पृ १२८)

जो पूर्ण करता है, वह पूर्व है।

पूर्यते प्राप्यते पाल्यते वाऽनेन कार्यमिति पूर्वम्। (नटी पृ ४५)

जिससे कार्य पूर्ण/व्याप्त/रक्षित होता है, वह पूर्व है।

१०९९. पुव्वगत (पूर्वगत)

सर्वश्रुतात्पूर्वं क्रियन्त इति पूर्वाणि—उत्पादपूर्वादीनि चतुर्दश तेषु गतः—अभ्यन्तरीभूतः पूर्वगतः। (स्थाटी प ४७०)

जो सम्पूर्ण श्रुत मे प्रथम है, वह पूर्वश्रुत है और उसमे समागत तत्त्व पूर्वगत है।

११००. पुव्वधर (पूर्वधर)

पूर्वाणि धारयन्तीति पूर्वधराः। (विभामहेटी पृ ३२३)

जो पूर्व/अतुल ज्ञानराशि को धारण करते हैं, वे पूर्वधर हैं।

११०१. पूयणा (पूतना)

पातयन्ति धर्मात् पासयन्ति वा चारित्रमिति पूतनाः ।
(सूचू १ पृ ६६)

जो धर्म से नीचे गिराती हैं, वे पूतना/विकृतियां हैं ।
जो चारित्र को जकड़ लेती हैं, वे पूतना हैं ।

११०२. पूयाहिज्ज (पूजाहार्य)

पूजया ह्रियते—आवर्ज्यते इति पूजाहार्यः । (पिटी प १३१)

जो पूजा से गृहीत होता है, वह पूजाहार्य है ।

११०३. पूरी (पूरी)

पूर्यते—स्तोकैरपि तन्तुभिः पूर्णीभवतीति पूरिका ।
(बृटी पृ १०५५)

जो थोड़े तन्तुओं से भी पूर्ण हो जाती है, वह पूरिका (मोटे शण से बना हुआ पट) है ।

११०४. पेज्ज (प्रेज्य)

प्रकर्षेण वा इज्या—पूजास्येति प्रेज्यम् । (औटी पृ १८१)

जो अत्यन्त पूजनीय है, वह प्रेज्य/प्रेय है ।

११०५. पेस (प्रेष्य)

पुनः पुनः प्रेष्यन्ते इति प्रेष्याः । (सूचू १ पृ १३५)

जिन्हें बार-बार भेजा जाता है, वे प्रेष्य/नौकर हैं ।

११०६. पेसल (पेशल)

पीतिं उप्पाएतीति पेसलो । (आचू पृ २४१)

प्रियं करोतीति पेशलः[1] । (उचू पृ १७७)

जो प्रीति उत्पन्न करता है, वह पेशल/सुन्दर है ।

---

१. पिशति पेशलम् । (अचि पृ ३२३)
जो सुसज्जित है, वह पेशल/सुन्दर है । (पिश्—Decorate आप्टे पृ १०२३)

११०७. पोग्गल (पुद्गल)

पूरणाद्गलनाच्च शरीरादीनां पुद्गलः । (भटी पृ १४३२)

जिसके शरीर आदि बनते और बिखरते रहते हैं, वह पुद्गल/जीव है ।

११०८. पोत (पोत)

पततीति पोतः ।[1] (सूचू १ पृ २८८)

जो उड़ान भरता है, वह पोत/पक्षिशावक है ।

११०९. पोयय (पोतज)

पोतमिव सूयते पोतजा । (दअचू पृ ७७)

जो पोत/शिशु रूप में उत्पन्न होते हैं, वे पोतज हैं ।

१११०. पोसग (पोषक)

पुष्यन्तेऽनेनेति पोषकम् । (सूचू १ पृ १०४)

जिसके द्वारा स्त्री पुष्ट होती है, वह पोष/योनि है ।

११११. पोसह (पौषध)

पोषं—धर्मपुष्टिं धत्त इति पौषधः । (उशाटी प ३१५)

जो धर्म को पोष/पुष्टि देता है, वह पौषध है ।

१११२. फलिह (परिघ)

परिहननात् परिघः ।[2] (स्थाटी प २१०)

जो रुकावट पैदा करता है, वह परिघ/अवरोधक है ।

जो चारों ओर से परिहनन/चोट करता है, वह परिघ/कांटेदार दंड है ।

१११३. फास (स्पर्श)

फुसंतीति फासा । (आचू पृ २३६)

जो स्पृष्ट होते हैं, वे स्पर्श हैं ।

---

१. पत्—to fly (आप्टे पृ ६५५)

२. परितो हन्तीति (परिघः)—सर्वतः कण्टकितो लोहदण्डः । (आप्टे पृ ६७४)

१११४. फासुय (प्रासुक)

प्रगता असवः—असुमन्तः प्राणिनो यस्मात् तत्प्रासुकम् ।
(स्थाटी प १०३)

जो असु/जीव रहित है, वह प्रासुक/अचित्त है ।

१११५. बंध (बन्ध)

बज्झति जेण सो बंधो । (आचू पृ १७१)

जिससे प्राणी बंधता है, वह बंध/बंधन है ।

१११६. बंधु (बन्धु)

बध्नातीति बंधु ।[1] (उचू पृ ११२)

जो (स्नेह से) बांधता है, वह बंधु है ।

१११७. बंभ (ब्रह्मन्)

बृंहति बृंहितो वा अनेनेति ब्रह्म । (उचू पृ २०७)

जो संयम का बृंहण/पोषण करता है, वह ब्रह्म/ब्रह्मचर्य है ।

१११८. बंभचेर (ब्रह्मचर्य)

ब्रह्म चर्यते—अनुष्ठीयते यस्मिन् तद् ब्रह्मचर्यम् ।[2]
(सूटी २ प ११६)

जहां ब्रह्म/सत्य, संयम का आचरण किया जाता है, वह ब्रह्मचर्य/निर्ग्रन्थ प्रवचन है ।

१११९. बंभण (ब्राह्मण)

अट्ठारसविधं बंभं धारयतीति बंभणो[3] । (दअचू पृ २३४)

जो अठारह प्रकार से ब्रह्मचर्य को धारण करता है, वह ब्राह्मण/मुनि है ।

---

१. बध्नाति स्नेहं बन्धुः । (अचि पृ १२७)

२. ब्रह्म—सत्य तपोभूतदयेन्द्रियनिरोधलक्षणं तच्चर्यते—अनुष्ठीयते यस्मिन् तन्मौनीन्द्रप्रवचनं ब्रह्मचर्यमित्युच्यते । (सूटी २ प ११६)

३. ब्रह्म वेदं शुद्धं चैतन्यं वा वेत्त्यधीते वा ब्राह्मणः । (आप्टे पृ ११७७)

ब्रह्म अणतीति ब्राह्मणः । (सूचू २ पृ ३३५)

जो ब्रह्म/आत्मा में रमण करता है, वह ब्राह्मण/मुनि है।

११२०. बंभण (ब्राह्मण)

ब्रह्मणोऽपत्यानि ब्राह्मणाः ।

जो ब्रह्म की सन्तान हैं, वे ब्राह्मण हैं।

बृहन्मनस्त्वाद्वा ब्राह्मणाः । (सूचू २ पृ ४४१)

जिनका मन विशाल/उदार है, वे ब्राह्मण हैं।

११२१. बंभयारि (ब्रह्मचारिन्)

ब्रह्मेण ब्रह्म वा चर्यं चरतीति ब्रह्मचारी । (उचू पृ २०७)

जो ब्रह्म/संयम का आचरण करता है, वह ब्रह्मचारी है।

११२२. बंभव (ब्रह्मवित्)

ब्रह्म—अशेषमलकलङ्कविकलं योगिशर्म वेत्तीति ब्रह्मवित् ।
(आटी प १५३)

जो ब्रह्म/शाश्वत सुख को जानता है, वह ब्रह्मवित् है।

११२३. बहिद्ध (दे)

धर्माद् बहिर्भवतीति बहिद्धं । (सूचू १ पृ १७७)

जो धर्म से बहिर्भूत है, वह बहिद्ध/मैथुन है।

११२४. बहुरय (बहुरत)

बहुषु समयेषु रता—आसक्ता बहुभिरेव समयैः कार्यं निष्पद्यते नैकसमयेनेत्येवंविधवादिनो बहुरताः । (औटी पृ २०१)

जो बहुत समयों/क्षणों में कार्य की निष्पत्ति मानते हैं, वे बहुरतवादी हैं।[1]

११२५. बाल (बाल)

द्वाभ्यां कलितो बालः,[2] कार्याकार्यानभिज्ञो वा बालः ।
(दअचू प ३)

---

१. जमाली (ई० पू० छठी) का बहुचर्चित सिद्धान्त ।

२. द्वाभ्यां—बुभुक्षया तृषा चाऽऽकलितो बालः । (दचू पृ ६४)

जो भूख और प्यास से व्याकुल होता है, वह बाल है ।

जो कार्य और अकार्य से अनभिज्ञ है, वह बाल है ।

११२६. बाहुप्पमद्दि (बाहुप्रमर्दिन्)

बाहुभ्यां प्रमृद्नातीति बाहुप्रमर्दी । (औटी पृ १९४)

जो भुजाओं से पछाड़ देता है, वह बाहुप्रमर्दी/भुजबली है ।

११२७. बिंहणीय (बृंहणीय)

बृंहतीति बृंहणीयः । (जीटी प ३५२)

जो बृंहण करते हैं, वे बृंहणीय हैं ।

११२८. बीहणग (भयानक)

भापयति—भयवन्तं करोतीति भयानकः । (प्रटी प ५)

जो भयभीत करता है, वह भापनक/प्राणवध है ।

११२९. बुद्ध (बुद्ध)

बुज्झतीति बुद्धो ।[1] (दअचू पृ २३४)

जो तत्त्व को जानता है, वह बुद्ध/मुनि है ।

११३०. बुद्धि (बुद्धि)

बुद्ध्यतेऽनयेति बुद्धिः । (आवमटी प ५१६)

जिससे बोध होता है, वह बुद्धि है ।

११३१. बुद्धिल (बुद्धिल)

बुद्धिं तामुपजीवति इति बुद्धिलः । (व्यभा १० टी प ९८)

जो बुद्धि का उपजीवी है, वह बुद्धिल है ।

११३२. बोहग (बोधक)

बोधयन्तीति बोधकाः । (जीटी प २५६)

जो बोध देते हैं, वे बोधक हैं ।

---

१. 'बुद्ध' का अन्य निरुक्त—

(क) बुध्यते तत्त्वानि बुद्धः । (अचि पृ ५७)

(ख) बधाति बुद्ध्यादीन् गुणानिति बुद्धः । (सूचू १ पृ २०४)

जो बुद्धि आदि गुणों को धारण करता है, वह बुद्ध/मुनि है ।

२११३. भंजग (भञ्जक)

भज्जंतीति भंजका । (दजचू पृ ७)

जिनका भंजन/छेदन किया जाता है, वे भञ्जक/वृक्ष हैं ।

२११४. भंत (भ्रान्त)

अहवा भंतोऽवेओ[1] जं मिच्छत्ताइबंधहेऊओ । (विभा ३४४८)

जो मिथ्यात्व आदि से भ्रांत/रहित है, वह भ्रांत/भगवान् है ।

२११५. भंत (भगवत्)

अहवेसरियाइ भगो[2] विज्जइ से तेण भगवंतो[3] ।

(विभा ३४४८)

जो भग/ऐश्वर्य से युक्त है, वह भगवान् है ।

---

१. भ्रम—अनवस्थाने ।

२. इस्सरियरूवसिरिजसधम्मपयत्ता मया भगाभिक्खा ।
ते तेसिमसामण्णा संति जओ तेण भगवंते ।। (विभा १०४८)

'भग' शब्द के छह अर्थ हैं—ऐश्वर्य, रूप, लक्ष्मी, यश, धर्म और पुरुषार्थ । जो इनसे युक्त है, वह भगवान् है ।

३. 'भगवान्' के अन्य निरुक्त—

भगवा ति वचनं सेट्ठं भगवा ति वचनमुत्तमं ।
गुरुगारवयुत्तो सो भगवा तेन वुच्चति । (वि ७/३६)

जो शील आदि गुणों में सर्वश्रेष्ठ है, वह भगवान् है ।

तीसु भवेसु तण्हासङ्खातं गमनं अनेन वन्तं । भव सद्दतो भ-कारं गमन सद्दतो ग-कारं वन्तसद्दतो व-कारञ्च दीघं कत्वा आदाय भगवा ति वुच्चति । (वि ७/४४)

भावितसीलो भावितचित्तो भावितपञ्ञो ति भगवा ।

(विटी पृ ४५२)

जिसके शील, चित्त और प्रज्ञा भावित हैं, वह भगवान् है ।

११३६. भंत (भवान्त)

नेरयाइभवस्स व अन्तो जं तेण सो भवंतो त्ति ।

(विभा ३४४६)

जो भव/संसार का अंत करता है, वह भवांत/भगवान् है ।

११३७. भंत (भयान्त)

अहवा भयस्स अंतो होइ भयंतो भयं तासो ।[1]

(विभा ३४४६)

जो भय/त्रास का अंत करता है, वह भयान्त/भगवान् है ।

११३८. भंत (भदन्त)

भदि कल्याणसुहत्थोधाऊ तस्स य भदंतसद्दोऽयं ।

स भदंतो ·   ·· · ···· ··॥   (विभा ३४३६)

जो भद/कल्याण और सुख से युक्त है, वह भदन्त/भगवान् है ।

११३९ भंत (भजन्त)

अहवा भय सेवाए तस्स भयंतोत्ति सेवए जम्हा ।

सिवगइणो सिवमग्गं सेव्वो य जओ तवस्सीणं ॥[2]

(विभा ३४४६)

जो सिद्ध भगवान् तथा सिद्धि के मार्ग की उपासना करता है, वह भजन्त है ।

---

१. एत्थ भयंताइणं पागयवागरणलक्खणगईए ।
संभवओ पत्तेयं द-य-भ-व-गाराइलोवाओ ॥
हस्सेकारंतादेसओ य भंते त्ति सव्वसामण्णं । (विभा ३४५५,५६)

२. (क) भजते—सेवते सिद्धान् सिद्धिमार्गं वा अथवा भज्यते—सेव्यते शिवार्थिभिरिति भजन्तः । (स्थाटी प ११८)

(ख) भजि विभजि पविभजि धम्मरतनं ति भगवा ।

(विटी पृ ४५२)

जो धर्म-रत्न का कथन करता है, वह भगवान् है ।

जो मोक्षार्थी व्यक्तियों के द्वारा उपास्य है, वह भजन्त/ भगवान् है ।

११४०. भंत (भान्त/भ्राजन्त)

अहवा भा भाओ वा दित्तीए तस्स होइ भंतो त्ति ।
भावंतो भायंतो सो नाणतवोगुणजुईए ॥[1] (विभा ३४४७)

जो ज्ञान आदि से दीप्त होता है, वह भान्त या भ्राजन्त/ भगवान् है ।

११४१. भंयण (भञ्जन)

भंजते भज्यते वाऽसाविति असंयतैर्भञ्जनम् । (सूचू १ पृ १७७)

जो भग/विनाश करता है, वह भञ्जन/लोभ है ।

जो आसक्त करता है, वह भञ्जन/लोभ है ।

११४२. भग (भग)

भज्यत इति भगः ।[2] (स्थाटी प ३३)

जिसका विभाग किया जाता है, वह भग/ऐश्वर्य है ।

जिसको भोगा जाता है, वह भग/भाग्य है ।

११४३. भगव (भग्नवत्)

भग्नवन्तः कषायादीनिति भगवन्तः । (जीटी प ४)

जिन्होंने कषाय को भग्न/क्षीण कर दिया है, वे भग्नवान्/ भगवान हैं ।

---

१. भाति—दीप्यते भ्राजते वा दीप्यत एव ज्ञानतपोगुणदीप्त्येति भान्तो भ्राजन्तो वेति । (स्थाटी प ११८)

२. (क) इस्सरियरूवसिरिजसधम्मपयत्ता मया भगाभिक्खा ।
(विभा १०४८)

(ख) ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥ (आप्टे पृ ११८०)

११४४. भज्जा (भार्या)

भरणीया भार्या ।[1] (सूचू १ पृ ८४)

जो भरणयोग्य है, वह भार्या है ।

बिभर्ति भयते वासौ भार्या । (उचू पृ १५०)

जो (परिवार का) पोषण करती है, वह भार्या है ।

जो सेवा/परिचर्या करती है, वह भार्या है ।

११४५. भणग (भणक)

कालियपुव्वसुत्तत्थं भणतीति भणको । (नंचू पृ ८)

जो कालिकश्रुत और पूर्वश्रुत के सूत्र व अर्थ की वाचना देते हैं, वे भणक/वाचनाचार्य हैं ।

११४६. भत्तु (भर्तृ)

बिभर्तीति भर्ता । (दश्रुचू प ७५)

जो (पत्नी का) भरण/पोषण करता है, वह भर्ता है ।

११४७. भद्द (भद्र)

भाति भास्यतेऽनेनेति भद्रः । (उचू पृ ४१)

जो सुशोभित होता है, वह भद्र/सुशील है ।

११४८. भद्द (भद्र)

भायते भाति वा भद्रम् । (नंचू पृ २)

जो दीप्त होता है, वह भद्र/कल्याण है ।

११४९. भद्दा (भद्रा)

भदन्ते—कल्याणीकरोति देहिनमिति भद्रा । (प्रटी प १०३)

जो प्राणियों का कल्याण करती है, वह भद्रा/अहिंसा है ।

११५१. भद्दा (भद्रा)

भयते भाति वा भद्रा । (उचू पृ २०७)

जो सेवा करती है, वह भद्रा (स्त्री) है ।

जिससे घर सुशोभित होता है, वह भद्रा (स्त्री) है ।

---

१. भ्रियते भार्या । (अचि पृ ११७)

११५१. भमर (भ्रमर)

भ्रमति च रौति च भ्रमरः । (अनुद्वा ३६८)

जो भ्रमण करता है और शब्द करता है, वह भ्रमर है ।

११५२. भयंतु (भयत्रातृ)

भयात्त्रायंत इति भयंतारो । (सूचू २ पृ ३२६)

जो भय से त्राण देता है, वह भयत्रातार/मुनि है ।

११५३. भव (भव्य)

भवति—परमपदयोग्यतामासादयतीति भव्यः ।

(नकटी ४ पृ १२७)

जो परमपद/मोक्ष-गमन की योग्यता को प्राप्त करता है, वह भव्य है ।

११५४. भव (भव)

भवतीति भवः । (उचू पृ १८८)

जो होता है, वह भव/जन्म है ।

भवन्ति प्राणिनोऽस्मिन्निति भवः । (प्रज्ञाटी प ३२८)

जिसमें जीव उत्पन्न होते हैं, वह भव/जन्म है ।

११५५. भवंत (भवान्त)

भवस्संतो भवंतो य । (व्यभा २/१२)

भवमंतयति भवस्यान्तं करोतीति भवान्तः ।

(व्यभा २ टी प ६)

जो भव/नरक आदि गति का अन्त करता है, वह भवान्त/भिक्षु है ।

११५६. भववेयणिज्ज (भववेदनीय)

भवेन—जन्मना वेद्यते—अनुभूयते यत्तद् भववेदनीयम् ।

(स्थाटी प २६४)

जिसका भव/वर्तमान जन्म में वेदन किया जाता है, वह भववेदनीय (कर्म) है ।

११५७. भवसिद्धिय (भवसिद्धिक)

भविष्यति भवा—भाविनी सा सिद्धिः—निर्वृतिर्येषां ते भवसिद्धिकाः। (स्थाटी प २८)

जिन्हे भव/भविष्य में सिद्धि प्राप्त होगी, वे भवसिद्धिक हैं।

११५८. भवोवग्गह (भवोपग्रह)

भवे—मनुष्यभवे उप—समीपेन गृह्यते—अवष्टभ्यते यैस्तानि भवोपग्रहाणि। (प्रज्ञाटी प ६०३)

जिनके कारण (केवली को) मनुष्यभव मे रहना पड़ता है, वे भवोपग्राही/अघाति कर्म हैं।

११५९. भागहार (भागहार)

भागं हरतीति भागहारः। (व्यभा २ टी प ८)

जो भाग का हरण करता है, वह भागहार (भाग/गणित) है।

११६०. भायण (भाजन)

भाजनात् विश्वस्याश्रयणात् भाजनम्। (भटी पृ १४३१)

जो विश्व के लिए भाजन/आश्रय का कार्य करता है, वह भाजन/आकाश है।

११६१. भार (भार)

बिभर्ति ध्रियते वाऽसौ भारः।[1] (सूचू १ पृ १३३)

जो भारी करता है, वह भार है।

जो ढोया जाता है, वह भार है।

११६२. भारही (भारती)

अत्थभारं धरेतीति भारती।[2] (दअचू पृ १५९)

---

१. भार—गुरुत्वपरिमाणे, तद्वति द्रव्ये। (वा पृ ४६५२)

२. 'भारती' के अन्य निरुक्त—

भरतानां नटानामियं देवता भारती। भरतानां ऋत्विजां स्तुतिलक्षणा तैरवतारित्वात् इति याज्ञिकाः। (अचि पृ ५९)

जो अर्थ के भार का वहन करती है, वह भारती/वाणी है ।

११६३. भाव (भाव)

भवन्ति भविष्यन्ति भूतवन्तश्चेति भावाः ।

जो हैं, होंगे और थे, वे भाव/पदार्थ हैं ।

भवन्त्येतेषु स्वगता उत्पादविगमध्रौव्याख्यापरिणामविशेषा इति भावाः । (दटी प ७०)

जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्ययुक्त हैं, वे भाव हैं ।

११६४. भावणा (भावना)

भावयतीति भावना ।[1] (आचू पृ ३७७)

जो भावित/संस्कारित करती है, वह भावना है ।

भावयंति तां भाव्यते वाऽनयेति भावना । (सूचू १ पृ ३८)

जिसकी भावना की जाती है, वह भावना है ।

११६५. भावन्नु (भावज्ञ)

भावः चित्ताभिप्रायः वक्तुः श्रोतुर्वा तं जानातीति भावज्ञः ।

(आटी प १३२)

जो भाव/अभिप्राय को जानता है, वह भावज्ञ है ।

११६६. भावियप्प (भावितात्मन्)

भावितो—वासित आत्मा ज्ञानदर्शनचारित्रैस्तपोविशेषैश्च येन स भावितात्मा । (प्रज्ञाटी प ३०३)

जिसकी आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप से भावित/संस्कारित है, वह भावितात्मा है ।

११६७. भावुक (भाव्य)

भाव्यन्ते प्रतियोगिना स्वगुणैरात्मभावमापद्यन्त इति भाव्यानि ।

(आवहाटी २ पृ २१)

---

१. भाव्यते—वास्यते व्रतं यकाभिस्ता भावनाः । (प्रटी प ११०)

प्रतियोगी के द्वारा जो अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं, वे भाव्य/संस्कारित हैं।

११६८. भासा (भाषा)

अत्थं भंजयतीति भासा। (दअचू पृ १६४)

जो अर्थ का भाषण/अभिव्यञ्जन करती है, वह भाषा है।

भाष्यते इति भाषा। (आवहाटी १ पृ ६)

जो बोली जाती है, वह भाषा है।

११६९. भासुरा (भास्वरा)

पभासतीति भासुरा। (दजिचू पृ ३२४)

जो भा/प्रकाश से दीप्त है, वह भास्वरा/सिद्धगति है।

११७०. भिक्खाग (भिक्षाक)

भिक्षां भक्षन्तीति भिक्षाकाः। (आचू पृ ३४४)

जो भिक्षाभोजी हैं, वे भिक्षाक हैं।

११७१. भिक्खु (भिक्षु)

भेत्ताऽऽगमोवउत्तो दुविह तवो भेअणं च भेत्तव्वं।

अट्ठविहं कम्मखुहं तेण निरुत्तं स भिक्खुत्ति ॥[1] (दनि ३४२)

भिदंतो यावि खुहं भिक्खू……॥ (व्यभा २१२)

जो तपस्या से क्षुद्/कर्मों का भि/भेदन करता है, वह भिक्षु है।

जं भिक्खमत्तवित्ती तेण व भिक्खू …। (दनि ३४४)

भिक्खणसीलो भिक्खू,……। (निभा ६२७५)

जो शुद्ध भिक्षा से जीवन-यापन करता है, वह भिक्षु है।

भिक्षाभोगी वा भिक्खू। (निचू ४ पृ २७१)

जो भिक्षाभोजी है, वह भिक्षु है।

---

१. भेदकः साधुः,—तपो भेदनं वर्तते, भेत्तव्यं कर्म, तच्च क्षुदादिदुःख-हेतुत्वात् क्षुद् शब्दवाच्यं,, यः शास्त्रनीत्या तपसा कर्म भिनत्ति स भिक्षुः। (दटी प २६१)

१ १७२. भीम (भीम)

बिभेति जनोऽस्मादिति भीमः। (बृटी पृ २५६)

जिससे व्यक्ति डरता है, वह भीम/भयावह है।

१ १७३. भुजपरिसप्प (भुजपरिसर्प)

भुजाभ्यां—बाहुभ्यां परिसर्पन्तीति भुजपरिसर्पाः।

(स्थाटी प १०८)

जो भुजाओ के सहारे परिसर्पण/गति करते हैं, वे भुजपरि-सर्प हैं।

१ १७४. भुयंग (भुजङ्ग)

भुजाभ्यां गच्छतीति भुजङ्गः। (उचू पृ २२९)

जो भुजाओं से चलता है, वह भुजङ्ग/सर्प है।

१ १७५. भू (भ्रू)

भ्रमतीति भ्रूः।[1] (अनुद्वामटी प १०३)

जो भावो के अनुसार इधर-उधर घूमती हैं, वे भ्रू/भौंहें हैं।

१ १७६. भूतोवघाइणी (भूतोपघातिनी)

भूयाणि उवहम्मंति जाए भासाए भासियाए सा भूतोवघाइणी।

(दजिचू पृ २५५)

जिस भाषा के द्वारा भूत/प्राणियो का उपघात होता है, वह भूतोपघातिनी (भाषा) है।

१ १७७. भूय (भूत)

भूते भवति भविस्सति य तम्हा भूए। (भ २/१५)

जिसका अस्तित्व था, है और होगा, वह भूत/प्राणी है।

१ १७८. भेउर (भिदुर)

वाहीए विवागेणं वा भिज्जतीति भेउरं। (आचू पृ ७४)

व्याधि अथवा (कर्म) विपाक से जिसका भेदन होता है, वह भिदुर/शरीर है।

---

१. भ्राम्यति नेत्रोपरि इति भ्रूः। (शब्द ३ पृ ५६०)

११७९. भेव (भेद)

कर्माणि भिनत्तीति भेदः। (सूचू १ पृ २०४)

जो कर्मों का भेदन करता है, वह भेद/संयम है।

११८०. भेरव (भैरव)

भयं करोतीति भैरवं। (आचू पृ २८४)

जो भय पैदा करता है, वह भैरव/भयकर है।

११८१. भोअ (भोग)

भुज्यते—सकृदुपभुज्यत इति भोगः। (उशाटी प ६४४)[1]

जिनका एक बार आसेवन किया जाता है, वे भोग हैं।

११८२. भोइया (भोजिका)

भोजयति[2] भर्त्तारमिति भोजिका। (बृटी पृ २७७)

जो भर्त्ता/स्वामी की सेवा करती है, वह भोजिका/भार्या है।

११८३ भोमिज्ज (भौमेयक)

भूमौ—पृथिव्यां भवाः भौमेयकाः। (उशाटी प ७०१)

जो भू/पृथ्वी मे वास करते हैं, वे भौमेयक/भवनवासी हैं।

११८४. भोयण (भोजन)

भुज्यत इति भोयणं। (आचू पृ २६६)

जो खाया जाता है, वह भोजन है।

११८५. मइ (मति)

मन्नति जेण सा मती। (आचू पृ ३८१)

मन्यते—इन्द्रियमनोद्वारेण नियतं वस्तु परिच्छिद्यतेऽनयेति मतिः। (प्रसाटी प ३६०)

जो इन्द्रिय और मन के द्वारा वस्तु का ज्ञान करता है, वह मति (ज्ञान) है।

---

१. सति भुज्जइत्ति भोगो सो पुण आहारपुप्फमाईओ। (उशाटी प ६४५)

२. भुज्—पालनाभ्यवहारयोः।

११८६. मंगल (मङ्गल)

मंगिज्जएऽधिगम्मइ जेण हियं तेण मंगलं होइ ।

जिसके द्वारा मंगल/हित साधा जाता है, वह मंगल है ।

अहवा मंगो धम्मो तं लाइ तयं समादत्ते ॥ (विभा २२)

जो मंग/धर्म को प्राप्त कराता है, वह मंगल है ।

मं गालयइ भवाओ मंगलमिहेवमाइ नेरुत्ता । (विभा २४)

जो मा/पाप को गाल देता है, वह मंगल है ।

मङ्ग्यते अनेन मण्ड्यते वाऽनेनेति मङ्गलम् ।

जो मंडित करता है, वह मंगल है ।

जिसके द्वारा विघ्न का अभाव निश्चित किया जाता है, वह मंगल है ।

मा गलो भूदिति मङ्गलम् ।

जो गल/विघ्न को नष्ट कर देता है, वह मंगल है ।

मा गलो वा भूदिति मङ्गलम् । (सूचू १ पृ २)

जो गाल/नाश न करे, वह मंगल है ।

माद्यन्ति हृष्यन्ति अनेनेति मङ्गलम् ।

जो प्रसन्न करता है, वह मंगल है ।

मह्यन्ते पूज्यन्तेऽनेनेति मङ्गलम् । (विभामहेटी १ पृ २)

जिसके द्वारा पूजा जाता है, वह मंगल है ।

मथ्नाति—विनाशयति शास्त्रपारगमनविघ्नान् गमयति—प्रापयति शास्त्रस्थैर्यं लालयति च श्लेषयति तदेव शिष्यप्रशिष्यपरम्परायामिति मङ्गलम् । (उशाटी प २०)

जो शास्त्रपारगामिता के विघ्नों का विनाश करता है, सूत्रार्थ को स्थिर करता है और उसे शिष्य-प्रशिष्य की परंपरा से जोड़ता है, वह मंगल है ।

११८७. मंथु (मन्थु)

मथ्यत इति मंथू । (उचू पृ १७५)

जो मथित/चूर्णित किया जाता है, वह मंथु/सत्तु आदि का चूर्ण है ।

११८८. मंदा (मन्दा)

मंदमस्यां बाल्यं यौवनं विज्ञानं श्रोत्रादिविज्ञानं वा तेण मंदा ।
(दश्रुचू प ४१६)

श्रोत्र आदि विज्ञान जिसमे मंद होता है, वह मंदा अवस्था है ।

मन्दः—विशिष्टबलबुद्धिकार्योपदर्शनासमर्थो भोगानुभूतावेव च समर्थो यस्यामवस्थायां सा मन्दा । (स्थाटी प ४१६)

जो विशिष्ट कार्य करने मे असमर्थ और भोग भोगने में समर्थ है, वह मन्दा अवस्था है ।

११८९. मक्कार (माकार)

'मा' इत्यस्य निषेधार्थस्य करणं—अभिधानं माकारः ।
(स्थाटी प ३८२)

मा/निषेध का उच्चारण करना माकार है ।

११९०. मग्ग (मार्ग)

मृज्यते—शोध्यते अनेनात्मेति मार्गः ।[1] (आवहाटी १ पृ ५८)

जो आत्मा का मार्जन/शोधन करता है, वह मार्ग/मोक्षमार्ग है ।

११९१ मग्गणा (मार्गणा)

मृग्यतेऽनेन परिणामकरणेनेति मार्गणम् । (नटी पृ ५०)

जिस परिणामविशेष से पदार्थ के अन्वय-व्यतिरेक धर्मों का मार्गण/पर्यालोचन होता है, वह मार्गणा/ईहा/मतिज्ञान का एक भेद है ।

---

१. मार्ग के अन्य निरुक्त—

मार्ग्यते संस्क्रियते पादेन मृग्यते गमनायान्विष्यते इति वा मार्गः ।
(शब्द २ पृ ७०८)

जो पैरो से क्षुण्ण होता है, वह मार्ग है ।

जिसे गमन के लिए खोजा जाता है, वह मार्ग है ।

११९२. मघव (मघवन्)

मघा॑त्ति महामेहा, ते जस्स वसे संति से मघवं ।[1] (दशचू प ६४)

मघ/महामेघ जिसके वशवर्ती हैं, वह मघवा/इन्द्र है ।

११९३. मच्चिय (मर्त्य)

मरंतीति मच्चिया । (आचू पृ ८३)

जो मरणधर्मा हैं, वे मर्त्य हैं ।

११९४. मज्झत्थ (मध्यस्थ)

मज्झेहिं चिट्ठतीति मज्झत्थो । (आचू पृ २८९)

जो मध्य मे रहता है, वह मध्यस्थ है ।

११९५ मट्टिया (मृत्तिका)

मर्द्यंते[2] तामिति मृत्तिका । (उचू पृ १३४)

जिसे रौंदा जाता है, वह मृत्तिका है ।

११९६. मणपज्जवणाण (मनःपर्यायज्ञान)

पज्जवणं पज्जयणं पज्जाओ वा मणम्मि मणसो वा ।

तस्स व पज्जायाविन्नाणं मणपज्जवं नाणं । (विभा ८३)

मनांसि पर्येति परिच्छिनत्ति मनःपर्यायम् । (नंदी पृ ११२)

जो मन/मनोभावों को जानता है, वह मनःपर्यायज्ञान है ।

११९७. मणभक्खि (मनोभक्षिन्)

मनसा भक्षयन्तीत्येवंशीला मनोभक्षिणः । (प्रज्ञाटी प ५१०)

जो मन/चिन्तन से भोजन का आहरण करते हैं, वे मनोभक्षी/देव हैं ।

---

१. 'मघवा' शब्द के अन्य निरुक्त—

मघः सौख्यमस्याऽस्ति मघवान् । मघो देवसभा सोऽस्यास्तीति वा ।

(अचि पृ ४०)

जिसके (अपार) मघ/सुखसंपदा है, वह मघवा है ।

जिसके मघ/देवसभा है, वह मघवा है ।

२. मृदश्—क्षोदे ।

११९८. मणसमाहारणा (मन:समाधारणा)

मनसः समिति—सम्यग् आङिति-मर्यादयाऽऽगमाभिहितभावाभि-व्याप्त्याऽवधारणा—व्यवस्थापनं मनःसमाधारणा।

(उशाटी प ५९२)

मन का सम्यक् रूप से अवधारण/व्यवस्थापन करना मन:समाधारणा है।

११९९. मणाम (मनआप)

मनःअमन्ति—गच्छन्ति यास्ताः मनआपाः। (स्थाटी प ४४४)

मनांसि आप्नुवंति आत्मवशतां नयन्तीति मनआपाः।

(राटी पृ ८५)

जो मन को आकृष्ट कर लेता है, वह मनआप/मनोज्ञ है।

१२००. मणाम (दे)

मन्नइ मणसा मणामं तं। (प्रसा १४०)

जो मन को इष्ट है, वह मणाम/मनोज्ञ है।

१२०१. मणि (मणि)

मद्यते मन्यते वा तमलङ्कारमिति मणिः।[1] (उचू पृ १५१)

जो अलकार को विशिष्ट और सुशोभित करती है, वह मणि है।

१२०२. मणुअ (मनुष्य)

मनसि शेते मनुष्यः।[2] (उचू पृ ९६)

जो मन/चिंतन मे खोया रहता है, वह मनुष्य है।

---

१. 'मणि' शब्द का अन्य निरुक्त—

मणति महार्घतां मणिः। (अचि पृ २३५)

जो मूल्यवान् होती है, वह मणि है। (**मण् शब्दे**)

२. 'मनुष्य' का अन्य निरुक्त—

मनोरपत्यं मनुष्यः।

जो मनु की सन्तान है, वह मनुष्य है।

१२०३. मणुण्ण (मनोज्ञ)

मणइट्ठं तु मणुण्णं । (प्रसा १४०)

मनसा—अन्तःसंवेदनेन शोभनतया ज्ञायत इति मनोज्ञः ।
(विपाटी प ९१)

जो मनको सुन्दर प्रतीत होता है, वह मनोज्ञ है ।

१२०४. मणुय (मनुज)

मनोर्जाता मनुजाः । (स्थाटी प २०)

जो मनु से उत्पन्न हुआ है, वह मनुज/मनुष्य है ।

१२०५. मणोरम (मनोरम)

मनांसि अत्र मनस्विनां रमंत इति मणोरमे ।
(सूचू १ पृ १४६)

जहा मनस्वी व्यक्तियो का मन आनन्द का अनुभव करता है, वह मनोरम है ।

मनः चित्तं रमते—धृतिमाप्नोति यस्मिन् तन्मनोरमम् ।
(उशाटी प ३०६)

जहां मन/चित्त रमण करता है, वह मनोरम है ।

१२०६. मणोहर (मनोहर)

मणं हरन्तीति मणोहरणाइं । (आचू पृ ३७८)

जो मन का हरण करते हैं, वे मनोहर हैं ।

१२०७. मत्ता (मात्रा)

मीयतीति मत्ता । (आचू पृ ७२)

जो माप करती है, वह मात्रा है ।

१२०८. मत्तंगय (मत्ताङ्गद)

मत्तं—मदस्तस्याङ्गं—कारणं मदिरा तद्ददतीति मत्ताङ्गदाः ।
(स्थाटी प ४९४)

जो मत्त होने की हेतुभूत मदिरा प्रदान करते हैं, वे मत्ताङ्गद (वृक्ष) हैं ।

१२०९. मयंगा (मृतगङ्गा)

मृतेव मृता विवक्षितभूदेशे तत्कालाप्रवाहिणी सा चासौ गङ्गा च मृतगङ्गा । (उशाटी प ३५४)

जो विवक्षित भूभाग मे मृत/अप्रवाहित है, वह गंगा मृतगगा है ।

१२१० मयण (मदन)

मदयतीति मदनः । (दटी प ८५)

जो मत्त बनाता है, वह मदन/काम है ।

१२११. मरण (मरण)

मरतीति मरणं । (आचू पृ ६७)

म्रियते येन तद् मरणम् । (सूचू १ प ६९)

जिसके द्वारा प्राणी मृत्यु को प्राप्त होता है, वह मरण/मृत्यु है ।

१२१२. मरालि (मरालि)

म्रियत इव शकटादौ योजितो राति च—ददाति लत्तादि लीयते च भुवि पतनेनेति मरालिः । (उशाटी प ४९)

जो बैल गाडी मे जोते जाने पर मृत-सा हो जाता है, लात मारता है, भूमी पर गिर पडता है, वह मरालि/दुष्ट बैल है ।

१२१३. मल (मल)

मृद्नाति[1] तमिति मलम् ।[2] (उचू पृ १३४)

जिसे साफ किया जाता है, वह मल है ।

---

१. मृद्—to remove (आप्टे पृ १२८६)

२. '**मल**' का अन्य निरुक्त—

मलते धारयति कायं मलं, मृज्यते वा । (अचि पृ १४२)

जो शरीर को टिकाये रखते हैं, वे मल/वात-पित्त-कफ हैं ।

१२१४. मल्ल (माल्य)

मालिज्जतीति मल्लं ।[1] (दशजिचू प ९१)

जो वेष्टित करती है, वह माला है ।

जो म्लान होती है, वह माला है ।

१२१५. मसग (मशक)

मारयितुं शक्नुवन्ति मशकाः । (उशाटी प १२१)

जो मार/काट सकते हैं, वे मशक/मच्छर हैं ।

१२१६. महप्प (महात्मन्)

महं अप्पा जेसिं ते महप्पाणो । (दअचू पृ १९३)

जिनकी आत्मा महान् है, वे महात्मा हैं ।

१२१७. महरिह (महार्ह)

महं—उत्सवमर्हतीति महार्हः । (जीटी प २४३)

जो मह/उत्सव के योग्य है, वह महार्ह है ।

१२१८. महाकाय (महाकाय)

महान्—बृहन् प्रशस्तो वा कायो निकायो यस्य स महाकायः ।

(भटी पृ ११६८)

(भवनपति देवो में) जो सबसे महान्/बृहत् और प्रशस्त काय/समूह है, वह महाकाय/असुरकुमार देवगण है ।

१२१९. महाणाग (महानाग)

महापाणं धर्यंति महानागा । (सूचू १ पृ १७१)

जो महाप्राण/महान् बल को धारण करते हैं, वे महानाग/शक्ति-संपन्न हैं ।

---

१. 'माला' के अन्य निरुक्त—

मालैव माल्यं मल्यते धार्यते इति माला, माम्ति पुष्पाण्यस्यां वा माला । (अचि पृ १४६)

जिसे धारण किया जाता है, वह माला है ।

जिसमें पुष्प पिरोए जाते हैं, वह माला है ।

१२२०. महापाण (महापान)

पिबति अर्थपदानि यत्रस्थितस्तत्पानं, महच्च तत्पानं च महापानम् ।[1] (व्यभा ६ टी प ४६)

जिसमे महान् अर्थपदो का पान/ज्ञान किया जाता है, वह महापान (ध्यान साधना) है ।

१२२१. महाभाग (महाभाग)

महन्तं भजतीति महाभाग । (आवचू १ पृ ८६)

जो महान्/मोक्ष का आसेवन करता है, वह महाभाग है ।

१२२२. महामुणि (महामुनि)

महान्तं मुनतीति महामुनिः । (उचू पृ ५९)

जो महान्/मोक्ष को जानता है, वह महामुनि है ।

१२२३. महावीर (महावीर)

महाणो वीरो महावीरो । (दअचू पृ ७३)

महन्तं वीरियं यस्य स भवति महावीरो । (आवचू १ पृ ८६)

जिसका वीर्य/पराक्रम महान् है, वह महावीर है ।

१२२४. महित (महित)

त्रैलोक्यस्स मनोहिता महिता ।

जो तीनो लोको के मन में समाविष्ट हैं, वे महित/अर्हत् है ।

महिमाकरणेन महिता । (नचू पृ ४९)

जिनकी महिमा/स्तुति की जाती है, वे महित/पूजित हैं ।

१२२५. महिस (महिष)

मह्यां शेते महिषः ।[2] (अनुद्वा ३६८)

---

१. **पिबति मिनोति एकार्थौ ।** (व्यभा ६ टी प ४६)

२. **'महिष'** के अन्य निरुक्त—

महति महिषः । (अचि पृ २८६)

जो विशालकाय है, वह महिष है ।

(मह्—Increase आप्टे पृ १२४६)

जो मही/पृथ्वी पर शयन करता है, वह महिष/भैंसा है।

१२२६. महीरुह (महीरुह)

महीए रुहंतीति महीरुहा। (दअचू पृ ७)

जो मही/पृथ्वी पर पैदा होते हैं, वे महीरुह/वृक्ष हैं।

१२२७. महेसि (महर्षि)

इसी—रिसी, महरिसी—परमरिसिणो।[1] (दअचू पृ ५६)

जो महान् ऋषि हैं, वे महर्षि हैं।

१२२८. महेसि (महैषिन्)

महामिति मोक्खो तं एसन्ति महेसिणो। (दअचू पृ ५६)

जो महान्/मोक्ष की एषणा करते हैं, वे महैषी/महर्षि हैं।

महान्—बृहन् शेषस्वर्गाद्यपेक्षया मोक्षस्तमिच्छति—अभिलषतीति महैषी। (उशाटी प ३६६)

जो महान्/मोक्ष को चाहता है, वह महैषी है।

१२२६. माउ (मातृ)

मानयति मन्यते वाऽसौ माता।[2]

जो मानित/पूजित होती है, वह माता है।

(मिमीते) मिनोति वा पुत्रधर्मानिति माता।

(उचू पृ १५०)

जो पुत्र की योग्यताओं का अनुमापन करती है, वह माता है।

मंहति पूजयंति देवानेनेति महिषः। (शब्द ३ पृ ६७७)

देवों के लिए जिसकी बलि दी जाती है, वह महिष है।

१. महान्तश्च ते ऋषयश्च महर्षयः। (दटी प ११६)

२. मान्यते पूज्यते या सा माता। (शब्द ३ पृ ६६१)

१२३०. मांस (मांस)

मन्यते[1] स भक्षयिता येनोपभुक्तेन बलवन्तमात्मानमिति मांसं ।[1]
(उचू पृ १२१)

जिसे खाकर व्यक्ति अपने आपको पुष्ट मानता है, वह मांस है।

१२३१. माण (मान)

मननम्—अवगमनं मन्यते वाऽनेनेति मानः ।[2]
(स्थाटी प १८६)

अपने आपको बड़ा मानना मान है।

१२३२. माण (मान)

मीयते इति मानम् । (आवमटी प ४४६)

जिसके द्वारा मापा जाता है, वह मान/माप है।

१२३३. माणव (मानव)

माणंतित्ति माणवा । (अचू पृ ७२)

जो मनन करते हैं, वे मानव हैं।

मा—निषेधे नवः प्रत्ययो मानवः । (भटी पृ १४३२)

जिसका अस्तित्व नया नहीं है, अनादिकालीन है, वह मानव है।

---

१. **मान्यतेऽनेन मांसम् ।** (सूटी २ प १५१)

. 'मांस' का अन्य निरुक्त—

मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ (अचि पृ १४०)

यहां मैं जिसका मांस खा रहा हूं, परलोक में मां/मेरा मांस स/वह खायेगा—यही मांस का मांसत्व है।

२. 'मान' का अन्य निरुक्त—

मत्समो नास्तीति मननं मानः । (अचि पृ ७४)

मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है, ऐसा मानना मान है।

१२३४. मायन्नु (मात्रज्ञ)

मत्तं जाणाति मायण्णो । (आचू पृ ७९)

जो मात्रा को जानता है, वह मात्रज्ञ है ।

१२३५. माया (माया)

मीयते[1] अनयेति माया ।[2] (स्थाटी प १८६)

जिससे तथ्य का गोपन किया जाता है, वह माया है ।

१२३६. मार (मार)

खणे खणे मारयतीति मारो । (आचू प १०८)

जो क्षण-क्षण घात करता है, वह मार/मृत्यु है ।

१२३७. मास (मास)

मीयते तमिति मासम् ।[3] (उचू पृ १८४)

जिसका मान/माप होता है, वह मास/महीना है ।

१२३८. माहण (माहण)

मा हणह सव्वसत्तेहि भणमाणो अहणमाणो य माहणो भवति ।
(सूचू १ पृ २४६)

जो कहता है—माहण/मत मारो और स्वयं उसका आचरण करता है, वह माहण/ब्राह्मण/श्रमण है ।

---

१. मीयते अपरोक्षवत् प्रदर्श्यतेऽनया माया । (शब्द ३ पृ ७०१)

२. 'माया' का अन्य निरुक्त—
माति अनया माया । (अचि पृ ८८)
जिससे दिखावा किया जाता है, वह माया है ।

३. (क) मामासनान्मासः, अन्यानि मानानि समयावलिकादीनि असतीति मासः, मानानि वा द्रव्यक्षेत्रादीन्यसतीति मासः । (निचू ४ पृ ३८८)
(ख) माति मिमीते वा मासः, मस्यते परिमीयते सावनचान्द्रसूर्यादिभेदेनेति । (अचि पृ ३४)
जिसके द्वारा सावनमास, चन्द्रमास, सूर्यमास आदि मापे जाते हैं, वह मास है ।

१२३९. मिच्छामि दुक्कडं (मिथ्या मे दुष्कृत)

मित्ति मिउमद्दवत्ते छत्ति अ दोसाण छायणे होइ ।
मित्ति य मेराइ ठिओ, दुत्ति दुगुंछामि अप्पाणं ।।
(आवनि १५०५)

कत्ति कडं मे पावं डत्ति य डेवेमि तं उवसमेणं ।
एसो मिच्छादुक्कडपयक्खरत्थो समासेणं ।।
(आवनि १५०६)

मि/मृदुता पूर्वक दोषों का छा/छादन/शोधन करने के लिए मि/मर्यादा/आचारविधि में उपस्थित हो मैं (पापकारी) आत्मा से दु/जुगुप्सा करता हूं और उपशमभाव के द्वारा क/कृतपाप का ड/अतिक्रमण करता हूं ।

१२४०. मित्त (मित्र)

मेज्जंतो[1] मेयंति[2] वा तविति मित्रं । (उचू पृ १४९)

जो स्नेह करता है, वह मित्र है ।

जो व्यक्ति की योग्यताओं का अनुमापन करता है, वह मित्र है ।

१२४१. मिय (मृग)

मृग्यते इति मृगः ।[3] (उचू पृ २१४)

शिकारी द्वारा जिसकी खोज की जाती है, वह मृग है ।
जो तृण आदि का अन्वेषण करता है, वह मृग है ।
जिसका शिकार किया जाता है, वह मृग है ।

म्रियते[4] इति मृगः । (उचू पृ २१८)

जो मारा जाता है, वह मृग है ।

१. मिद्यति स्निह्यति मित्रम् । (अचि पृ १६२)
२. मिनोति मानं करोति इति मित्रम् । (शब्द ३ पृ ७२२)
३. (क) मृग्यते व्याधैर्मृगः । (अचि पृ २८९)
(ख) मृगयते अन्वेषयति तृणादिकं मृगः । (शब्द ३ पृ ७६४)
(ग) मृग्—to hunt (आप्टे पृ १२८४)
४. मृ—to kill (आप्टे पृ १२८४)

१२४२. मियवादि (मितवादिन्)

मितं—परिमिताक्षरं वदितुं शीलमस्येति मितवादी ।

(सूटी पृ १०४४)

जो मित/परिमित बोलता है, वह मितवादी है।

१२४३. मियासण (मिताशन)

मियं असतीति मियासणो । (दजिचू पृ २८४)

जो मित भक्षण करता है, वह मिताशन है ।

१२४४. मुंड (मुण्ड)

मुण्डयति—अपनयतीति मुण्डः । (स्थाटी प ४७५)

जो (विषय और कषाय का) मुण्डन/अपनयन करता है, वह मुण्ड/मुनि है।

१२४५. मुणि (मुनि)

सावज्जेसु मोणवतीति मुणी । (दअचू पृ २३३)

जो सावद्य कार्यों के प्रति मौन है, वह मुनि है।

मुणतीति मुणी । (आचू पृ १८०)

मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिः ।[1] (सूटी २ प ४१)

जो जगत् की त्रैकालिक अवस्थाओं को जानता है, वह मुनि है।

१२४६. मुणि (मुणि)

मुणति—प्रतिजानीते सर्वविरतिमिति मुणिः ।[2]

(उशाटी प ३५७)

जो संयमी जीवन जीने की प्रतिज्ञा करता है, वह मुणि/मुनि है।

---

१. 'मुनि' का अन्य निरुक्त—

मन्यतेऽसौ मुनिः । (अचि पृ १४)

जिसका वचन मान्य होता है, वह मुनि है।

२. मुण्—प्रतिज्ञाने ।

१२४७. मुत्ति (मुक्ति)

मुच्यन्ते सकलकर्मभिः तस्यामिति मुक्तिः। (स्थाटी प ४२२)

जहां जीव सब कर्मों से मुक्त होते हैं, वह मुक्ति है।

१२४८. मुधाजीवि (मुधाजीविन्)

मुधा अमुल्लेण तथा जीवति मुधाजीवी। (दजचू पृ १६०)

जो मुधा/निष्कामवृत्ति से जीता है, वह मुधाजीवी है।

१२४९. मुम्मुही (मुङ्मुखी)

विणओवक्कमंतो मूक इव भाषते मुम्मुही। (दश्रुचू प ३)

जिसमे व्यक्ति मूक की तरह संभाषण करता है, वह मुङ्मुखी/मनुष्य की नौवी अवस्था है।

मोचनं मुक्, मुचं प्रति मुखं—आभिमुख्यं यस्यां सा मुङ्मुखी।[1]
(स्थाटी प ४६७)

जिसमें प्राणी मृत्यु के अभिमुख होता है, वह मुङ्मुखी/मनुष्य की नौवी अवस्था है।

१२५०. मुसल (मुसल)

मुहुर्मुहुर्लसति मुसलं।[2] (अनुद्वा ३६८)

जो बार बार (ऊखल का) स्पर्श करता है, वह मुसल है।

१२५१. मुह (मुख)

खद्यते तत् इति मुखम्। (उचू पृ १३६)

जिससे खाया जाता है, वह मुख है।

---

१. णवमी मुम्मुही नाम जं नरो दसमस्सिओ।
जराघरे विणस्संतो जीवो वसइ अकामओ॥ (दटी प ८)

२. 'मुसल' के अन्य निरुक्त—
मुस्यते खण्ड्यतेऽनेन मुसलः, मुहुः स्वनं लाति वा। (अचि पृ २२४)
जो टुकड़े टुकड़े करता है, वह मुसल है।
जो बार बार शब्द करता है, वह मुसल है।

खन्यते[1] तत् खनति[2] वा तत् मुखम् ।[3] (उचू पृ २१६)

विधाता ने जिसे बनाया है, वह मुख है ।

जो खनन/अवदारण करता है, वह मुख है ।

१२५२. मुहमंगलिय (मुखमङ्गलिक)

मुखमङ्गलानि—चाटुवचनानि ये कुर्वन्ति ते मुखमङ्गलिकाः । (शाटी प ६४)

जो प्रत्यक्ष मे झूठी प्रशंसा करते हैं, वे मुखमंगलिक/चापलूस हैं ।

१२५३. मुहरि (मुखरिन्)

मुहेण अरिमावहतीति मुहरी ।[4] (उचू पृ २७)

जो मुख/वाणी से शत्रु बनाता है, वह मुखरी/वाचाल है ।

जो मुख से अरि/परिहास या कलह का आवहन करता है, वह मुखरी है ।

१२५४. मुहुत्त (मुहूर्त्त)

मीयतेऽनेनेति मुहूर्त्तः ।[5] (सूचू १ पृ ८८)

जिसके द्वारा काल मापा जाता है, वह मुहूर्त्त है ।

---

१. खन्यते विधात्रा मुखम् ।

२. खनति विदारयति अन्नादिकमनेन मुखम् । (शब्द ३ पृ ७३४)

३. 'मुख' का अन्य निरुक्त—
मह्यते मुखम् । (अचि पृ १२६)
जो शरीर की शोभा बढाता है, वह मुख है ।

४. 'मुखर' का अन्य निरुक्त—
मुखं सर्वस्मिन् वक्तव्येऽस्त्यस्य मुखरः । (अचि पृ ८२)
जो अनर्गल प्रलाप करता है, वह मुखर/वाचाल है ।

५. 'मुहूर्त्त' के अन्य निरुक्त—
हूर्च्छति मुहूर्त्तः, मुहुरियर्ति वा । (अचि पृ ३०)
जो ठगता है, वह मुहूर्त्त/काल है । (हूर्च्छ—कौटिल्ये)
जो बीतता है, वह मुहूर्त्त है ।

१२५५. मूढ (मूढ़)

मुह्यते स्म अस्मिन्निति मूढः । (निचू १ पृ १७)

जो मुग्ध/विवेकविकल बनाती है, वह मूढ (दृष्टि) है ।

१२५६. मेखला (मेखला)

मेखस्य माला मेखला ।[1] (अनुद्वा ३६८)

जो मे/गुप्त ख/स्थान की माला है, वह मेखला है ।

१२५७. मेज्झ (मेध्य)

मेध्यानि द्रव्याणि नाम यैर्मेधा उपक्रियते । (व्यभा १० टीप ६५)

जिनसे मेधा उपकृत होती है/बढती है, वे मेध्य/श्रेष्ठ पदार्थ हैं ।

१२५८. मेय (मेद)

मिद्यतेऽनेनेति मेदः ।[2] (उचू पृ १५६)

जिससे स्निग्धता प्राप्त होती है, वह मेद है ।

१२५९. मेहावि (मेधाविन्)

मेहाए धावतीति मेहावी ।[3] (आचू पृ १२४)

जो मेधा से प्रवृत्ति करता है, वह मेधावी है ।

मेरा धावित्ता मेहाविणो । (आचू पृ २२५)

जो मर्यादापूर्वक गति करते है, वे मेधावी है ।

१२६०. मोय (मोक)

मोचयति पापकर्मभ्यः साधुमिति मोका । (व्यभा ६ टीप १५)

जो पापकर्म से मुक्त करती है, वह मोक (प्रतिमा) है ।

---

१. **मेहनस्य खस्य माला वि वसक्वे मेखला ।** (विटी १ पृ ४५६)

२. **मेद्यति स्निह्यतीति मेदः ।** (शब्द ३ पृ ७७६)

३. **धारणाशक्तियुक्ता धीर्मेधा, मेधते सङ्गच्छतेऽस्यां सर्वं, बहुश्रुतं विषयीकरोति इति वा मेधा ।** (शब्द ३ पृ ७८०)

जिसमे सब कुछ समाहित हो जाता है, वह मेधा है ।

जो अनेक विषयो मे प्रवृत्त होती है, वह मेधा है ।

१२६१. मोहणीय (मोहनीय)

मुह्यते येन स मोहः । (उचू पृ ११५)

वैचित्त्यमुत्पादयत्यात्मन इति मोहनीयम् ।[1]

जो चित्त मे विचित्तता/मूढ़ता पैदा करता है, वह मोहनीय (कर्म) है।

मोहयति वैचित्त्यमापादयतीति मोहनीयम् ।

(प्राक १ टी पृ १७)

जो संकल्प-विकल्पों की विचित्रता पैदा करता है, वह मोहनीय (कर्म) है।

१२६२. रइ (रति)

रम्यतेऽनयेति रतिः । (दटी प ७८)

जिसके द्वारा (असयम में) रमण किया जाता है, वह रति (मोहनीय कर्म) है।

१२६३. रइयगभोइ (रचितकभोजिन्)

रचितकं नाम कांस्यपात्रादिषु पटादिषु वा यदशनादिदेयबुद्ध्या वैविक्त्येन स्थापितं यद् भुंक्ते इत्येवंशीलो रचितकभोजी ।

(व्यभा ३ टी प ११९)

जो रचित/पृथक् रूप से स्थापित भोजन का भक्षण करता है, वह रचितकभोजी है।

१२६४. रक्खोवग (रक्षोपग)

रक्षामुपगच्छन्ति तदेकचित्ततया तत्परायणा वर्तन्ते इति रक्षोपगाः ।

(राटी पृ २७०)

जो रक्षा करने मे तत्पर हैं, वे रक्षोपग/अंगरक्षक हैं।

१२६५. रज (रजस्)

जीवस्यानुरञ्जनाद् मालिन्यापादनात् रजः ।

(विभामहेटी २ पृ २३८)

---

१. मद्यपानवद्धिचित्तताजननेति मोहः । (उशाटी प ६४१)

जो जीव को अनुरञ्जित/मलिन करता है, वह रज (कर्म) है।

१२६६. रण्ण (राजन्)

राजनाद्[1]—दीपनाद् राजा।[2] (स्थाटी प १६१)

जो मंत्री आदि से सुशोभित होता है, वह राजा है।

१२६७. रत्ति (रात्रि)

सन्ध्या यतो राजते—शोभते तेन रात्रिः।[3] (बृटी पृ ८५७)

जिससे सन्ध्या शोभित होती है, वह रात्रि है।

१२६८. रय (रजस्)

रंजयतीति रजः। (सूचू १ पृ ५६)

जो रञ्जित/मटमैला कर देती है, वह रज/धूली है।

रीयत इति रजः। (उचू पृ १६१)

जो गति करती है, वह रज/धूली है।

१२६९. रयणप्पभा (रत्नप्रभा)

रत्नानां प्रभा यस्यां रत्नैर्वा प्रभाति—शोभते या सा रत्नप्रभा। (स्थाटी प ५०१)

जो रत्नो से प्रभास्वर है, वह रत्नप्रभा है।

१२७०. रयहरण (रजोहरण)

रजो ह्रियते—अपनीयते येन तद्रजोहरणम्। (स्थाटी प ३२७)

जो रजो का अपहरण/अपनयन करता है, वह रजोहरण (धर्मोपकरण) है।

---

१. राजतेऽमात्यादिभिरिति राजा।

२. 'राजा' का अन्य निरुक्त—

रञ्जयति प्रजामिति वा। (अचि पृ १५४)

जो प्रजा को प्रसन्न रखता है, वह राजा है।

३. 'रात्रि' का अन्य निरुक्त—

राति सुखं रात्रिः। (अचि पृ ३१)

जो सुख प्रदान करती है, वह रात्रि है।

१२७१. रस (रस)

रस्यते—आस्वाद्यते इति रसः। (स्थाटी प २३)

जिसका आस्वाद लिया जाता है, वह रस है।

रस्यन्ते—अन्तरात्मनाऽनुभूयन्त इति रसाः।

(अनुद्वामटी प १२४)

अन्तरात्मा से जिनका अनुभव किया जाता है, वे रस हैं।

१२७२. रसग (रसग)

रसमनुगच्छन्तीति रसगाः। (आटी प २३७)

जो रस में उत्पन्न होते हैं, वे रसज प्राणी हैं।

१२७३. रसहरणी (रसहरणी)

रसो ह्रियते—आदीयते यया सा रसहरणी।

(भटी प ८८)

जिसके द्वारा रस का हरण/ग्रहण किया जाता है, वह रसहरणी/नाभिनाल है।

१२७४. रसायण (रसायन)

रसः अमृतरसस्तस्यायनं—प्राप्तिः रसायनम्।[1]

(विपाटी प ७५)

जिसके द्वारा रस/अमृत की प्राप्ति होती है, वह रसायन/औषधि है।

१२७५. रसेसि (रसैषिन्)

रसं एसन्तीति रसेसिणो। (आचू पृ ३१८)

जो रस की खोज/प्रार्थना करते हैं, वे रसैषी हैं।

१२७६. राग (राग)

रज्जंति तेण तम्मि व........................रागो।[2]

(विभा २९९१)

जिससे प्राणी रञ्जित/आसक्त होता है, वह राग है।

---

१. रसायनविधयः—स्थापनमायुर्मेधाकरं रोगापहरणसमर्थं च तदभिधायकं तन्त्रमपि रसायनम्। (विपाटी प ७५)

२. रज्यन्ते तेन तस्मिन् वा सति क्लिष्टसत्त्वाः प्राणिनः इत्यादिनिरुक्तिः रागः। (विभामहेटी २ पृ २२२)

१२७७. रायदारिय (राजद्वारिक)

राजद्वारमर्हतीति राजद्वारिकम् । (बृटी पृ १६२)

जो राजद्वार के योग्य है, वह राजद्वारिक है।

राजाऽमात्यमहत्तमादिभवनेषु गच्छद्भिर्यत् परिभुज्यते तद् राजद्वारिकम् । (बृटी पृ १६१)

राजद्वार पर जाते समय जिसका उपयोग किया जाता है, वह राजद्वारिक है।

१२७८. रायहाणी (राजधानी)

राजा धीयते—विधीयते अभिषिच्यते यासु ता राजधान्यः ।
(स्थाटी प ४५८)

जिनमें राजा का अभिषेक किया जाता है, वे राजधानियां हैं।

१२७९. रुइल (रुचिल)

रुचिः—दीप्तिस्तां लाति—आददाति रुचिलानि ।

(सूटी २ प ७)

जो रुचि/दीप्ति को धारण करता है, वह रुचिल/सुन्दर है।

१२८०. रुक्ख (रूक्ष)

रुक् पृथिवी तं खातीति रुक्खो ।[1] (निचू २ पृ ३०६)

जो रुक्/पृथ्वी को खाता है, वह रूक्ष/वृक्ष है।

रुत्ति पुहवी खत्ति आगासं तेसु दोसुवि जहा ठिया तेण रुक्खा ।

(दजिचू पृ ११)

जो रु/पृथ्वी और ख/आकाश—दोनों में स्थित हैं, वे रूक्ष/वृक्ष हैं।

१२८१. रुजग (रुजक)

रुत्ति पृथिवी तीय जो (जा) यंतित्ति रुजगा । (दजिचू पृ ११)

---

१. 'रूक्ष' का अन्य निरुक्त—

रूक्षयति रूक्षः । (अचि पृ २४८)

जो सूखकर रूक्ष/ठूठ हो जाता है, वह रूक्ष/वृक्ष है।

जो रु/पृथ्वी से पैदा होते हैं, जीवित रहते हैं, वे रुजक/वृक्ष हैं।

१२८२. रुद्द (रौद्र)

रोदयतीति रुद्रः, तेन कृतं रौद्रम् ।[1] (दअचू पृ १६)

जो अत्यंत दीनता से अश्रुविमोचन करता है, चिन्तन करता है, वह रौद्र ध्यान है।

१२८३. रूव (रूप)

रूप्यते—अवलोक्यत इति रूपम् । (स्थाटी प २३)

जो देखा जाता है, वह रूप है।

१२८४. रोग (रोग)

रुजतीति रोगः । (दअचू पृ १७)

जो रुग्ण बनाता है, वह रोग है।

१२८५. रोयग (रोचक)

सदनुष्ठानं रोचयत्येव केवलं न पुनः कारयतीति रोचकम् ।
(प्रसाटी प २८२)

जो विहित अनुष्ठान मे केवल रुचि/प्रीति करती है, वह राचक (सम्यकत्व) है।

१२८६. रोवग (रोपक)

रुप्पंति रोपणीया वा रोपका । (दअचू पृ ७)

जिनको रोपा जाता है, वे रोपक/पौधे हैं।

१२८७. लउडसाइ (लकुटशायिन्)

लगण्डं—वक्रकाष्ठं तद्वत् शेते यः स लगण्डशायी (लकुटशायी) ।
(औटी पृ ७५)

जो लकुट/वक्रकाष्ठ की भाति शयन करता है, वह लकुट-शायी/कायक्लेश का एक प्रकार है।

---

१. हिंसाद्यतिक्रौर्यानुगतं रौद्रम् । (आवहाटी २ पृ ६३)
संछेदनैर्दहनभञ्जनमारणैश्च, बन्धप्रहारदमनैर्विनिकृन्तनैश्च ।
यो याति रागमुपयाति च नानुकम्पां, ध्यानन्तु रौद्रमिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ (दटी प ३२)

१२८८. लंगलिक (लाङ्गलिक)

लाङ्गलं वा प्रहरणं येषां गले वा लम्बमानं सुवर्णादिमयं तद्येषां ते लाङ्गलिकाः । (ज्ञाटी प ६४)

जिनके लांगल/हल आजीविका का साधन होता है, वे लांगलिक/किसान हैं ।

जिनका आयुध लांगल/हल होता है, वे लांगलिक/बलराम हैं ।

जिनके गले मे स्वर्णमय हलाकृति होती है, वे लांगलिक/ कार्पटिक है ।

१२८९. लंबण (लम्बन)

लम्ब्यन्ते इति लम्बनाः । (ज्ञाटी प १६५)

जो स्थिर रहने में आलंबन बनते हैं, वे लंबन/लंगर हैं ।

१२९०. लक्खण (लक्षण)

लक्खिज्जइत्ति नज्जइ पच्चक्खियरो व जेण जो अत्थो ।
तं तस्स लक्खणं ....॥ (दभा १२)

लक्ष्यते तदन्यव्यवच्छेदेन ज्ञायते येन तल्लक्षणम् ।

(सूर्यटी प २५६)

जिससे वस्तु का पृथक् अस्तित्व जाना जाता है, वह लक्षण है ।

१२९१. लयण (लयन)

कप्पडिया जत्थ लयंति तं लयणं । (अनुद्वाचू पृ ५३)

कार्पटिक जिसमे लीन होते हैं, वह लयन/पाषाणगृह है ।

१२९२. लाढ (लाढ)

येनकेनचित् प्रासुकाहारोपकरणादिगतेन विधिना आत्मानं यापयति पालयतीति लाढः । (सूटी १ प १८९)

जो यद् किञ्चित् सामग्री से विधिपूर्वक जीवनयापन करता है, वह लाढ/संयमी है ।

१२१३. लावु (अलावु)

लवतीति लावुं ।

जो काटा जाता है, वह अलावु है ।

आदानार्थेन वा युक्तं ला आदाने इति लावुं तं अलावुं[1] भण्णति ।

(अनुद्वाचू पृ ४३)

जो जल आदि पदार्थ ला/ग्रहण करता है, वह लावु/अलावु है ।

१२१४. लाला (लाला)

ललतीति लाला । (आचू पृ ८५)

जो टपकती है, वह लाला/लार है ।

जो श्लिष्ट करती है, वह लाला/लार है ।

१२१५. लाह (लाभ)

लभ्यते लाभः । (स्थाटी प २३९)

जो प्राप्त होता है, वह लाभ है ।

१२१६. लिंग (लिङ्ग)

लिङ्ग्यते साधुरनेनेति लिङ्गम् । (आवहाटी २ पृ २३)

जिसके द्वारा साधु पहचाना जाता है, वह लिंग/वेष है ।

१२१७. लिंग (लिङ्ग)

लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गं । (सूचू २ पृ ४३१)

जो लीन/छिपे अर्थ का ज्ञान कराता है, वह लिङ्ग/लक्षण है ।

१२१८. लूस (लूष)

लूषयति कर्ममलमपनयतीति लूषः । (स्थाटी प १७४)

जो कर्ममल को दूर करता है, वह लूष/मुनि है ।

१२१९. लूसग (लूषक)

लूसंतीति लूसगा । (आचू पृ २४२)

जो लूटते हैं, वे लूषक हैं ।

---

१. 'अलावु' का अन्य निरुक्त—

न लम्बते अलावुः । (शब्द १ पृ १२०)

१३००. लूह (रूक्ष)

अंतपतेहि लूहेहि जीवंतीति लूहे । (दअचू पृ २३४)

जो अंतप्रांत भोजन से जीवन यापन करता है, वह रूक्ष/संयमी है ।

१३०१. लूहवित्ति (रूक्षवृत्ति)

लूहं—संजमो तस्स अणुवरोहेण वित्ती जस्स सो लूहवित्ती ।

जो रूक्ष/संयम के द्वारा जीवन यापन करता है, वह रूक्ष-वृत्ति है।

लूहदव्वाणि—चणगनिप्फावकोद्दवादीणि वित्ती जस्स सो लूह-वित्ती । (दश्रुचू प १६१)

जो रूक्ष भोजन से जीवन यापन करता है, वह रूक्षवृत्ति/संयमी है ।

१३०२. लेसा (लेश्या)

लेशयति—श्लेषयतीवात्मनि जननयनानीति लेश्या । (उशाटी प ६५०)

जो दूसरो की आखो को अपनी ओर आकृष्ट करती है, वह लेश्या/दीप्ति है ।

१३०३. लेसा (लेश्या)

श्लेषयन्त्यात्मानमष्टविधेन कर्मणा इति लेश्याः ।[1] (आवहाटी १ पृ १३)

जो आत्मा को अष्टविध कर्म से श्लिष्ट करती है, वह लेश्या/आत्मपरिणाम विशेष है ।

१३०४. लोगेसणा (लोकैषणा)

जं लोगो एसति सा लोगेसणा । (आचू पृ १३५)

जिसकी लोग खोज/प्रार्थना करते हैं, वह लोकैषणा है ।

---

१. (क) **कायाद्यन्यतमयोगवतः कृष्णादिद्रव्यसंबन्धादात्मनः परिणामाः लेश्याः ।** (आवहाटी १ पृ १३)

(ख) **कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्परिणामो य आत्मनः ।**
स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्याशब्दः प्रयुज्यते ॥ (उशाटी प ६५६)

१३०५. लोम (लोम)

लुनाति लीयन्ते वा तेषु यूका इति लोमानि ।

(उशाटी प २५४)

जो उखाड़े जाते हैं, वे लोम/रोम हैं ।

जिनमें यूका/जूंए लीन होती हैं/वास करती हैं, वे लोम हैं ।

१३०६. लोमहार (लोमहार)

लोमानि—रोमाणि हरन्ति—अपनयन्ति प्राणिनां ये ते लोमहाराः ।

(उशाटी प ३१२)

जो प्राणियो के लोम/केशों का अपहरण करते हैं, उन्हें मार डालते हैं, वे लोमहार/लुटेरे हैं ।

१३०७. लोय (लोक)

लोक्यते इति लोकः । (उचू पृ १७६)

लोक्यते—दृश्यते केवलालोकेनेति लोकः । (स्थाटी प १३)

जो (केवल ज्ञान से) देखा जाता है, वह लोक है ।

लोकान् पातीति लोकः । (आटी प २१)

प्राणी जिसमें समाते हैं, वह लोक है ।

लोक्यते—प्रमीयत इति लोकः । (स्थाटी प ३६)

जिसका माप किया जाता है, वह लोक है ।

१३०८. लोह (लोभ)

लुभ्यते वाऽनेनेति लोभः । (स्थाटी प १८६)

जिसके द्वारा प्राणी लुब्ध होता है, वह लोभ है ।

१३०९. वइ (व्रतिन्)

व्रतानि से संतीति व्रती । (दशचू पृ २३३)

जिसके व्रत हैं, वह व्रती है ।

१३१०. वइरोयण (वैरोचन)

विविधैः प्रकारै रोच्यन्ते—दीप्यन्त इति विरोचनास्ते वैरोचनाः ।

(स्थाटी प १९८)

जो विविध प्रकार से रोचित/दीप्त हैं, वे वैरोचन/इन्द्र हैं ।

१३०११. वइस (वैश्य)

वित्तिं विसंतीति वइस्सा । (आचू पृ ५)

जो वृत्ति/व्यापार मे प्रवेश करते हैं, वे वैश्य हैं ।

कलादिभिर्विशन्ति लोकमिति वैश्याः । (सूचू २ पृ ४४२)

जो कला आदि के द्वारा लोक मे प्रवेश करते हैं, वे वैश्य/वणिक् हैं ।

१३१२. वंकसमायर (वक्रसमाचर)

वंको—असंजमो तं समायरति वंकसमायरो ।

जो वक्र—असयम का समाचरण करता है, वह वक्रसमाचर है ।

णाणागइकुडिलो वंको—संसारो तं समायरति वंकसमायरो ।

(आचू पृ ३४)

जो वक्र/ससार-भ्रमण का समाचरण करता है, वह वक्र-समाचर है ।

१३१३. वंजण (व्यञ्जन)

वंजिज्जति जेण अत्थो, वंजणमिति भण्णते ।

(जीतभा १०१०)

जिससे अर्थ की अभिव्यंजना होती है, वह व्यंजन/अक्षर है ।

१३१४. वंतर (व्यन्तर)

विगतमन्तरं—विशेषो मनुष्येभ्यो येषां ते व्यन्तराः ।

(प्रसाटी प ३३२)

जो मनुष्यों के निकट होते हैं, वे व्यन्तर हैं ।

विविधान्यन्तराणि—उत्कर्षापकर्षात्मकविशेषरूपाणि निवासभूतानि वा गिरिकन्दरविवरादीनि येषां तेऽमी व्यन्तराः ।

(उशाटी प ७०१)

जिनमे उत्कर्ष और अपकर्ष की अपेक्षा से विशेष अन्तर होता है, वे व्यन्तर हैं ।

विविध प्रकार के पर्वत, कन्दरा और शून्य-स्थान जिनके निवास-स्थल हैं, वे व्यन्तर हैं ।

१३१५. वंतासि (वान्ताशिन्)

वंतं असिउं शीलं यस्यासौ वन्ताशी । (उचू पृ २३०)

जो वान्त/त्यक्त वस्तु को खाता है, वह वान्ताशी है ।

१३१६. वंदण (वन्दन)

वन्द्यते—स्तूयतेऽनेन प्रशस्तमनोवाक्कायव्यापारजालेनेति वन्दनम् ।

(आवहाटी २ प १४)

वन्द्यते—पूज्या गुरवोऽनेनेति वन्दनम् । (प्रसाटी प ६)

जिसके द्वारा स्तुति की जाती है, वह वन्दन है ।

१३१७. वंसक (व्यंसक)

व्यंसयतीति व्यंसकः ।[1] (दजिचू पृ ५८)

जो हेतु दूसरो को भ्रम में डाल देता है, वह व्यंसक (हेतु) है ।

१३१८. वक्क (वाक्य)

वयियव्वं वक्कं ।[2] (दअचू पृ १५६)

वाच्यत इति वाक्यं । (दजिचू पृ २३४)

जो बोला जाता है, वह वाक्य है ।

---

१. व्यंसयतिच्छलयति व्यंसकः । (अचि पृ ८८)

२. प्रयुज्यमानैरप्रयुज्यमानैर्वा कारकविभक्तिविशेषणैः सहितम् उच्यत इति वाक्यम् । (अचि पृ ५६)

१३१९. वक्ककर (वाक्यकर)

वक्कं करेमाणो वक्ककरे । (दअचू पृ २२०)

जो गुरु के वाक्य/वचन का पालन करता है, वह वाक्यकर/आज्ञाकारी है ।

१३२०. वग्ग (वर्ग)

वृज्यन्ते दूरतः परिह्रीयन्ते रागादयो दोषा अनेनेति वर्गः ।

(विभामहेटी १ पृ ३५५)

जिसके द्वारा राग आदि दोष दूर किए जाते हैं, वह वर्ग/आवश्यकसूत्र है ।

१३२१. वच्छ (वृक्ष)

वृश्च्यन्त इति वृक्षाः ।[1] (आटी प ५६)

जिनको छेदा जाता है, वे वृक्ष हैं ।

१३२२. वच्छ (वत्स)

वत्सा —पुत्ता इव रक्खिज्जंति वच्छा । (दअचू पृ ७)

वत्स/पुत्र की तरह जिनकी रक्षा की जाती है, वे वत्स/वृक्ष हैं ।

पुत्तणेहेण वा परिगिज्झंति तेण वच्छा । (दजिचू पृ ११)

पुत्र-स्नेह से जिनका परिग्रह/पालन-पोषण किया जाता है, वे वत्स/वृक्ष हैं ।

१३२३. वज्ज (वर्ज्य)

वृज्यते इति वर्ज्यम् । (आवमटी प ५७८)

जिसका वर्जन किया जाता है, वह वर्ज्य/पाप है ।

१३२४. वज्जण (वर्जन)

वृज्यते इति वर्जनम् । (व्यभा २ टी प ६)

जो वर्जित/निषिद्ध है, वह वर्जन है ।

---

१. 'वृक्ष' का अन्य निरुक्त—

वृक्षते वृणोति वा वृक्षः । (अचि पृ २४८)

जो (छाल से) ढकता है, वह वृक्ष है ।

१३२५. वट्टण (वर्तन)

वर्त्यतेऽनेनेति वर्तनम् । (नंदी पृ ५१)

जिसके द्वारा वर्तन किया जाता है, वह वर्तन/व्यवहार है ।

१३२६. वट्टमाण (वर्तमान)

वर्तत इति वर्तमानः । (प्रसाटी प २८६)

जो हो रहा है, वह वर्तमान है ।

१३२७. वडार (दे)

वडेण आरितो वडारो । (निचू ४ पृ २६४)

जिसे विभाग/नामपूर्वक आमन्त्रित किया जाता है, प्रेरित किया जाता है, वह वडार है ।

१३२८. वड्ढमाण (वर्धमान)

वर्धत इति वर्धमानम् । (तक १ टी पृ २०)

जो बढ़ता जाता है, वह वर्धमान है ।

१३२९. वण (व्रण)

वणीति वणम् ।[1] (पंटी प ४११)

जो घायल करता है, वह व्रण/घाव है ।

१३३०. वणंतर (वनान्तर)

विविधमन्तरं—शैलान्तरं कन्दरान्तरं वनान्तरं वा आश्रयरूपं येषां ते वनान्तराः । (प्रसाटी प ३३२)

विविध प्रकार के पर्वत, कन्दरा और वनों के अन्तर/मध्यभाग जिनके निवास स्थल हैं, वे वनान्तर/व्यन्तर हैं ।

१३३१. वणचारि (वनचारिन्)

विचित्रोपवनादिरूपलक्षणत्वावन्येषु च विविधास्पदेषु क्रीडैकरसतया चरितुं शीलमेषामिति वनचारिणः । (उशाटी प ७०१)

उपवन आदि विविध स्थानों मे जो क्रीड़ा करते रहते हैं, वे वनचारी/व्यन्तर देव हैं ।

१३३२. वणप (वनप)

वणं पातीति वणपा । (दशुचू प ६०)

जो वन की रक्षा करते हैं, वे वनपाल हैं ।

---

१. वण—अंगक्षतौ ।

२१३३. वणस्सइ (वनस्पति)

'वन षण सम्भक्तौ' (वनति सनति) इति वनस्पतिः।
(दअचू पृ ७१)

जिसका छेदन-भेदन किया जाता है, वह वनस्पति है।

२१३४. वणीमग (वनीपक)

परेषामात्मदुःस्थत्वदर्शनेनानुकूलभाषणतो यल्लभते द्रव्यं सा वनी प्रतीता। तां पिबति—आस्वादयति पातीति वेति वनीपः, स एव वनीपकः। (स्थाटी प ३२९)

दूसरो को अपनी दीन-हीन दशा दिखाकर चापलूसी कर, जो द्रव्य-लाभ किया जाता है, वह वनी है। जो इस द्रव्य-लाभ (वनी) का उपभोग करता है, वह वनीपक है।

वनुते—प्रायो दायकाभिमतेषु श्रमणादिष्वात्मानं भक्तं दर्शयित्वा पिण्डं याचते इति वनीपकः। (प्रसाटी प १४६)

जो दाताओ की मान्यता के अनुकूल अपने को भक्त बता पिण्ड/भोजन की याचना करता है, वह वनीपक है।

२१३५. वण्ण (वर्ण)

वणिज्जति जेण वण्णो। (आचू पृ १७८)

वर्ण्यते—अलंक्रियते गुणवत्क्रियते शरीराद्यनेनेति वर्णः।
(प्रसाटी प ३६४)

जो शरीर आदि को विशेष रूप से वर्णित/अलंकृत करता है, वह वर्ण/रूप-रंग है।

वृणीते वृणोति वर्णयति वा तमिति वर्णः। (उचू पृ १०२)

जो व्याप्त होता है, वह वर्ण है।

जो आनन्द देता है, वह वर्ण है।

जो पहचान देता है, वह वर्ण है।

---

१. वनस्पति का अन्य निरुक्त—
वनस्य पतिः वनस्पतिः। (शब्द ४ पृ २६३)
वन में जिसकी अधिकता है, वह वनस्पति है।

वर्ण्यते—यथावस्थितं वस्तुस्वरूपं निर्णीयते अनेनेति वर्णः ।

(प्रज्ञाटी प ५११)

जिसके आधार पर वस्तु के यथार्थ स्वरूप का वर्णन/निर्णय किया जाता है, वह वर्ण है ।

१३३६. वत्थ (वस्त्र)

वासयतीति[1] वत्थं । (निचू २ पृ ५६)

गातं आच्छादेति जम्हा तेण वत्थं । (निचू ३ पृ ५६६)

जो आच्छादित करता है/ढकता है, वह वस्त्र है ।

१३३७. वत्थु (वस्तु)

वसन्त्यस्मिन् गुणा इति वस्तु । (आवमटी प ४८५)

जिसमे गुण विद्यमान रहते हैं, वह वस्तु है ।

१३३८. वय (व्रत)

व्रियत इति व्रतम् । (उचू पृ १३८)

जो अविरति रूप छिद्र को ढांकता है, वह व्रत है ।

१३३९. वय (वय)

वएतीति वयो ।[2] (आचू पृ २६६)

जो बीतती है, वह वय/अवस्था है ।

वयन्ति—पर्यटन्ति यस्मिन् स वयः । (आटी प १४१)

जिसमे प्राणी भ्रमण करते हैं, वह वय/संसार है ।

१३४०. वयण (वचन)

वयंति तेण अत्थमिति वयणं । (दअचू पृ १५९)

वयणिज्जं वयणं । (दजिचू पृ २३४)

जो अर्थ का कथन करते हैं, वे वचन हैं ।

---

१. वस्—आच्छादने ।

२. शरीरस्य वियन्ति क्रमेण गच्छन्ति वयांसि । (अभि पृ १२८) विकृगतौ ।

उच्यन्त इति वचनानि । (अनुद्वामटी प १२३)

जो कहे जाते हैं, वे वचन हैं ।

१३४१. ववसाय (व्यवसाय)

विशिष्ट अवसायः व्यवसायः । (आवहाटी १ पृ ७)

जो विशिष्ट अवसाय/निश्चय है, वह व्यवसाय है ।

१३४२. ववहार (व्यवहार)

विशेषतोऽवाह्रियते निराक्रियते सामान्यमनेनेति व्यवहारः ।

(आवमटी प ३७५)

जो वस्तु के विशेष धर्मों का अवहरण/ग्रहण और सामान्य धर्मों का निराकरण करता है, वह व्यवहार (नय) है ।

१३४३. ववहार (व्यवहार)

विविहं वा अवहरणं व्यवहारः ।

विविध प्रकार का आचरण व्यवहार है ।

विविधो वा अवहारः व्यवहारः । (उचू पृ ४३)

विविध प्रकार का अवहार/निश्चय व्यवहार है ।

विधिवव्यवहरणाद् व्यवहारः ।

वपनात् हरणाच्च व्यवहारः । (बृचू प २)

विधिना हारो व्यवहारः । (व्यभा १ टी प ४)

विधिना उप्यते ह्रियते च येन स व्यवहारः ।

(व्यभा १ टी प ५)

जो विधिपूर्वक प्रयुक्त होता है, जिसका बीज-वपन किया जाता है, वह व्यवहार है ।

व्यवह्रियतेऽपराधजातं प्रायश्चित्तं प्रदानतो येन स व्यवहारः ।[1]

(व्यभा ३ टी प १८)

जो प्रायश्चित्त देने मे व्यवहृत होता है, वह व्यवहार है ।

---

१. व्यवहारः आगमादिरूपपञ्चप्रकारः । (व्यभा ३ टी प १८)

१३४४. ववहारि (व्यवहारिन्)

व्यवहरतीत्येवंशीलो व्यवहारी। (व्यभा १ टी प ३)

जो आगम आदि पांच प्रकार के व्यवहार/आचार का आच-रण करता है, वह व्यवहारी है।

१३४५. ववहारि (व्यवहारिन्)

व्यवहरंतीति ववहारिणो। (सूचू १ पृ ६६)

जो व्यापार करते हैं, वे व्यवहारी/व्यापारी हैं।

१३४६. वसण (व्यसन)

वसणं णाम चित्तं तंमि वसंतीति वसणं।[1]

(चित्त) जिसमें वास करता है, वह व्यसन है।

तस्स वा वसे वट्टतीति वसणं। (निचू १ पृ १६४)

मनुष्य जिसके वशवर्ती हो जाता है, वह व्यसन है।

१३४७. वसवट्टि (वशवर्तिन्)

गुरूणां वशे वर्त्तते इति वशवर्ती। (सूचू १ पृ १०७)

जो गुरु के वश/अनुशासन में रहता है, वह वशवर्ती है।

१३४८. वसु (वसु)

वसति जेहिं गुणो सो वसु।[2] (आचू पृ २१०)

जिसमे गुण निवास करते हैं, वह वसु है।

१३४९. वसुम (वसुमत्)

वसे जस्स वट्टंति इंदियकसाया सो य वसुमं। (आचू पृ ४२)

जिसके इन्द्रिय और कषाय वशवर्ती हैं, वह वसुमान् है।

---

१. 'व्यसन' का अन्य निरुक्त—

विशेषेणाऽस्यते क्षिप्यते चित्तमेभिरिति व्यसनानि। (अचि पृ १६३)

जो चित्त को विशेष रूप से विक्षिप्त करते हैं, वे व्यसन हैं।

२. वीतरागो वसुर्ज्ञेयो जिनो वा संयतोऽथवा।

सरागोऽनुवसुः प्रोक्तः स्थविरः श्रावकोऽथवा॥ (आचू पृ २१०)

१३५०. वसुहा (वसुधा)

वसूनि निधत्ते इति वसुधा । (उचू पृ २०६)

जो वसु/रत्नों को धारण करती है, वह वसुधा/पृथ्वी है ।

१३५१. वहग (वधक)

वधन्तीति वधकाः । (दटी प ७८)

जो वध करते हैं, वे वधक हैं ।

१३५२. वहण (वहन)

उह्यतेऽनेन वोढव्यमिति वहनम् । (उशाटी प ५५०)

जिसके द्वारा भार ढोया जाता है, वह वहन/वाहन है ।

१३५३. वाअ (वात)

वातीति[1] वातः ।[2] (उचू पृ १८२)

जो गन्ध को ग्रहण करती है, वह वात/हवा है ।

जो बहती है, वह वात/हवा है ।

१३५४. वाअ (वाच्)

वक्तीति वाक् । (उचू पृ १५३)

उच्यते वाऽनयेति वाक् । (आवहाटी १ पृ ३०४)

जो बोलती है/शब्द करती है, वह वाक्/वाणी है ।

१३५५. वाअर (बादर)

वातं रातीति वायरो । (दअचू पृ ८१)

जो वाणी—इन्द्रिय का विषय बनता है, वह बादर है ।

१३५६. वाउरिय (वागुरिक)

वागुरा—मृगबन्धनं तया चरन्तीति वागुरिकाः ।

(अनुद्वामटी प ११६)

---

१. **वांक्—गतिगन्धनयोः ।**

२. 'वात' का अन्य निरुक्त—

वायति वा द्रव्याणि वायुः । (अचि पृ २४६)

जो पदार्थों को चालित करती है, वह वायु है ।

जो वागुरा/मृगजाल के द्वारा जीवन यापन करते हैं, वे वागुरिक/शिकारी हैं।

१३५७. वागरण (व्याकरण)

वागरिज्जतीति वागरणं। (आचू पृ १२)

जिसके द्वारा अभिव्यक्ति की जाती है, वह व्याकरण/कथन है।

१३५८. वागरण (व्याकरण)

व्याक्रियन्ते लौकिकाः सामयिकाश्च शब्दा अनेनेति व्याकरणम्। (आवमटी प २५६)

जिसके द्वारा लौकिक और सामयिक शब्दों की व्याख्या की जाती है, वह व्याकरण है।

१३५९. वाणमंतर (दे)

वनान्तराणि तेषु भवा वानमन्तराः।[1] (प्रसाटी प ३३३)

जो वनो मे वास करते हैं, वे वाणमंतर/व्यंतर हैं।

१३६०. वाणी (वाणी)

वणयतीति[2] **वाणी।** (दअचू पृ १५९)

जो शब्द करती है, वह वाणी है।

वणिज्जते वयणिज्जा वा वाणी। (दजिचू पृ २३५)

जो बोली जाती है, वह वाणी है।

१३६१. वादिसमोसरण (वादिसमवसरण)

वादिनः—तीर्थिकाः समवसरन्ति—अवतरन्त्येष्विति समवसरणानि—विविधमतमीलकास्तेषां समवसरणानि वादिसमवसरणानि। (स्थाटी प २५९)

जहां विविध मत-मतान्तरो के लोग एकत्रित होते हैं, वे वादिसमवसरण हैं।

---

१. वनानां समूहो वानं तस्यान्तरे भवन्तीति वानमन्तरा इति। (अचि पृ १९)

२. वणि—शब्दे।

१३६२. वाम (व्याम)

व्यामीयन्ते—परिच्छिद्यन्ते रज्ज्वादि अनेनेति व्यामः ।[1]

(राटी पृ १३)

जिससे रज्जु आदि का प्रमाण जाना जाता है, वह व्याम/मापविशेष है ।

१३६३. वामवट्ट (वामवर्त्त)

वामं विवट्टतित्ति वामवट्टो ।[2] (निचू ४ पृ २५८)

जो वाम/प्रतिकूल वर्तन करता है, वह वामवर्त्त/विपरीत-कारी है ।

१३६४. वायग (वाचक)

वायेंति सिस्साणं कालियपुव्वसुतं ति वातगा ।

जो शिष्यों को कालिकपूर्वश्रुत की वाचना प्रदान करते हैं, वे वाचक/आचार्य हैं ।

गुरुसण्णिहाणे वा सिस्सभावेण वाइतं सुतं जेहिं ते वायगा ।

(नचू पृ ६)

गुरु के सानिध्य मे जिन्होंने शिष्यभाव से वाचना को सुना है, वे वाचक हैं ।

१३६५. वालव (व्यालप)

व्यालान्—भुजङ्गान् पान्तीति व्यालपाः । (प्रटी प ३७)

जो व्याल/सर्पों का पालन करते हैं, वे व्यालप/सपेरे हैं ।

१३६६. वास (वर्ष)

वर्षतीति वर्षः । (उचू पृ १६२)

जो बीतता है, वह वर्ष है ।

---

१. तिर्यग् बाहुद्वयं प्रसारणप्रमाणो व्यामः । (राटी पृ १३)

२. एहि भणितो त्ति वच्चति, वच्चसु भणिओ त्ति तो समुल्लियति । जं जह भणितो तं तह, अकरेंतो वामवट्टो उ ।। (निभा ६२११)

१३६७. वासग (वासक)

वासंतीति[1] वासगा । (आचू पृ २०४)

जो शब्द करते हैं, वे वासक/द्वीन्द्रिय आदि जंतु हैं ।

१३६८. वासहर (वर्षधर)

वर्षं—क्षेत्रविशेषं धारयतो—व्यवस्थापयत इति वर्षधरः ।

(स्थाटी प ६५)

जो वर्ष/क्षेत्रविशेष की व्यवस्था करता है/सीमा करता है, वह वर्षधर (पर्वत) है ।

१३६९. वासावास (वर्षावास)

वरिसासु चत्तारि मासा एगत्थ अच्छंतीति वासावासो ।

(दश्रुचू प ५२)

वर्षाकाल में जहा चार मास तक एक स्थान पर रहा जाता है, वह वर्षावास है ।

१३७०. वाह (वाह)

वाहतीति वाहः । (सूचू १ पृ ७१)

जो वाहन को चलाता है, वह वाह/गाड़ीवान् है ।

१३७१. विउल (विपुल)

'पुल महत्त्वे' विशेषेण पुलानि विपुलानि ।

(सूचू २ पृ ४५०)

जो अनेक हैं, विशिष्ट हैं, वे विपुल हैं ।

१३७२. विकहा (विकथा)

विणट्ठा कहा विकहा । (दअचू पृ ५८)

जो कथा विनाश की ओर ले जाती है, वह विकथा है ।

१३७३. विकिरिया (विक्रिया)

विविधा क्रिया विक्रिया । (आवहाटी १ पृ १८५)

जो विविध प्रकार की क्रिया है, वह विक्रिया है ।

विरुद्धा विरूपा वा कथा विकथा । (उशाटी प ६१३)

विसंवादी और विसंगत कथन विकथा है ।

---

१. वासृ—शब्दे ।

१३७४. विक्खेवणी (विक्षेपणी)

विक्षिप्यते सन्मार्गात् कुमार्गे कुमार्गाद्वा सन्मार्गे श्रोताऽनयेति विक्षेपणी। (स्थाटी प २०४)

जिससे श्रोता सन्मार्ग से कुमार्ग मे या कुमार्ग से सन्मार्ग मे क्षिप्त होता है, वह विक्षेपणी (कथा) है।

१३७५. विगइ (विगति)

विकृति—अशोभनं गतिं नयन्तीति विगतयः।[1]

(उचू पृ २४६)

जो असुन्दर अवस्था की ओर ले जाती है, वह विगति/विकृति है।

१३७६. विगति (विकृति)

विकृतिं णेतीति विगती। (दअचू पृ २६५)

जो विकार पैदा करती है, वह विकृति है।

१३७७. विगत्तु (विकर्तृ)

विविधया कर्त्ता विकर्त्ता। (भटी पृ १४३२)

जो विविध प्रकार से कार्य करता है, वह विकर्त्ता/आत्मा है।

१३७८. विग्गह (विग्रह)

विगृह्यतेऽनेनेति विग्रहः।[2] (उचू पृ ६८)

जो कर्म आदि का ग्रहण करता है, वह विग्रह/शरीर है।

विशेषेण गृह्यते आत्मना कर्मपरतन्त्रेणेति विग्रहः

(उशाटी प २७१)

जो कर्म से परतंत्र आत्मा द्वारा गृहीत होता है, वह विग्रह है।

---

१. **तं आहारित्ता संयतत्वावसंयतत्व विविधं प्रकारं गच्छिहिति विगती।** (दश्रुचू प ५७)

२ 'विग्रह' का अन्य निरुक्त—

विगृह्यते रोगादिभिरिति विग्रहः। (अचि पृ १२७)

जो रोगो से आक्रान्त होता है, वह विग्रह/शरीर है।

विविधं सुखदुःखादिकं गृह्णातीति विग्रहः। (शब्द ४ पृ ३७७)

जो विविध प्रकार के सुख-दुःख ग्रहण करता है, वह विग्रह/शरीर है।

१३७९. विग्घ (विघ्न)

विशेषेण हन्यते—विनाश्यतेऽनेनेति विघ्नम् । (नक १ टी पृ ५८)

जो विशेष रूप से हनन करता है/बाधा उपस्थित करता है, वह विघ्न है।

१३८०. विजय (विजय)

अभ्युदयविघ्नहेतून् विजयन्त इति विजयास्तथैव वैजयन्ताः । (उशाटी प ७०३)

जो अभ्युदय के अवरोधक को जीतते हैं, वे विजय/वैजयन्त (देव) हैं।

१३८१. विज्जल (दे)

विगयमात्रं जतो जलं तं विज्जलं । (दअचू पृ १००)

जिसमें जल की न्यूनता होती है, वह विज्जल/कीचड है।

१३८२. विज्जा (विद्या)

विद्यतेऽनया तत्त्वमिति विद्या । (उशाटी प ४४२)

जिससे तत्त्व जाना जाता है, वह विद्या/श्रुतज्ञान है।

१३८३. विज्जाहर (विद्याधर)

विद्यां धरन्तीति विद्याधराः । (राटी पृ ९५)

जो अनेक विद्याओं को धारण करते हैं, वे विद्याधर हैं।

१३८४. विज्जु (विद्युत्)

विशेषेण द्योतते—दीप्यत इति विद्युत् । (उशाटी प ४६०)

जो विशेष रूप से द्योतित/दीप्त होती है, वह विद्युत् है।

१३८५. विडिमी (दे)

विडिमाणि जेसिं विज्जंति ते विडिमी । (दअचू पृ ७)

जिनके विडिम/शाखाएं होती हैं, वे विडिमी/वृक्ष हैं।

१३८६. विणअ (विनय)

विनीयते—अपनीयते कर्म येन स विनयः ।[1]

(सूटी १ प २४२)

जिसके द्वारा कर्मों का विनयन किया जाता है, वह विनय है ।

विशिष्टो विविधो वा नयो विनयः । (उशाटी प १६)

जो विशिष्ट एव विविध प्रकार का नय/नीति है, वह विनय है ।

१३८७. विणयन्नु (विनयज्ञ)

विनयो ज्ञानदर्शनचारित्रौपचारिकरूपस्तं जानातीति विनयज्ञः ।

(आटी प १३१)

जो विनय को जानता है, वह विनयज्ञ है ।

१३८८. विणिच्छय (विनिश्चय)

विशेषेण निश्चयो विनिश्चयः ।

विशेष निश्चय विनिश्चय है ।

निराधिक्ये चयनं चयः—पिण्डीभवनं अधिकश्चयो निश्चयः ।

(अनुद्वामटी प २४५)

जिसमे चय/उपचय अधिक होता है, वह निश्चय/विनिश्चय है ।

१३८९. विणीय (विनीत)

विशेषेण नीतः—प्रापितः प्रेरकचित्तानुवर्तनादिभिः श्लाघामिति विनीतः ।[2]

(उशाटी प ४६)

जो विशेष रूप से प्रेरक के चित्तानुकूल वर्तन कर प्रशंसा प्राप्त करता है, वह विनीत है ।

---

१. 'विनय' का अन्य निरुक्त—

विशेषेण नयतीति विनयः । (शब्द ४ पृ ४०१)

जो विशिष्टता की ओर ले जाता है, वह विनय है ।

२. 'विनीत' का अन्य निरुक्त—

शास्त्रादिना विनीयते स्म विनीतः । (अचि पृ ९९)

१३६०. विणीयकरण (विनीतकरण)

विशेषतः संयमयोगेषु नीतानि करणानि मनोवाक्कायलक्षणानि येन स विनीतकरणः। (व्यभा ४/२ टी प ४०)

जो करण—मन, वचन और काया को विशेष रूप से संयम में नियोजित करता है, वह विनीतकरण है।

१३६१. विण्णत्ति (विज्ञप्ति)

विशेषेण ज्ञापनं विज्ञप्तिः। (नंदी पृ ४३)

विशेषरूप से प्रकट करना विज्ञप्ति/विज्ञान है।

१३६२. विण्णाण (विज्ञान)

विविहं विसिट्ठं वा णाणं विण्णाणं। (आचू पृ १३५)

विविध एवं विशिष्ट प्रकार का ज्ञान विज्ञान है।

विन्नायति जेण तं विण्णाणं। (आचू पृ १३६)

जिससे विशेष रूप से जाना जाता है, वह विज्ञान है।

१३६३. विण्णात (विज्ञात)

विविहं विसिट्ठं वा णातं विण्णातं। (सूचू २ पृ ३३२)

जो विविधता या विशिष्टता से ज्ञात है, वह विज्ञात है।

१३६४. विण्णायग (विज्ञायक)

विविधं—अनेकधा जानातीति विज्ञायकः। (नंदी पृ ३)

जो विविध प्रकार से जानता है, वह विज्ञायक है।

१४६५. वितद्द (वितर्द)

विविधं तर्दतीति वितर्दः। (आटी प २५२)

जो विभिन्न प्रकार से हिंसा करता है, वह वितर्द/हिंसक है।

१३६६. वितिगिच्छा (विचिकित्सा)

वीति—विशेषेण विविधप्रकारैर्वा चिकित्सामि—प्रतिकरोमि निराकरोमि गर्हणीयान् दोषान् इति विचिकित्सामि।

(स्थाटी प २०८)

विविध प्रकार से एवं विशिष्ट प्रकार से गर्हणीय दोषों की चिकित्सा/अपनयन करना, विचिकित्सा है।

१३९७. वित्त (वित्त)

विद्यते इति वित्तं।[1] (सूचू १ पृ २३)

जो प्राप्त होता है, वह वित्त/धन है।

१३९८. वित्तासण (वित्रासन)

विविधं त्रासनं वित्रासनं। (उचू पृ ६७)

जो विविध प्रकार से त्रस्त करता है, वह वित्रासन है।

१३९९. वित्ति (वृत्ति)

वर्तते शरीरं यया सा वृत्तिः। (प्रसाटी प ४५)

जिसके द्वारा शरीर टिकता है, वह वृत्ति/भिक्षा है।

१४००. वित्तिय (वृत्तिद)

वृत्ति वा आश्रितलोकानां ददाति यत् तद् वृत्तिदम्।

(ज्ञाटी प ४)

जो आश्रित व्यक्तियो को वृत्ति/आजीविका देता है, वह वृत्तिद है।

१४०१. वित्तेसि (वित्तैषिन्)

वित्तं—द्रव्यं तदन्वेष्टु शीलं येषां ते वित्तैषिणः।

(सूटी २ प १४६)

जो वित्त/धन की खोज करते हैं, वे वित्तैषी हैं।

१४०२ विदंसग (विदशक)

विदंशतीति विदंशकः। (प्रटी प १५)

जो विशेष रूप से काटता है, वह विदशक/बाज आदि है।

---

१. विद्यते लभ्यते इति वित्तम्। (अचि पृ ४५)

१४०३. विधार (विधार)

विविहेहिं पगारेहिं धारेयव्वं विधारो तु । (जीतभा ६५६)

विविध प्रकार से जो अर्थ की धारणा होती है, वह विधार/व्यवहार है ।

१४०४. विधारग (विधारक)

विविहं वा धारए विधारए । (आचू पृ २२३)

जो विविध प्रकार से धारण करता है, वह विधारक है ।

१४०५. विधारणा (विधारणा)

विविधैः प्रकारैः विशिष्टं वार्थमुद्धृतमर्थपदं यया धारणया स्मृत्या धारयति सा विधारा विधारणा । (व्यभा १० टी प ८९)

जिस धारणा की स्मृति के आधार पर विविध प्रकार से तथ्य की धारणा की जाती है, वह विधारा या विधारणा है ।

१४०६. विधूतकप्प (विधूतकल्प)

विविहं धूतं विधूतं, कप्पइत्ति कप्पो, विधुणिज्जति जेण अट्ठविहो कम्मरयो स विधूतकप्पो । (आचू पृ १२२)

अष्टप्रकार के कर्मसंस्कारो का जो विधुनन/नाश करता है, वह विधूतकल्प है ।

१४०७. विप्पडिवण्ण (विप्रतिपन्न)

विरुद्धं मार्गं प्रतिपन्नाः विप्रतिपन्नाः । (सूटी २ प २१)

जो विपरीत मार्ग को स्वीकार करता है, वह विप्रतिपन्न है ।

१४०८ विप्पमुक्क (विप्रमुक्त)

अब्भितर-बाहिरगंथबंधणविविहप्पगारमुक्का विप्पमुक्का । (दअचू पृ ५९)

जो सर्वथा बाह्य और आभ्यन्तर बंधन से मुक्त हैं, वे विप्रमुक्त हैं ।

१४०९. विप्पवास (विप्रवास)

विशेषेण प्रवासोऽन्यत्र गमनं विप्रवासः । (व्यभा २ टी प २५)

विशेष रूप से अन्यत्र प्रवास करना विप्रवास है ।

१४१०. विप्पसण्ण (विप्रसन्न)

विशेषेण विविधैर्वा भावनाविभिः प्रकारैः प्रसन्ना विप्रसन्नाः।
(उशाटी प २४६)

जो विशिष्ट या विविध प्रकार से प्रसन्न हैं, वे विप्रसन्न हैं।

१४११. विभंग (विभङ्ग)

विरुद्धो वितथो वा अन्यथा वस्तुभङ्गो—वस्तुविकल्पो यस्मि-स्तद्विभङ्गम्। (स्थाटी प ३६८)

जिसमे भग/विकल्प/ज्ञान विरुद्ध या वितथ होता है, वह विभगज्ञान है।

१४१२. विभंग (विभङ्ग)

विविधो विशिष्टो वा विभागो विभङ्गः। (सूचू २ पृ ३५४)

विविध या विशिष्ट प्रकार का विभाग करना विभङ्ग है।

१४१३. विभत्ति (विभक्ति)

विभज्यते कर्तृत्वकर्मत्वाविलक्षणोऽर्थो यया सा विभक्तिः।
(स्थाटी प ४०६)

जिससे कर्त्ता, कर्म आदि कारको का विभाजन होता है, वह विभक्ति है।

१४१४. विभासा (विभाषा)

वैविकल्पेन भाषणं विभाषा। (बृटी पृ ३)

विविध प्रकार से भाषण/कथन करना विभाषा है।

१४१५. विमत्ता (विमात्रा)

विषमा विविधा वा मात्रा—कालविभागो विमात्रा।
(भटी प २६)

जो विषम और विवध प्रकार की मात्रा/कालविभाग है, वह विमात्रा है।

१४१६. विमाण (विमान)

विशेषेण मानयन्ति—उपभुञ्जन्ति सुकृतिन एतानीति विमानानि ।[1]
(उशाटी प ७०१)

सुकृत/पुण्य करने वाले जिनका विशेष भोग करते हैं, वे विमान हैं ।

१४१७. विमुह (विमुख)

मुखस्य आदेरभावाद्विमुखम् । (भटी पृ १४३१)

जिसके मुख/प्रवेशद्वार का कोई आदि बिंदु नहीं है, वह विमुख/आकाश है ।

१४१८. विमोह (विमोक्ष)

विमोक्खतेति विमोहा । (आचू पृ २८७)

जो बन्धन से मुक्त होते हैं, वे विमोक्ष/विमुक्त हैं ।

१४१९. वियंतिकारय (व्यन्तकारक)

विसिट्ठा अंतो वियंतो, वियंतो करेति वियंतीकारओ ।
(आचू पृ २७६)

विशिष्ट प्रकार का अत/मरण व्यंत है, जो विशिष्ट प्रकार से व्यंत/मरण करता है, वह व्यंतकारक है ।

१४२०. वियक्खण (विचक्षण)

विविधमनेकप्रकारमाचष्टे विचक्षणः । (दजिचू पृ २०६)

जो विविध प्रकार से अभिव्यक्ति करता है, वह विचक्षण है ।

---

१. 'विमान' का अन्य निरुक्त—
विमान्ति वर्त्तन्तेऽस्मिन् देवा इति विमानः । (अचि पृ १८)
देवता जिसमें वास करते हैं, वह विमान है ।
विगतं मानमुपमा यस्य विमानम् । (शब्द ४ पृ ४१५)
जो अनुपमेय है, वह विमान है ।

१४२१. वियड (विकट)

विगतजीवं वियडं । (आचू पृ ३०८)

जो जीवरहित है, वह विकट/अचित्त/प्रासुक है ।

१४२२. वियाण (वितान)

वितण्णत इति वियाणं । (निचू १ पृ १५७)

जो फैलाया जाता है, वह वितान/चंदवा है ।

१४२३. वियाणग (विजानक)

सव्वं जाणइ त्ति वियाणगो । (नचू पृ १)

जो सब कुछ जानता है, वह विजानक/सर्वज्ञ है ।

१४२४. वियालचारि (विकालचारिन्)

विकालेऽपि रात्रावपि चरतीति विकालचारी । (औटी पृ १६४)

जो विकाल/रात्री मे गमन करते हैं, वे विकालचारी हैं ।

१४२५. वियाहित (व्याख्यात)

विविहं आहिते वियाहिते । (आचू पृ १६७)

जो विविध प्रकार से आख्यात/कथित है, वह व्याख्यात है ।

१४२६. विरत (विरत)

पाणवहादीहिं आसवदारेहिं पविरमइत्ति विरए । (दजिचू पृ ३३४)

जो आश्रवो से विरत रहता है, वह विरत/मुनि है ।

१४२७. विवज्जास (विपर्यास)

विपरीततामेवंतिविपर्यासः । (सूचू १ पृ ४८)

जो विपरीतता का रक्षण करता है, वह विपर्यास है ।

१४२८. विवर (विवर)

विगतवरणतया विवरम्।[1] (भटी पृ १४३१)

जिसका कोई आवरण नहीं है, वह विवर/आकाश है।

१४२९. विवाग (विपाक)

विविधो पाकः विपचनं वा विपाकः। (नंचू पृ ७०)

जिसमें विविध प्रकार का पाक/कर्म-परिणाम दर्शित है, वह विपाक (आगम) है।

१४३०. विवाग (विपाक)

विविधो पागो विपागो। (आवचू २ पृ ८४)

जिसका पाक/परिणमन विविध रूपों में होता है, वह विपाक है।

१४३१. विवाह (व्याख्या)

व्याख्यायन्ते जीवादयोऽर्था यस्यां सा व्याख्या। (नंटि पृ १६५)

जिसमें (जीव आदि) पदार्थ व्याख्यायित होते हैं, वह व्याख्याप्रज्ञप्ति/भगवतीसूत्र है।

१४३२ विवित्तेसि (विविक्तैषिन्)

विविक्तान्येषतीति विवित्तेसी।

जो विविक्त/एकान्त की एषणा करता है, वह विविक्तैषी है।

विविक्तानां—साधूनां मार्गमेषयतीति विवित्तेसी।

जो विविक्त/श्रामण्य की एषणा करता है, वह विविक्तैषी है।

कर्मविवित्तो मोक्खो तमेवमेषयतीति विवित्तमेसी।

(सूचू १ पृ १०३)

जो विविक्त/मोक्ष की एषणा करता है, वह विविक्तैषी है।

---

१. 'विवर' का अन्य निरुक्त—

विवृणोतीति विवरम्। (शब्द ४ पृ ४२७)

जो सब को आच्छादित कर लेता है, वह विवर/आकाश है।

१४३३. विवेक (विवेक)

विविच्यतेऽनेनेति विवेकः । (आटी प २१७)

जिसके द्वारा पृथक् किया जाता है, वह विवेक है ।

१४३४. विस (विष)

विवेष्टि विष्णाति[1] वा विषम् । (उचू पृ १८५)

जो शीघ्रता से व्याप्त होता है, वह विष है ।

जो विप्रयोग/शरीर और प्राणो का वियोग करता है, वह विष है ।

१४३५. विसन्न (विषण्ण)

विविधं सन्ना विसन्ना । (उचू पृ १५३)

जो विविध प्रकार से डूबे हुए हैं, वे विषण्ण हैं ।

१४३६. विसन्नेसि (विषण्णैषिन्)

विसण्णो असंजमो तमेसति विसण्णेसी । (सूचू १ पृ ११३)

जो विषण्ण/असयम को खोजता है, वह विषण्णैषी है ।

१४३७. विसय (विषय)

विषीदन्त्येषु प्राणिन इति विषयाः ।[2] (दटी प २२)

प्राणी जिनमे विषाद प्राप्त करते हैं, वे (इन्द्रिय) विषय हैं ।

विषीदन्ति—धर्मं प्रति नोत्सहन्त एतेष्विति विषयाः ।

जो धर्म के प्रति विषाद/अनुत्साह पैदा करते हैं, वे विषय हैं ।

विषस्योपमां यान्तीति विषया. । (उशाटी प १९०)

जो विष की उपमा को प्राप्त होते हैं, वे विषय है ।

---

१. विष्—व्याप्तौ, विप्रयोगे ।

२. 'विषय' का अन्य निरुक्त—

विषण्वन्ति विषयिणं स्वेन रूपेण निरूपणीयं कुर्वन्ति विषयाः ।

(शब्द ४ पृ ४४९)

१४३८. विसूइया (विसूचिका)

विध्यतीव शरीरं सूचिभिरिति विसूचिका। (उपाटी प ११८)

जो वायु शरीर को सूचि/सूई-वेध की तरह पीड़ित करता है, वह विसूचिका/हैजा है।[1]

१४३९. विसेसण (विशेषण)

विशेष्यते परस्परं पर्यायजातं भिन्नतया व्यवस्थाप्यते अनेनेति विशेषणम्। (व्यभा १ टी प १६)

जिसके द्वारा विशेषित/भिन्नता आपादित की जाती है, वह विशेषण है।

१४४०. विसोहि (विशोधि)

कम्ममलिणो आता विसोहिज्जति विसोही। (अनुद्वाचू पृ १४)

कर्ममलिन आत्मा जिससे विशुद्ध होती है, वह विशोधि/आवश्यकसूत्र है।

१४४१. विस्साम (विश्राम)

विश्राम्यते—विरम्यते एष्विति विश्रामाः।[2] (प्रसाटी प १६)

आगम पाठ के वे स्थल जहां विश्राम लिया जाता है, वे विश्राम/सम्पदा/विश्रमणस्थान हैं।

---

१. (क) सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् सन्तिष्ठतेऽनिलः।
यस्याजीर्णेन सा वैद्यैर्विसूचीति निगद्यते॥

(ख) 'विसूचिका' का अन्य निरुक्त—

विशेषेण सूचयति मृत्युमिति विसूचिका।

(शब्द ४ पृ ४६२)

जो विशेष रूप से मृत्यु को सूचित करती है, वह विसूचिका है।

२. अट्ठ नवट्ठ य अट्ठवीस सोलस य वीस वीसामा।
मंगलइरियावहिया सक्कत्थयपमुह दंडेसु॥ (प्रसा ७८)

१४४२. विहु (विघ)

विधीयते—क्रियते कार्यजातमस्मिन्निति विघम् ।

(भटी पृ १४३१)

जिसमें कार्य किया जाता है, वह विघ/आकाश है ।

१४४३. विहंगम (विहङ्गम)

विहायसा गच्छंतीति विहंगमा । (सूचू १ पृ ६८)

जो आकाश मे विचरण करते हैं, वे विहगम/पक्षी हैं ।

विहे—विहायोगतेरुदयाद्वुद्गच्छन्तीति विहङ्गमाः । (दटी प ७१)

जो विहायोगति नामकर्म के उदय से उड़ते हैं, वे विहंगम/पक्षी हैं ।

१४४४. विहाण (विधान)

विविक्तं—इतरव्यवच्छिन्नं धानं—पोषणं स्वरूपस्य यत् तद् विधानम् । (प्रज्ञाटी प ५०१)

जो दूसरो से व्यवच्छिन्न करने वाले स्वरूप का पोषण करता है, वह विधान है ।

१४४५. विहाय (विहायस्)

विशेषेण हीयते—त्यजते तदिति विहायः । (भटी पृ १४३१)

जिसमे विशेष रूप से वस्तुओ को छोडा जाता है/रखा जाता है, वह विहायस्/आकाश है।

१४४६. विहार (विहार)

विहरन्त्यस्मिन् प्रदेश इति विहारः । (उशाटी प ५४४)

जिसमे विहरण किया जाता है, वह विहार/प्रदेश है ।

१४४७. विहार (विहार)

विविहपगारेहिं रयं हरइ जम्हा विहारो उ । (व्यभा ४/१/१८)

जा विविध प्रकार से कर्मरज का हरण करता है, वह विहार/गीतार्थ है ।

१४४८. विहारि (विहारिन्)

ग्रामादीनां पार्श्वे तटे विहरतीत्येवंशीलो विहारी ।

(व्यभा ३ टी प १११)

जो (ग्राम आदि के तट पर) विहरण करता है, वह विहारी है ।

१४४९. वीइ (वीचि)

वेचनात् विविक्तस्वभावत्वाद्वीचिः । (भटी पृ १४३१)

जो वस्तुओं के अनुरूप पृथक् पृथक् आकार धारण करता है, वह वीचि/आकाश है ।

१४५०. वीदंसय (विदंशक)

विशेषेण दशन्तीति विदंशकाः । (उशाटी प ४६०)

जो विशेष रूप से काटते हैं, वे विदंशक हैं ।

१४५१. वीमंसा (विमर्श, मीमांसा)

संकप्पते चेव विविधा आमरिसणा वीमंसा । (नंचू पृ ४६)

संकल्पपूर्वक विविध प्रकार से आमर्श/चिन्तन करना विमर्श/ईहा/मतिज्ञान का एक भेद है ।

१४५२. वीयराग (वीतराग)

वीतो—विगतो रागो यस्मात् स चासौ वीतरागः ।

(स्थाटी प ४९)

जो राग से वीत/रहित है, वह वीतराग है ।

१४५३. वीर (वीर)

.........विक्कंतो व कसायाइसत्तुसेनापराजयओ ।

(विभा १०५९)

वीरयति कषायान् प्रति विक्रामयति स्येति वीरः । (नंटी प १५)

कषायों का नाश करने में जो वीरता/पराक्रम दिखाता है, वह वीर है ।

ईरइ विसेसेणं खिवेइ कम्माइं गमयइ सिवं वा ।
गच्छइ य तेण वीरो स………………… ॥[1]

(विभा १०६०)

जो विशेष रूप से कर्मों का क्षय कर, मोक्ष की ओर गमन करता है, वह वीर है ।

विरायति संजमवीरिएणं वीरो । (आचू पृ ७५)

जो संयम के वीर्य से सुशोभित है, वह वीर है ।

विशिष्टा—सकलभुवनाद्भुता यका स्वर्गापवर्गादिका ई:—लक्ष्मीस्तां राति भव्येभ्यः प्रयच्छति इति वीरः ।

(नक २ टी पृ ६६)

जो वि/विशिष्ट, ई/(मुक्तीरूपी) लक्ष्मी (भव्यजनो को) रा/प्रदान करता है, वह वीर है ।

१४५४. वीरिय (वीर्य)

विराजयत्यनेनेव इति वीरियं । (उचू पृ ९६)

जिससे जीव दीप्त होता है, वह वीर्य है ।

विशेषेण ईर्यते—चेष्ट्यतेऽनेनेति वीर्यः ।[2] (उशाटी प ६४५)

जो प्राणी को विशेष रूप से प्रवृत्त करता है, वह वीर्य है ।

१४५५. वीसायणिज्ज (विस्वादनीय)

विशेषतः स्वादनीयो विस्वादनीयः । (प्रज्ञाटी प ३६६)

जो विशिष्ट स्वादिष्ट है, वह विस्वादनीय है ।

१४५६. वीसास (विश्वास)

विश्वासयतीति विश्वासः । (व्यभा ४/२ टी प ६७)

जो विश्वस्त करता है, वह विश्वास है ।

---

१. विशेषेण—अपुनर्भावेन ईर्ते—'ईरिक् गतिकम्पनयोः' इति वचनाद् याति शिवं, कम्पयति—आस्फोटयति अपनयति कर्म वेति वीरः ।

(नक २ टी पृ ६६)

२. वीर्य्यतेऽनेनेति वीर्यः । (शब्द ४ पृ ४७४)

१४५७. वेयड्ढ (वैताढ्य)

भरतक्षेत्रस्य द्वे अर्धे करोतीति वैताढ्यः।

जो भरत क्षेत्र को दक्षिणार्द्ध और उत्तरार्द्ध के रूप में विभक्त करता है, वह वैताढ्य (पर्वत) है।

वैताढ्यगिरिकुमारोऽत्र देवो महर्द्धिको परिवसति तेन वैताढ्यः। (जंटी प ८४)

जहां वैताढ्यगिरिकुमार नामक ऋद्धि-संपन्न देव निवास करता है, वह वैताढ्य (पर्वत) है।

१४५८. वेउव्विय (वैकुर्विक)

विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियम्।

जिसमें विविध या विशिष्ट क्रिया/रूपनिर्माण किया जाता है, वह वैक्रिय है।

विशिष्टं कुर्वन्ति तदिति वा वैकुर्विकम्। (अनुद्वामटी प १८१)

विशिष्ट लब्धिसंपन्न व्यक्ति जिस क्रिया को करते हैं, वह वैक्रिय है।

१४५९. वेणइय (वैनयिक)

विनयमर्हन्तीति वैनयिकाः। (व्यभा ४/२ टी प ३९)

जो विनय/आचार में निपुण होते हैं, वे वैनयिक/आचार्य आदि हैं।

जो विनय के योग्य हैं, वे वैनयिक/आचार्य आदि हैं।

१४६०. वेणइय (वैनयिक)

विनयेन चरन्तीति वैनयिकाः। (प्रसाटी प ३४५)

जो विनय के द्वारा आजीविका प्राप्त करते हैं, वे वैनयिक/विनयवादी है।

१४६१. वेतालिय (वैदालिक)

विदालयतीति वैदालिकः। (सूचू १ पृ ५८)

जो (कर्मों को) विदारित करता है, वह वैदालिक है।

१४६२. वेदग (वेदक)

वेद्यन्ते—अनुभूयन्ते शुद्धसम्यक्त्वपुञ्जपुद्गला अस्मिन्निति वेदकम् । (प्रसाटी प २८५)

जिसमे शुद्ध सम्यक्त्व का वेदन/अनुभवन किया जाता है, वह वेदक (सम्यक्त्व) है ।

१४६२. वेयणा (वेदना)

वेद्यत इति वेदना । (सूचू २ पृ ३२७)

जिसका वेदन/अनुभव किया जाता है, वह वेदना है ।

१४६४. वेयणीय (वेदनीय)

वेद्यते—आह्लादादिरूपेणानुभूयते यत्तद्वेदनीयम् । (प्रसाटी प ३५६)

सुख-दुःख आदि के रूप मे जिसका वेदन किया जाता है, वह वेदनीय (कर्म) है ।

१४६५. वेय (वेद)

वेदेइ जेण सा वेदो ।[1] (आचू पृ १५२)

जिसके द्वारा जाना जाता है, वह वेद/आगम है ।

१४६६. वेय (वेद)

वेदेतित्ति वेदो । (आचू पृ २३७)

जो (तत्त्व को) जानता है, वह वेद/आगमज्ञ है ।

१४६७. वेय (वेद)

वेदेति य सुहदुक्खं तम्हा वेदे । (भ २/१५)

जो सुख-दुःख का वेदन करता है, वह वेद/जीव है ।

---

१. 'वेद' का अन्य निरुक्त—

(क) **वेद्यते सकलचराचरमनेनेति वेदः आगमः ।** (आटी प १६४)

(ख) **विन्दत्यनेन धर्मं वेदः ।** (अचि पृ ६०)

जिससे धर्म प्राप्त होता है, वह वेद है ।

१४६८. वेयय (वेदक)

वेदयन्ति—निर्जरयन्ति उपभुञ्जन्तीति वेदकाः। (दटी प ७०)

जो कर्मों का वेदन/निर्जरण या उपभोग करते हैं, वे वेदक हैं।

१४६९. वेयरणी (वैतरणी)

वेगेन तस्यां तरतीति वैतरणी।[1] (सूचू १ पृ ९९)

जिसमें वेग से तरा जाता है, वह वैतरणी (नदी) है।

विरूपं तरणं प्रयोजनमस्या इति वैतरणी। (प्रसाटी प ३२२)

जिसमे वि-तरण/प्रतिकूल तरण होता है, वह वैतरणी (नदी) है।

१४७० वेयवि (वेदविद्)

दुवालसंगं प्रवचनं वेदो, तं जे वेदयति स वेदवी। (आचू पृ १८५)

जो वेद/द्वादशांग प्रवचन को जानता है, वह वेदविद् है।

जीवादिपदत्थे वेदापयतीति वेदवी। (आचू पृ २३७)

जो जीव आदि पदार्थों को समझाता है, वह वेदवित् है।

१४७१. वयालिग (वैयालिक)

व्यालैश्चरन्तीति वैयालिकाः। (प्रटी प ३७)

जो व्याल/सर्पों को दिखाकर आजीविका प्राप्त करते हैं, वे वैयालिक/सपेरे हैं।

---

१. 'वैतरणी' के अन्य निरुक्त—

विगततरणी व्यर्के पाताले भवा वैतरणी। विगततरणिर्वितरणिर्वितौका ततः वैतरणी। (अचि पृ २४१)

जो वितरणि/सूर्यरहित नरक में होती है, वह वैतरणी (नदी) है।

जो वितरणि/नौका रहित है, वह वैतरणी (नदी) है।

वितरणेन दानेन तीर्यते वैतरणी। विरुद्धं तरणं वितरणं तदस्यामस्तीति वैतरणी। (शब्द ४ पृ ५०९)

जिसे वितरण/दान से तैरा जाता है, पार किया जाता है, वह वैतरणी है।

१४७२. वेयावच्च (वैयापृत्य)

व्याप्रियते स्मेति व्यापृतः तस्य भावो वैयापृत्यम्।[1] (प्रसाटी प ६८)

धर्मपुष्टि के लिए मुमुक्षुओं की सेवा में व्यापृत होना वैयापृत्य/वैयावृत्य है।

१४७३. वेर (वैर)

विरज्यते येन तद् वैरम्। (सूचू १ पृ २२)

जिसके द्वारा आत्मा विशेष रूप से रंजित होती है, वह वैर है।

१४७४. वेरि (वैरिन्)

वेराइं कुव्वती वेरी। (सू १/८/७)

जो वैर करता है, वह वैरी है।

१४७५. वेलंधर (वेलन्धर)

वेलां—लवणसमुद्रशिखामन्तर्विशन्तीं बहिर्वाऽऽयान्तीमग्रशिखां च धारयन्तीति वेलंधराः। (स्थाटी प २२१)

जो वेला/लवणसमुद्र की शिखा को धारण करते हैं, वे वेलधर (पर्वत) हैं।

१४७६. वोम (व्योम)

विशेषेणावनाद् व्योम।[2] (भटी पृ १४३१)

जो विशेष रूप से (सर्वत्र) व्याप्त है, वह व्योम/आकाश है।

जिसमे गति की जाती है, वह व्योम है।

जो (अवकाश प्रदान कर) रक्षा करता है, वह व्योम[2] है।

---

१. वेयावच्चं वावडभावो इह धम्मसाहणनिमित्तं।
अन्नाइयाण विहिणा संपयाणमेस भावत्थो॥ (प्रसाटी प ६८)

२. अवनं गमनं विविधमस्मिन् विद्यते इति व्योम। अवति—रक्षति प्राणिनोऽवकाशप्रदानेन इति। (शब्द ४ पृ ५५४)

१४७७. स (श्वन्)

श्वयति श्वसिति वा श्वा ।[2] (उचू पृ २०३)

जो इधर उधर घूमता है, वह श्वा/कुत्ता है ।

जो (शीघ्रता से) श्वास लेता है, वह श्वा/कुत्ता है ।

१४७८. संकम (सक्रम)

संकमिज्जति जेण सो संकमो । (निचू २ पृ ३४)

जिससे संक्रमण/पार किया जाता है, वह संक्रम/सेतु है ।

१४७९. संका (शङ्का)

संसयकरणं संका । (जीतभा १०३९)

संशय करना शंका है ।

१४८०. संखडि (दे)

आउयखंडणा संखडी ।[3] (आचू पृ ३०९)

जो (प्राणियों के) आयुष्य को खंडित करती है, वह संखडी/जीमनवार है ।

१४८१. संखा (संख्या)

सम्यक् ख्यायते—प्रकाश्यतेऽनयेति संख्या । (आटी प २५०)

जो (तत्त्व का) सम्यक् रूप से ख्यापन/प्रकाशन करती है, वह संख्या/प्रज्ञा है ।

१४८२. संखा (संख्या)

संख्यायते—निश्चीयते वस्त्वनयेति संख्या । (अनुद्वामटी प ११६)

जो वस्तु की निश्चित परिगणना करती है, वह संख्या है ।

---

१. 'व्योम' का अन्य निरुक्त—
व्ययति छादयति क्ष्मां व्योम । (अभि पृ ३७)

२. श्वयति गच्छतीति श्वा । (शब्द ५ पृ १७७)

३. आउआणि जम्मि जीवाण संखंडिज्जंति सा संखडी ।
(निचू २ पृ २०६)

१४८३. संखिज्ज (संख्येय)

संख्यायत इति संख्येयः । (आवहाटी १ पृ २१)

जिसकी गणना की जा सकती है, वह संख्येय है ।

१४८४. संग (सङ्ग)

सज्जति जेण स संगो । (आचू पृ १०६)

जिसके द्वारा प्राणी आसक्त होता है, वह संग/आसक्ति है ।

१४८५. संगकर (सङ्गकर)

संगंकुर्वन्तीति संगकरा. । (उचू पृ २१६)

जो संग/आसक्ति पैदा करते हैं, वे संगकर/इन्द्रिय-विषय हैं ।

१४८६. संगह (संग्रह)

संगहणं संगिण्हइ संगिज्झंते व तेण जं भेया ।
तो संगहो त्ति संगहिय पिंडियत्थं वओ जस्स ।। (विभा २२०३)

अशेषविशेषतिरोधानद्वारेण सामान्यरूपतया समस्तं जगदादत्ते इति संग्रहः । (प्रसाटी प २४३)

जो विशेष का परिहार करते हुए सामान्य रूप से सम्पूर्ण वस्तुओं को ग्रहण करता है, वह संग्रह (नय) है ।

१४८७. संगह (सङ्ग्रह)

संगृह्णातीति संग्रहः । (व्यभा ४/२ टी प ५०)

जो संग्रह करता है, वह संग्रह/संग्राहक है ।

१४८८. संगाम (सङ्ग्राम)

संगमतीति संगामो ।[1] (आचू पृ २४३)

जहां दो सेनाओं का संगम/मिलन होता है, वह संग्राम है ।

समस्तं ग्रस्यते ग्रस्यंते वा तस्मिन्निति सङ्ग्रामः । (सूचू १ पृ ७६)

जहां सब कुछ ग्रस्त/नष्ट होता है, वह संग्राम है ।

---

१. 'संग्राम' का अन्य निरुक्त—

सङ्ग्रामयन्तेऽत्र सङ्ग्रामः । (अचि पृ १७७)

जहां संग्राम/युद्ध किया जाता है, वह संग्राम है ।

समं ग्रसते इति संग्रामः । (उचू पृ ५१)

जो एक साथ (बहुतों को) कालकवलित करता है, वह संग्राम है ।

१४८९. संघ (सङ्घ)

संघातयतीति संघः । (व्यभा ४/२ टी प ६७)

जो सबको संहत/सम्मिलित करता है, वह संघ है ।

१४९०. संघयण (संहनन)

संहन्यन्ते—धातूनामनेकार्थत्वाद् दृढीक्रियन्ते शरीरपुद्गलाः कपाटादयो लोहपट्टिकादिनेव येन तत् संहननम् । (नक १ टी पृ ४०)

जिसके द्वारा शरीर के पुद्गल दृढ़ होते हैं, वह संहनन/अस्थि-रचना विशेष है ।

१४९१. संघाडी (सङ्घाटी)

संघातिज्जंति त्ति संघाडी ।
गुणसंघायकारणी वा संघाडी । (निचू ३ पृ ३२६)

जो गुण/तन्तु के संघात/समूह से निर्मित है, वह संघाटी/शाटिका है ।

१४९२. संघात (सङ्घात)

संघातयति—पिण्डीकरोति औदारिकपुद्गलान् येन हेतुना संघातमुच्यते । (प्राक १ टी पृ ४५)

जिस कारण से औदारिक आदि पुद्गल संहृत/पिण्डीभूत होते हैं, वह संघात नामकर्म है ।

१४९३. संघायविमोयग (सङ्घातविमोचक)

कर्मणां ज्ञानावरणीयादीनां संघाताद्विमोचयति प्राणिन इति संघातविमोचकः । (व्यभा ४/२ टी प ६६)

जो कर्म संघात/समूह से विमुक्त करता है, वह संघातविमोचक/जिनशासन है ।

१४९४. संचयन (सञ्चयन)

संचीयत इति सञ्चयनम् । (प्रटी प ९१)

जो संचित किया जाता है, वह संचय/परिग्रह है ।

१४९५. संजम (संयम)

सं एगीभावम्मि अमउवरम एगभावउवरमणं ।
सम्मं जमो वा संजमो मण-वइ-कायाण जमणं तु ॥

(जीतभा ११०७)

एकान्ततः उपरति संयम है ।

मन, वचन और काया का सम्यक् संयमन/नियमन संयम है ।

१४९६. संजय (संयत)

समं यतो संयतो ।[1] (उचू पृ २०३)

सम्—एकीभावेन यतः संयतः । (आवहाटी २ पृ १७)

जो सम्यक् रूप से/समग्र रूप से यत्नवान् है, वह संयत है ।

१४९७. संजलण (सज्वलन)

सम्—ईषद् ज्वलयन्तीति संज्वलनाः । (प्रज्ञाटी प ४६८)

जो (सयमी को) सम्—किंचित् ज्वलित/उत्तेजित करता है, वह सज्वलन (कषाय) है ।

१४९८ संजलण (सज्वलन)

संजलतीति संजलणो । (दशुचू प ३९)

जो सज्वलित/उत्तेजित होता है, वह संज्वलन/क्रोधी है ।

१४९९. संजूह (सयूथ)

सङ्गतं—युक्तार्थं यूथं—पदानां पदयोर्वा समूहः संयूथम् ।

(स्थाटी प ४७२)

सगत/युक्तियुक्त अर्थ वाले पदों का यूथ/समूह संयूथ/समास है ।

---

१ सम्यग् यतते सदनुष्ठानं प्रतीति संयतः । (उशाटी प ४१६)

१५००. संजोग (संयोग)

संयुज्यत इति संयोगः येन वा संयुज्यते स संयोगः ।

(उपू पृ १५)

जो संयुक्त करता है, वह संयोग है ।

१५०१. संजोग (संयोग)

संयुज्यते संयोजनं वा संयोगः । (आटी प १०१)

जो संयुक्त होता है, वह संयोग/धन-धान्य आदि है ।

१५०२. संजोयणा (सयोजना)

संयोज्यन्ते सम्बध्यन्तेऽसंख्यैर्भवैर्जन्तवो यैस्ते संयोजनाः ।

(पंसंटी प ११२)

जिससे जीव असंख्य भवो से संयुक्त/सम्बद्ध होता है, वह सयोजना/अनन्तानुबधी कषाय है ।

१५०३. संठाण (संस्थान)

संतिष्ठतेऽनेनाकारविशेषेण वस्त्विति संस्थानम् ।

(उशाटी प ५६२)

जिस आकार-विशेष मे वस्तु स्थित होती है, वह संस्थान है ।

सन्तिष्ठन्त एभिः स्कन्धादय इति संस्थानानि ।

(उशाटी प ६७७)

स्कंध आदि जिसमें रूपायित होते हैं, वे संस्थान हैं ।

१५०४. संथव (संस्तव)

संस्तूयते येन संस्तवः । (उचू पृ १५१)

जिसके द्वारा पहचान प्राप्त की जाती है, वह संस्तव है ।

१५०५. संथार (संस्तार)

संस्तरन्ति साधवोऽस्मिन्निति संस्तारः । (व्यभा ४/३ टी प ७)

जिसमे साधु रहते हैं, वह संस्तार/उपाश्रय है ।

१५०६. संधारणा (सधारणा)

सं एगीभावम्मी, 'धी धरणे' ताणि एव भावेणं ।
धारेयत्थपयाणि तु, तम्हा संधारणा होति ।।
(जीतभा ६५७)

एक साथ धारणीय पदो को धारण करना संधारणा/धारणा व्यवहार है ।

१५०७. संधि (सन्धि)

सन्धीयते असौ सन्धिः । (आटी प १३०)

जिसका सन्धान किया जाता है, वह सधि/कर्त्तव्यकाल है ।

१५०८. संधिचारि (सन्धिचारिन्)

संधि चरति संधिचारी । (आचू पृ ३४६)

जो सधि/विवर को देखता है, वह सधिचारी है ।

१५०९. संनिचय (सन्निचय)

सम्यग् निश्चयेन चीयत इति सन्निचयः ।[1] (आटी प १३०)

चीनी, द्राक्षा आदि का सग्रह सन्निचय है ।

१५१०. संनिहि (सन्निधि)

सम्यग् निधीयत इति सन्निधिः ।[2] (आटी प १३०)

विनाशशील द्रव्यो का सन्निधान/सस्थापन सन्निधि है ।

१५११. संपणिवाय (संप्रणिपात)

सम्यक्—समीचीनतया प्रकर्षेण निपतनं—संप्रणिपातः ।
(प्रसाटी प १५)

सम्यक् प्रकार से अत्यन्त झुक कर नमन करना संप्रणिपात है ।

---

१. अविनाशिद्रव्याणां अभयासितामृद्वीकादीनां सङ्ग्रहः सन्निचयः । (आटी प १३०)

२. विनाशिद्रव्याणां दध्योदनादीनां संस्थापनं सन्निधिः ।(आटी प १३०)

१५१२. संपत्त (सम्प्राप्त)

सोभणेण पगारेण पत्ते संपत्ते । (दजिचू पृ १६६)

जो अच्छे ढंग से प्राप्त है, वह सम्प्राप्त है ।

१५१३. संपराय (सम्पराय)

संपरीत्यस्मिन्निति सम्परायः । (सूचू १ पृ १४०)

संपरायम्ति—भृशं पर्यटन्त्यस्मिन् जन्तव इति सम्परायः । (उशाटी प ४७८)

जिसमें प्राणी पर्यटन—भ्रमण करते हैं, वह संपराय/संसार है ।

१५१४. संपराय (सम्पराय)

संपर्येति—पर्यटति अनेन संसारमिति संपरायः । (उशाटी प ५६८)

जिससे संसार-भ्रमण करना पड़ता है, वह संपराय/लोभकषाय है ।

१५१५. संपातिम (सम्पातिम)

आहच्च आगत्य सव्वतो पतति संपतति—इति संपातिमा । (आचू पृ ३१)

सहसा सब ओर से आकर जो प्राणी गिरते हैं, वे सम्पातिम हैं ।

सम्पतितुमुत्प्लुत्योत्प्लुत्य गन्तुमागन्तुं वा शील येषां ते सम्पातिमाः । (आटी प ५५)

जो फुदक-फुदक कर आते जाते हैं, वे सम्पातिम हैं ।

१५१६. संबद्ध (सम्बद्ध)

समस्तं बद्धाः संबद्धाः । (सूचू १ पृ ६०)

जो सम्पूर्णरूप से बद्ध है, वह सम्बद्ध है ।

१५१७. संबाह (सम्बाध)

समिति—भृशं बाध्यन्तेऽस्मिन् जना इति संबाधः ।
(उशाटी प ६०५)

जहां लोगो की अत्यन्त संकुलता है, वह संबाध/भीड़ है ।

१५१८. संभम (संभ्रम)

संभ्रमति तस्मिन्निति संभ्रमः । (सूचू १ पृ ६६)

जिसमे व्यक्ति सभ्रमित/आकुल-व्याकुल होते हैं, वह संभ्रम है ।

१५१९. संभरण (सम्भरण)

सम्भ्रियते धार्यते सम्भरणम् । (प्रटी प ६३)

जो धारण किया जाता है, वह सभरण/परिग्रह है ।

१५२०. संभव (सम्भव)

सदा भवनम् सम्भवः । (सूटी २ प ६५)

जो सदा पृथ्वी मे उत्पन्न होते है, वह सम्भव/वनस्पति विशेष है ।

१५२१. संभिन्न (सभिन्न)

समस्तं भिन्नं सं एकीभावे वा सत्तामंगीकृत्यैक जीवाजीवाविभावेण भिन्नं संभिन्नं । दव्वपज्जायभावेण भिन्नं संभिन्नं । सम्यग्भिन्नं वा बज्झब्भंतरतो वा भिन्नं संभिन्नं । (आवचू १ पृ १०७)

जो पूर्णरूप से अथवा भिन्न/पृथक्-पृथक् रूप से ज्ञात किया जाता है, वह सभिन्न है ।

१५२२. संभिन्नसोय (सम्भिन्नश्रोतृ)

सम्भिन्नं—सर्वतः सर्वशरीरावयवैः शृण्वन्तीति सम्भिन्नश्रोतारः ।

जो संपूर्ण शरीर से सुनते हैं, वे सभिन्नश्रोता/विशेष लब्धि-संपन्न हैं ।

संभिन्नानि—प्रत्येकं ग्राहकत्वेन शब्दादिविषयैः व्याप्तानि श्रोतांसि—इन्द्रियाणि येषां ते संभिन्नश्रोतसः ।

जिनकी प्रत्येक इन्द्रिय शब्द आदि सभी विषयों में व्यापृत होती है, वे संभिन्नश्रोता हैं।

सामस्त्येन वा भिन्नान्—परस्परभेदेन शब्दान् शृण्वन्तीति संभिन्नश्रोतारः। (प्रटी प १०४)

जो सम्मिलित शब्दों को भिन्न-भिन्न रूप में सुनते हैं, वे संभिन्नश्रोता हैं।

१५२३. संभूत (सम्भूत)

सम्मं भवति संभूतं।

जो अच्छे प्रकार से होता है, वह संभूत है।

संभितं वा संभूतं। (आचू पृ ९८)

जो पुष्ट और संस्कारित होता है, वह संभूत है।

१५२४. संभोग (सम्भोग)

सम्—एकत्र भोगो—भोजनं सम्भोगः।[1] (स्थाटी प १३३)

एक मंडली मे भोजन करना संभोग है।

समिति—संकरेण—स्वपरलाभमीलनात्मकेन भोगः संभोगः। (उशाटी प ५८७)

स्व और पर लाभ का सम्मिलित भोग/सेवन संभोग है।

१५२५. संमोह (सम्मोह)

सम्मुह्यतीति सम्मोहः। (स्थाटी प २६५)

जो समूढ बनाता है, वह सम्मोह है।

१५२६. संयत (संयत)

संयच्छति स्म सम्यगुपरमति स्म यावज्जीवं सर्वसावद्ययोगादिति संयतः। (प्राक २ टी पृ ३)

जो जीवनभर के लिए सर्वसावद्ययोग से उपरमण करता है, वह संयत/संयमी है।

---

१. एकमण्डलीकभोक्तृत्वम्। (उशाटी प ५८७)

१५२७. संलेहणा (संलेखना)

संलिख्यतेऽनया शरीरकषायादीनि संलेखना।[1]

(आवहाटी २ पृ २३३)

संलिख्यते—कृशीक्रियतेऽनयेति संलेखना। (भटी प १२७)

शरीर और कषाय जिसके द्वारा कुरेदे जाते हैं, कृश किये जाते हैं, वह सलेखना है।

१५२८. संवच्छर (सवत्सर)

संवसन्ति तस्मिन्निति संवत्सरः[2]**।** (सूचू २ पृ ४४४)

(समस्त ऋतुए) जिसमे सम्यक् रूप से अवस्थान/वर्तन करती हैं, वह सवत्सर है।

१५२९. संवट्ट (सवर्त्त)

संवर्त्तन्ते—पिण्डीभवन्त्यस्मिन् भयत्रस्ता जना इति संवर्त्तः।

(उशाटी प ६०५)

जहा भयभीत लोग एकत्र होते हैं, वह सवर्त्त है।

१५३०. संवट्टग (सवर्तक)

सवर्त्तयति—नाशयतीति संवर्तकः। (नटि पृ १०३)

जो भरतक्षेत्र की पृथ्वी के संपूर्ण दोषो का अपने प्रशस्त जल से सवर्त्तन/नाश करता है, वह सवर्त्तक (मेघ) है।

१५३१. संवर (सवर)

संव्रियते—कर्मकारणं प्राणातिपातादि निरुध्यते येन परिणामेन स संवरः। (स्थाटी प १७)

संव्रियते—निरुध्यते आत्मतडागे कर्मजलं प्रविशदेभिरिति संवराः।

(प्रटी प २)

जो कर्म-प्रवेश का सवरण/निरोध करते हैं, वे संवर/व्रत, अप्रमाद आदि हैं।

---

१. अनशन से पूर्व की जाने वाली तपस्या।

२. संवसन्ति ऋतवोऽत्र संवत्सरः। (वा पृ ५१७६)

१५३२. संवाह (सम्वाह)

यत्र पर्वतनितम्बादिदुर्गे परचक्रभयेन रक्षार्थं धान्यादीनि संवहन्ति स संवाहः । (स्थाटी प २८४)

जहां धान्य आदि का संवहन/रक्षण किया जाता है, वह संवाह/दुर्गविशेष है ।

१५३३. संवुडचारि (संवृतचारिन्)

संवृतः संयमोपक्रमः तच्चरणशीलः संवृतचारी । (सूचू १ पृ ३८)

जो संयममय आचरण करते हैं, वे संवृतचारी हैं ।

१५३४. संवेयणी (संवेदनी)

संवेगयति—संवेगं करोतीति संवेद्यते वा संबोध्यते संवेज्यते वा—संवेगं ग्राह्यते श्रोताऽनयेति संवेदनी संवेजनी वेति ।

(स्थाटी प २०४)

जो संवेग/भवविराग पैदा करती है, संबुद्ध करती है, वह सवेदनी (कथा) है ।

१५३५. संसत्त (संसक्त)

गुणैर्दोषैश्च संसज्यते—मिश्रीभवतीति संसक्तः । (प्रसाटी प २७)

जो गुणो/व्रतो का पालन करता है, साथ-साथ दोषों का सेवन भी करता है, वह संसक्त/शिथिलाचारी मुनि है ।

१५३६. संसप्पग (संसर्पक)

संसप्पंतीति संसप्पगा । (आचू पृ २९०)

जो गति करते हैं, वे संसर्पक/चींटी आदि प्राणी हैं ।

१५३७. संसय (संशय)

संसेतीति संसयो । (आचू पृ १५९)

संशेतेऽस्मिन् मन इति संशयः । (उशाटी प ५२४)

जिससे मन संदेहशील होता है, वह संशय है ।

संशय्यते च अर्थद्वयमाश्रित्य बुद्धिरिति संशयः । (उचू पृ १८१)

जहां (दो अर्थों को लेकर) बुद्धि सन्दिग्ध बनती है, वह संशय है ।

१५३८. संसार (संसार)

संसरणम्—इतश्चेतश्च परिभ्रमणं संसारः। (स्थाटी प १९१)

जिसमे प्राणी भ्रमण करता है, वह संसार है।

१५३९. संसुद्ध (सशुद्ध)

समस्तं सुद्ध संसुद्धं। (आवचू २ पृ २४२)

जो संपूर्ण रूप से शुद्ध है, वह सशुद्ध है।

१५४०. संसेइम (सस्वेदिम)

सम्—एकीभावेन स्वेदः संस्वेदः तेन निर्वृत्तं संस्वेदिमम्।
(बृटी पृ २७०)

जो स्वेद/सघन वाष्प से निष्पन्न होते हैं, वे संस्वेदिम हैं।

१५४१. सक्क (शक्र)

शक्नोतीति शक्रः।[1] (उचू पृ १८१)

जो (दैत्यो का नाश करने मे) समर्थ है, वह शक्र/इद्र है।

शक्तियोगाच्छक्रः।[2] (उपाटी पृ १२४)

जो शक्ति-सपन्न है, वह शक्र है।

१५४२. सच्च (सत्य)

सद्भ्यो हितं सच्चं। (आवचू २ पृ २४२)

जो सत्/श्रेय के लिए हितकर है, वह सत्य है।

१५४३. सज्ज (षड्ज)

षड्भ्यो जातः षड्जः।[3] (अनुद्वामटी प ११७)

जो षट्/छह स्थानो से उत्पन्न होता है, वह षड्ज (स्वर) है।

---

१. **शक्नोति दैत्यान् नाशयितुमिति शक्रः।** (शब्द ५ पृ ७)

२. 'शक्र' का अन्य निरुक्त—
शक्रं नाम सिंहासनमस्यास्तीति शक्रः। (अचि पृ ४०)
जो शक्र नाम के सिंहासन से सुशोभित होता है, वह शक्र है।

३. **"षड्जः षड्भ्यस्तु जायते।
कण्ठोरस्तालुनासाभ्यो जिह्वाया दशनादपि॥** (अचि पृ ३१४)

१५४४. सज्झाय (स्वाध्याय)

शोभनं आ—मर्यादया अध्ययनं—श्रुतस्याधिकमनुसरणं स्वाध्यायः।[1]
(स्थाटी प ३३१)

विधि के अनुसार श्रुत का पारायण करना स्वाध्याय है।

१५४५. सठ (शठ)

शाठ्येति शाममेवेति शठः।[1] (उचू पृ १६४)

जो शठता/धोखा करता है, वह शठ है।

जो प्रियभाषण कर सत्य का शमन/अवगुंठन करता है, धोखा देता है, वह शठ है।

१५४६. सणप्पय (सनखपद)

सह नखैः—नखरात्मकैर्वर्त्तन्त इति सनखानि पदानि येषां ते सनखपदाः। (उशाटी प ६९९)

जिनके पैर नख से युक्त हैं, वे सनखपद/सिंह आदि हैं।

१५४७. सण्णा (संज्ञा)

संजानातीति संज्ञा। (सूचू २ पृ ३२७)

सम्यक् रूप से जानना संज्ञा है।

१५४८. सण्णा (संज्ञा)

संज्ञायतेऽनयाऽयं जीव इति संज्ञा।[2] (प्रसाटी प २७३)

जिस संवेगात्मक प्रवृत्ति के द्वारा 'यह जीव है'—ऐसा जाना जाता है, वह संज्ञा है।

१५४९. सण्णिवाय (सन्निपात)

सम्—इति संहतरूपतया नि—इति नियतं पतनं गमनमेकत्रवर्तनं सन्निपातः। (नक ४ टी पृ १९०)

---

१. सुष्ठु आ मर्यादया कालवेलापरिहारेण पौरुष्यपेक्षया वा अध्यायः—अध्ययनं स्वाध्यायः। (प्रसाटी प ६८)

२. संज्ञा—वेदनीय मोहोदयाश्रिता ज्ञानावरणदर्शनावरणक्षयोपशमाश्रिता च विचित्राहारादिप्राप्तिक्रिया। (प्रसाटी प २७३)

जहा एक से अधिक भाव नियत रूप से एक साथ वर्तन करते हैं, वह सन्निपात (भाव) है।

१५५०. सण्णिहाण (सन्निधान)

सन्निधीयते क्रिया अस्मिन्निति सन्निधानम्। (स्थाटी प ४१०)

सन्निधीयते—आधीयते यस्मिस्तत् सन्निधानम्। (अनुद्वामटी प १२३)

जिसमे क्रिया सन्निहित होती है, वह सन्निधान/आधार है।

१५५१. सण्णिहि (सन्निधि)

संनिधीयतेऽनयाऽऽत्मा दुर्गताविति संनिधिः। (दटी प ११७)

जो आत्मा को दुर्गति मे सन्निहित करती है, वह सन्निधि/सग्रह है।

सम्यग् निधीयते—अवस्थाप्यत उपभोगाय योऽर्थः स सन्निधिः। (आटी प १०८)

उपभोग के लिए जिसका सचय किया जाता है, वह सन्निधि है।

१५५२. सण्णिहिकामि (सन्निधिकामिन्)

सण्णिहिं कामयतीति सन्निहिकामी। (दजिचू पृ २२०)

जो सन्निधि/सयम की कामना करता है, वह सन्निधिकामी है।

१५५३. सत्त (सत्त्व)

सत्ते सुभासुभेहिं कम्मेहिं तम्हा सत्ते। (भ २/१५)

शुभाशुभ कर्मों से जिसकी सत्ता है, वह सत्त्व/प्राणी है।

१५५४. सत्थ (शास्त्र)

शास्यतेऽनेनेति शास्त्रम्। (आवनिदी पृ ४४)

जिसके द्वारा (सूत्रार्थ) शासित किया जाता है, वह शास्त्र है।

१५५५. सत्थ (शस्त्र)

शस्यते अनेनेति शस्त्रम् । (सूत्र १ पृ १७७)

जिसके द्वारा मारा जाता है, वह शस्त्र है।

१५५६. सत्थवाह (सार्थवाह)

सार्थो विद्यते यस्येति व्युत्पत्त्या सार्थवाहः ।[1]
यस्य वा वशेन सार्थो व्रजति सः सार्थवाहः । (बृटी पृ ८६८)

जिसके साथ सार्थ/संघ होता है, वह सार्थवाह है।

सार्थ जिसके वशवर्ती होकर चलता है, वह सार्थवाह है।

१५५७. सत्थु (शास्तृ)

शासतीति शास्ता । (सूत्र १ पृ २३६)

जो शासन करता है, वह शास्ता है।

१५५८. सद्द (शब्द)

शब्द्यते—प्रतिपाद्यते वस्त्वनेनेति शब्दः । (आवमटी प ३७५)

जिसके द्वारा वस्तु का प्रतिपादन किया जाता है, वह शब्द है।

शप्यते वाऽऽहूयते वस्त्वनेनेति शब्दः । (विभामहेटी २ पृ १३)

वस्तु जिसके द्वारा पहचानी जाती है, वह शब्द है।

१५५९. सद्दिय (शब्दित)

शब्दः—प्रसिद्धिः स संजातो यस्य तच्छब्दितम् । (ज्ञाटी प ४)

जिसे शब्द/प्रसिद्धि प्राप्त है, वह शब्दित/प्रसिद्ध है।

१५६०. सप्पि (सर्पिन्)

सर्पतीति सर्पी ।[1] (प्रटी प १६२)

जो बैशाखी के सहारे सर्पण/गमन करता है, वह सर्पी/पंगु है।

---

१. सार्थान् सधनान् सरतो वा पाथ्यान् वहति सार्थवाहः ।
(अचि पृ १९१)

१. सर्पी—पीठसर्पी स किल पाणिगृहीतकाष्ठः सर्पतीति ।
(प्रटी प १६२)

१५६१. सबल (शबल)

शबलयन्ति—कर्बुरीकुर्वन्त्यतीचारकलुषीकरणतश्चारित्रमिति शबलाः । (उशाटी प ६१५)

जो चारित्र को शबल/धब्बो युक्त कर देते हैं, वे शबल (दोष) हैं ।

१५६२. सब्भ (सभ्य)

सभाया योग्यं सभ्यम् । (बृटी पृ २३४)

जो सभा के योग्य है, वह सभ्य है ।

१५६३. सब्भाव (सद्भाव)

स्वे भावे ठितो सब्भावो ।

जो अपने भाव मे स्थित है, वह सद्भाव है ।

स सोभणो वा भावो सब्भावो ।

अच्छा भाव सद्भाव है ।

स विज्जमाणो वा भावो सब्भावो । (नचू पृ ११)

जो विद्यमान है, वह सद्भाव है ।

१५६४. समण (श्रमण)

श्राम्यतीति श्रमणः ।[1] (आटी प ४०२)

जो श्रम/तपस्या करते हैं, वे श्रमण हैं ।

१५६५. समण (समण)

समिति—समतया शत्रुमित्राविष्वणन्ति—प्रवर्त्तन्त इति समणाः । (स्थाटी प २७२)

जो समता का आचरण करते हैं, वे समण/श्रमण हैं ।

सगतं वा यथाभवत्येवमणति—भाषते समणः । (भटी प ७)

जिसकी कथनी-करणी समान है, वह समण/श्रमण है ।

---

१. **श्राम्यति तपस्यतीति श्रमणः ।** (व्यभा ४/२ टी प २७)

१५६६. समण (समनस्)

सम्यक् मनो समणे । (सूचू १ पृ ६०)

जिसका मन सम्यक् है, वह समना/श्रमण है।

समानं—स्वजनपरजनादिषु तुल्यं मनो येषां ते समनसः ।

(स्थाटी प २७२)

स्वजन और परजन में जिनका मन समान होता है, वे समना/श्रमण हैं ।

सह शोभनेन मनसा वर्त्तत इति समनाः । (भटी प ७)

जिसके श्रेष्ठ मन है, वह समना/श्रमण है।

१५६७. समण (शमन)

शम्यन्ते उपशमं नीयन्ते रोगा यैस्तानि शमनानि ।

(व्यभा २ टी प ८६)

जिनके द्वारा रोग शमित/उपशात होते हैं, वे शमन/औषधिया हैं।

१५६८. समणोवासग (श्रमणोपासक)

विशिष्टोपदेशार्थं श्रमणानुपासते—सेवन्त इति श्रमणोपासकाः ।

(सूटी २ प ७६)

जो विशिष्ट उपदेश के लिए श्रमणो की उपासना करते हैं, वे श्रमणोपासक/श्रावक हैं।

१५६९. समभिरूढ (समभिरूढ)

सम्—एकीभावेन अभिरोहति—व्युत्पत्तिनिमित्तमास्कन्दति शब्द-प्रवृत्तौ यः स समभिरूढः । (आवमटी प ३७६)

व्युत्पत्ति के अनुसार जो शब्द प्रवृत्त होता है, वह समभिरूढ (नय) है।

१५७०. समयण्णु (समयज्ञ)

स्वसमयपरसमयौ जानातीति स्वसमयपरसमयज्ञः ।

(आटी प १३१)

जो समय/सिद्धांत को जानता है, वह समयज्ञ है।

१५७१. समवसरण (समवसरण)

समवसरंति जेसु दरिसणाणि दिट्ठीओ वा ताणि समोसरणाणि ।

(सूचू १ पृ २०७)

जहां अनेक दर्शन/दृष्टियां समवसृत होती है, वह समवसरण है ।

१५७२. समवाय (समवाय)

जीवा समासिज्जंति समं आसइज्जति । समं ति—ण विसमं, जहावत्थित [अनूनातिरित्तं इत्यर्थः । आसइज्जति—आधीयते बुद्ध्या ज्ञानेन गृह्यं तेत्यर्थः । (नचू पृ ६४)

जिसमे ज्ञान या बुद्धि के द्वारा जीव आदि पदार्थों का यथार्थ आकलन किया गया है, वह समवाय (सूत्र) है ।

१५७३. समादाण (समादान)

समादीयते कर्म एभिरिति समादानानि । (जीटी प १२१)

जिनके द्वारा कर्मों का आदान/ग्रहण किया जाता है, वे समादान/कर्म-हेतु हैं ।

१५७४. समास (समास)

भिण्णपयसमसण समासो । (दअचू पृ ७)

जो भिन्न पदो को समस्त/सयुक्त करता है, वह समास है ।

१५७५. समाहिमण (समाधिकमनस्)

समेन वा उपशमेन अधिकं मनो यस्य समाधिकमनाः ।

(प्रटी प १११)

जिसका मन सम/उपशम मे अधिक आकृष्ट है, वह समाधिकमना/समाहितमना है ।

१५७६. समाहिमण (समाहितमनस्)

समं—तुल्यं रागद्वेषानाकलितं आहितं—उपनीतमात्मनि मनो येन स समाहितमनाः ।

जिसका मन समत्व मे लीन है, वह समाहितमना है।

समाहितं वा स्वस्थं मनो यस्य स समाहितमनाः। (प्रटी प १११)

जिसका मन स्वस्थ है, वह समाहितमना है।

१५७७. समाहिय (समाहित)

सम्यगाहिताः तपःसंयम उद्युक्ताः समाहिताः। (आटी प १५६)

जो तप और संयम मे संलग्न हैं, वे समाहित हैं।

१५७८. समिइ (समिति)

सम्ममयति त्ति समिती।[1] (जीतभा ८०४)

जिसके द्वारा (साधक) सम्यक् गति/प्रवृत्ति करता है, वह समिति है।

१५७९. समिय (समित)

सम्मं इतो समितो। (आचू पृ ३१५)

जो सम्यक्रूप से प्रवृत्ति करता है, वह समित/मुनि है।

१५८०. समुग्घाय (समुद्घात)

सम्यक् अपुनर्भावेनोत्—प्राबल्येन कर्मणो हननं घातः प्रलयो यस्मिन् प्रयत्नविशेषेऽसौ समुद्घात इति। (आवहाटी १ पृ २९३)

जिस प्रयत्न मे कर्मों का प्रबलता से क्षय होता है, वह समुद्घात है।

१५८१. समुच्छेय (समुच्छेद)

सामस्त्येन प्रकर्षेण च छेदः समुच्छेदः। (स्थाटी १ प ३९३)

समग्रता से उखाड़ देना समुच्छेद/विनाश है।

१५८२. समुट्ठित (समुत्थित)

समं संगतं वा संजमउत्थाणेण उट्ठितो समुट्ठितो। (आचू पृ ७७)

संयम के उत्थान/पराक्रम मे जो सम्यक्रूप से उपस्थित है, वह समुत्थित है।

---

1. सम्यक्—सर्वविद्प्रवचनानुसारितया इतिः—आत्मनः चेष्टा समितिः। (उशाटी प ५१४)

१५८३. समुदाण (समुदान)

समिति—सम्यक् प्रकृतिबन्धाविभेदेन देशसर्वोपघातिरूपतया च आदानं—स्वीकरणं समुदानम् । (स्थाटी प १४७)

सम्यक् आदान/स्वीकरण समुदान (क्रियाविशेष) है ।

१५८४. समुदाण (समुदान)

समेच्च उवादीयते समुदाणं । (दअचू पृ २३०)

जो सामूहिक रूप से ग्रहण किया जाता है, वह समुदान (भिक्षा) है ।

१५८५. समुद्द (समुद्र)

समन्तादुनत्ति उन्ना वा पृथिवीं कुर्वत अनेनेति समुद्रः । (उचू पृ १७२)

जो चारो ओर से पृथिवी को आर्द्र कर देता है, वह समुद्र है ।

सह मुद्रया—मर्यादया वर्तन्त इति समुद्राः ।[1] (अनुद्वामटी प ८२)

जो मुद्रा/मर्यादा मे रहते हैं, वे समुद्र हैं ।

---

१. 'समुद्र' के अन्य निरुक्त—

समुन्दन्ति आर्द्रीभवन्ति वर्षाकालनद्योऽस्मात् समुद्रः । (अभि पृ २३८)
बरसाती नदिया जिससे आर्द्र होती हैं, भरती हैं, वह समुद्र है ।

चन्द्रोदयात् आपः सम्यगुन्दन्ति क्लिद्यन्ति अत्र समुद्रः ।
चन्द्रमा की कलाओ के साथ-साथ जिसका जल बढता है, वह समुद्र है ।

सम्यगुद्गतो रोऽग्निरत्र समुद्रः ।
जिससे र—अग्नि पैदा होती है, वह समुद्र है ।

मुदं राति ददाति समुद्रः ।
जो मुद/प्रसन्नता प्रदान करता है, वह समुद्र है ।

मुद्राणि रत्नादीनि तैः सह वर्त्तते इति समुद्रः । (शब्द ५ पृ २७८)
जो मुद्र/रत्नो से युक्त है, वह समुद्र है ।

१५८६. समुद्दपाल (समुद्रपाल)

समुद्रेण पाल्यते स्मेति समुद्रपालः । (उपाटी प ४८२)

जो समुद्र में उत्पन्न है, पालित है, वह समुद्रपाल/श्रेष्ठिपुत्र है ।

१५८७. समोयार (समवतार)

समसंख्यावतारो समोतारो । (अनुद्वाचू पृ २३)

समसंख्या का अवतरण समवतार है ।

सम्मं समस्तं वा ओतारयतित्ति समोतारे । (अनुद्वाचू पृ २८८)

सम्यक् अवतरण समवतार है ।

समस्त का अवतरण समवतार है ।

समवतरणं—वस्तूनां स्वपरोभयेष्वन्तर्भावचिन्तनं समवतारः ।
(अनुद्वामटी प २२८)

स्व, पर और उभय—सब मे वस्तुओं का अन्तर्भाव करना समवतार है ।

१५८८. सम्म (सम्यक्)

समञ्चतीति वा सम्यक् । (पंटी प ७)

जो सम/औचित्य को प्राप्त होता है, वह सम्यक् है ।

१५८६. सम्मत्तदंसि (सम्यक्त्वदर्शिन्)

सम्मं पस्संतीति सम्मत्तदंसिणो । (सूचू १ पृ १७२)

जो सम्यक् देखते हैं, वे सम्यक्दर्शी/सम्यक्त्वदर्शी हैं ।

१५६०. सयंगाह (स्वयंग्राह)

स्वयमात्मना गृह्णन्तीति स्वयंग्राहाः । (व्यभा २ टी प ५)

जो स्वयं भिक्षा ग्रहण करते हैं, वे स्वयंग्राह/भिक्षुक हैं ।

१५६१. सयंभ (स्वयंभू)

स्वयं भवतीति स्वयंभूः । (सूचू १ पृ ४१)

जो स्वयं उत्पन्न होता है, वह स्वयंभू/ब्रह्मा/विष्णु/ईश्वर है ।

१५९२. सयक्कतु (शतक्रतु)

कतू पडिमा तासिं सतं फासितं जेण सो सयक्कतू।[1] (दश्रुचू प ६४)

जिसने सौ बार क्रतु/प्रतिमा का स्पर्श/पालन किया है, वह शतक्रतु/इन्द्र है।

१५९३. सयग्घी (शतघ्नी)

शतं घ्नन्तीति शतघ्न्यः। (उचू पृ १८२)

जो सौ व्यक्तियों को एक साथ मारती है, वह शतघ्नी/शस्त्रविशेष है।

१५९४. सयण (शयन)

सुप्पति जत्थ णं सयणं। (आचू पृ ३१२)

जहां सोया जाता है, वह शयन है।

१५९५. सयण (शयन)

शय्यते—स्थीयते येष्विति शयनानि। (आटी प ३०७)

जिन पर बैठा जाता है, वे शयन हैं।

१५९६. सर (स्वर)

अक्षस्य चैतन्यस्य स्वरणात् संशब्दनात् स्वराः।

(विभामहेटी १ पृ २१६)

जीव/चैतन्य का जो शब्द है, वाणी है, वह स्वर है।

१५९७. सरक्खर (स्वराक्षर)

अक्खरं अक्खरं सरंति—गच्छंति सरंति[2] **वा इत्यतो सरक्खरं।**

(नचू पृ ५४)

जो प्रत्येक अक्षर के साथ सरण/सयुक्त होते हैं, वे स्वर हैं।

जो उच्चारण मे सहयोगी बनते हैं, वे स्वर हैं।

---

१. (क) **कार्तिकश्रेष्ठित्वे शतं क्रतूनाम्—अभिग्रहविशेषाणां यस्यासौ शतक्रतुः।** (उपाटी पृ १२४)

(ख) 'शतक्रतु' का अन्य निरुक्त—

शतं क्रतवोऽस्य शतक्रतुः। (वा पृ ५०८१)

जिसने सौ बार क्रतु/यज्ञ किया है, वह शतक्रतु/इन्द्र है।

२. स्वर्, स्वृ—to sound (आप्टे पृ १७४४)

१५९८. सरण (शरण)

जं अस्सिता णिब्भयं वसंति तं सरणं ।[1] (आचू पृ ५३)

जिसके आश्रय मे निर्भय रूप से वास किया जाता है, वह शरण/गृह है ।

श्रयंति तमिति शरणम् । (सूचू १ पृ ४५)

जिसका आश्रय लिया जाता है, वह शरण है ।

१५९९. सरस्सती (सरस्वती)

सरो से अत्थि त्ति सरस्सती ।[2] (दश्चू पृ १५९)

जो सर/प्रसरण करती है, वह सरस्वती/भाषा है ।

जो सर/अर्थवान् होती है, वह सरस्वती है ।

१६००. सराग (सराग)

सह रागेण—अभिष्वङ्गेण मायाविकल्पेन य स सरागः । (स्थाटी प ४९)

जो राग/आसक्ति से युक्त है, वह सराग है ।

१६०१. सरासण (शरासन)

शरा अस्यन्ते—क्षिप्यन्तेऽस्मिन्निति शरासनः । (जीटी प २५९)

जिसमे बाण रखे जाते हैं, वह शरासन है ।

१६०२. सरीर (शरीर)

सीर्यत इति शरीरं । (आचू पृ १४६)

उत्पत्तिसमयादारभ्य प्रतिक्षणमेव शीर्यत इति शरीरम् । (स्थाटी प २८४)

जो उत्पत्तिकाल से लेकर प्रतिक्षण शीर्ण/क्षीण होता है, वह शरीर है ।

---

१. 'शरण' का अन्य निरुक्त—
शीर्यते शीताद्यनेन शरणम् । (अचि पृ २१९)
जो शीत आदि को शीर्ण/नष्ट करता है, वह शरण/गृह है ।

२. **सरः—प्रसरणमस्त्यस्याः सरस्वती । सरो ज्ञानं विद्यतेऽस्यामिति वा ।** (अचि पृ ५९)

सरतीति शरीरं। (आचू पृ २०५)

जो गति करता है, वह शरीर है।

१६०३. सरूवि (सरूपिन्)

सह रूपेण—मूर्त्या वर्त्तंत इति सरूपिणः। (स्थाटी प ३६)

जिनके रूप/संस्थान, आकृति होती है, वे सरूपी/सशरीर हैं।

१६०४. सल्ल (शल्य)

शलति शूलयति वा शल्यम्।[1] (उचू पृ १८५)

शल्यते—बाध्यते अनेनेति शल्यम्। (स्थाटी प १४३)

जो गति करता है/प्रवेश करता है, वह शल्य है।

जो शालित/पीडित करता है, वह शल्य है।

१६०५. सल्लग (सल्लग)

'रगे लगे संवरणे' शोभनं लगनं संवरणं, इन्द्रियसंयमरूपं सल्लगः।

(सूटी २ प ६८)

इन्द्रियो का सवरण सल्लग/संयम है।

१६०६. सवण (श्रवण)

श्रूयते इति श्रवणम्। (प्रज्ञाटी प ३६६)

जो सुना जाता है, वह श्रवण है।

१६०७ सव्व (सर्व)

स्त्रियते स इति श्रियते वाऽनेनेति सर्वः।[2] (आवहाटी १ पृ ३१८)

जो (समस्त का) समाहार कर लेता है, वह सर्व है।

१६०८. सव्वजोणिय (सर्वयोनिक)

सव्वासु जोणीसु उववज्जंतीति सव्वजोणिया। (आचू पृ ३०५)

जो सब योनियो मे उत्पन्न होते हैं, वे सर्वयोनिक हैं।

---

१. (क) शलत्यन्तर्विशति शल्यम्। (अचि पृ १७४)

(ख) शल्—गतौ, शूल—रुजायाम्।

२. सरति सर्वम्, सर्वतीति वा। (अचि पृ ३२१)

१६०९. सव्वट्ठसिद्ध (सर्वार्थसिद्ध)

सर्वेऽर्थाः सिद्धा इव सिद्धा येषां ते सर्वार्थसिद्धाः ।

(उशाटी प ७०३)

जिनके सब अर्थ सिद्ध हो गए हैं, वे सर्वार्थसिद्ध (देव) हैं ।

१६१०. सव्वदंसि (सर्वदर्शिन्)

सर्वं समस्तं गम्यमानत्वात्प्राणिगणं पश्यति—आत्मवत् प्रेक्षत इत्येवशील:, अभिभूय रागद्वेषौ सर्वं वस्तु समतया पश्यतीत्येवंशील: सर्वदर्शी ।

(उशाटी प ४१४)

जो सब कुछ देखता है, वह सर्वदर्शी है ।

जो सबको समत्व से देखता है, वह सर्वदर्शी है ।

१६११ सव्वघत्ता (सर्वघत्ता)

सर्वं जीवाजीवाख्यं वस्तु घत्तं—निहितमस्यां विवक्षायामिति सर्वघत्ता ।

जिसमें जीव-अजीव समस्त पदार्थ विवक्षित हैं, वह सर्वघत्ता विवक्षा है ।

सर्वं बध्नातीति सर्वघं—निरवशेषवचनं सर्वघमात्तं—आगृहीतं यस्यां विवक्षायां सा सर्वघत्ता । (आवहाटी १ पृ ३१८

जो समस्त को ग्रहण करती है, वह सर्वघत्ता विवक्षा है ।

१६१२ सव्वासि (सर्वाशिन्)

सर्वमश्नातीत्येवंशील: सर्वाशी । (व्यभा ३ टी प १०

जो अधिक खाता है, वह सर्वाशी/बहुभोजी है ।

१६१३ ससी (सश्री)

सह श्रिया वर्तत इति सश्री: । (भटी पृ १०६

जो श्री/शोभा से युक्त है, वह सश्री/चन्द्रमा है ।

१६१४. सहसंबुद्ध (स्वयंसम्बुद्ध)

सह—आत्मनैव सार्द्धमनन्योपदेशतः सम्यग्—यथावद् बुद्धो—हेयोपादेयोपेक्षणीयवस्तुतत्त्वं विदितवानिति सहसंबुद्धः ।

(भटी प ८)

जो स्वय/अपनी ही आत्म-पवित्रता से संबुद्ध होता है, वह स्वयंसंबुद्ध/तीर्थंकर आदि है ।

१६१५. सहसंबुद्ध (सहसम्बुद्ध)

सहसा संबुद्धो सहसंबुद्धो । (उचू पृ १८०)

जो सहसा/अकस्मात् संबुद्ध होता है, वह सहसंबुद्ध है ।

१६१६. सहस्सक्ख (सहस्राक्ष)

पंचण्हं से मंतिसयाणं सहस्समक्खीणं । (दश्रुचू प ६४)

पञ्चानां मंत्रिशतानां सहस्रमक्ष्णां भवतीति तद्योगादसौ सहस्राक्षः ।

(उपाटी पृ १२४)

जिसके पाच सौ मत्री अर्थात् सहस्र आखें होती हैं, वह सहस्राक्ष/इन्द्र है ।

१६१७. सहा (सभा)

सत्—सोभणाविहु ज भयंते सभा ।[1]

जिसमे सज्जन लोग एकत्रित होते हैं, वह सभा है ।

पोत्थयवायणं वा जत्थ अण्णतो मणुयाण अच्छणट्ठाणं वा सभा ।

(अनुद्वाहाटी पृ ७६)

जहा शास्त्रो का वाचन होता है, वह सभा है ।

जहां मनुष्य (सोद्देश्य) ठहरते हैं, वह सभा है ।

---

१. (क) संतो भजन्त्येतामिति सभा । (अनुद्वामटी प १४६)
सह भान्त्यस्यामिति सभा । (अचि पृ ११०)

(ख) 'सभा' शब्द का अन्य निरुक्त—
सन्यते भज्यते सभा । (अचि पृ ११०)

१६१८. सहिय (सहित)

सम्यग् ज्ञानक्रियाभ्यां सहितः ।

जो हित/सम्यक् ज्ञान और क्रिया से युक्त है, वह सहित/मुनि है ।

सह हितेन—आयतिपथ्येन अर्थानुष्ठानेन वर्तत इति सहितः ।
(उशाटी प ४१६)

जो हित/भावी कल्याणकारी प्रवृत्ति से युक्त है, वह सहित/मुनि है ।

१६१९. साइम (स्वाद्य)

साएइ गुणे तओ साई । (आवनि १५८८)

सादयति—विनाशयति स्वकीयगुणान् माधुर्यादीन् स्वाद्यमानमिति स्वादिमम् ।[1] (प्रसाटी प ५१)

स्वाद लेते लेते जिसके माधुर्य आदि गुण विनष्ट हो जाते हैं, वे स्वादिम हैं ।

स्वाद्यत इति स्वादिमम् । (आटी पृ २६४)

जिसका आस्वाद लिया जाता है, वह स्वादिम है ।

१६२०. साउणिय (शाकुनिक)

शकुनेन—श्येनलक्षणेन चरन्ति शकुनान् वा घ्नन्तीति शाकुनिकाः ।
(अनुद्वामटी प ११९)

जो बाज पक्षी से शिकार करवाता है, वह शाकुनिक है ।

जो पक्षियों को मारता है, वह शाकुनिक है ।

---

१. तथा स्वादयति रसादीन् गुणान् गुडादिद्रव्यं कर्तृसंयमगुणान् वा यतस्ततः स्वादिमं, हेतुत्वेन तदेवास्वादयतीत्यर्थः । ......न चैतन्निरुक्तं कल्पनामात्रं स्वकीयमिति बोध्यं ।
(प्रसाटी प ५०, ५१)

१६२१. सागरंगमा (सागरङ्गमा)

सागरं—समुद्रं गच्छतीति सागरङ्गमा । (उशाटी प ३५२)

जो सागर की ओर जाती है, वह सागरङ्गमा/नदी है ।

१६२२. सागार (सागार)

सहागारेण—गृहेण वर्तते इति सागारः । (पंटी प १५३)

जो अगार/गृह में रहता है, वह सागार/गृहस्थ है ।

१६२३. सामण्ण (सामान्य)

उपसर्जनीकृतातुल्यरूपाः प्रधानीकृततुल्यरूपाः समतया प्रतीयमानाः सामान्यमिति व्यपदिश्यन्ते । (स्थाटी प १२)

जिसमे असमानता गौण रूप से और समानता प्रधान रूप से जानी जाती है, वह सामान्य है ।

१६२४. सामाइय (सामाजिक)

समाजः—समूहस्तं समवयन्ति सामाजिकाः । (उशाटी प ३५१)

जो समूह मे चलते हैं, वे सामाजिक हैं ।

१६२५. सामुच्छेइय (सामुच्छेदिक)

प्रतिक्षणं समुच्छेदं—क्षयं वदन्तीति सामुच्छेदिकाः ।

(औटी पृ २०२)

जो प्रतिक्षण समुच्छेद/विनाश का प्रतिपादन करते हैं, वे सामुच्छेदिक/अश्वमित्र (निह्नव) मतानुयायी हैं ।

१६२६. सायणी (शायिनी)

शाययति—स्वापयति निद्रावन्तं करोति या शेते वा यस्यां सा शायिनी शयनी वा ।[1] (स्थाटी प ४१७)

जो व्यक्ति को सुलाती है, वह शायिनी/मनुष्य की दसमी दशा है ।

---

१. हीणभिन्नसरो दीणो, विवरीओ विचित्तओ ।
दुब्बलो दुक्खिओ सुवई, संपत्तो दसमिं दसं । (स्थाटी प ४१७)

१६२७. सायाणुग (सातानुग)

सायं अणुगच्छंतीति सायाणुगा। (सूचू १ पृ ७०)

जो साता/सुख का अनुगमन करते हैं, वे सातानुग/सुविधा-वादी हैं।

१६२८. सारूविय (सारूपिक)

समानं रूपं सरूपं तेन चरतीति सारूपिकः।

(व्यभा ४/३ टी प २६)

साधु के सदृश वेश धारण कर जो साधु जैसा आचरण करता है, वह सारूपिक/मुनि और गृहस्थ के बीच की अवस्था वाला साधक है।

१६२९. सावग (श्रावक)

श्रान्ति पचन्ति तत्त्वार्थश्रद्धानं निष्ठां नयन्तीति श्राः, तथा वपन्ति—गुणवत्सुप्तक्षेत्रेषु धनबीजानि निक्षिपन्तीति वाः, तथा किरन्ति—क्लिष्टकर्मरजो विक्षिपन्तीति काः, ततः कर्मधारये श्रावक इति भवति। (स्थाटी प २७२)

श्रा/वह व्यक्ति जो श्रद्धा को पार तक ले जाता है, व/जो धनबीज का विभिन्न क्षेत्रों में वपन करता है, क/जो क्लिष्ट कर्मों को नष्ट करता है अर्थात् जो श्रद्धालु, दानी और कर्मक्षय में निपुण है, वह श्रावक है।

श्रावयतीति श्रावकः। (दश्रुचू प ३५)

जो सुनाता है, वह श्रावक है।

शृणोति साधुसमीपे जिनप्रणीतां सामाचारीमिति श्रावकः।

(अनुद्वामटी प २७)

जो साधुओं के पास आचारविधि को सुनता है, वह श्रावक है।

१६३०. सावज्ज (सावद्य)

अवज्जं—गरहितं, सह तेण सावज्जो। (दशचू पृ १७५)

जो अवद्य/पापयुक्त है, वह सावद्य है।

१६३१. सावेक्ख (सापेक्ष)

सह अपेक्षा गच्छस्येति गम्यते येषां ते सापेक्षाः ।

(व्यभा १ टी प ५२)

जिनके गच्छ/गण की अपेक्षा है, वे सापेक्ष/गच्छवासी मुनि हैं ।

१६३२. सालि (शालि)

शालतीति शालिः ।[1] (उचू पृ २१०)

जो श्लाघ्य/प्रशस्य है, वह शालि/धान्य है ।

१६३३. सासण (शासन)

सासिज्जति—णाये पडिवायिज्जति जेण तं सासणं ।

(दअचू पृ २६०)

जिसके द्वारा न्याय का प्रतिपादन किया जाता है, वह शासन है ।

शास्तीति शासनम् । (उचू पृ २३२)

शासनात् शिक्षणाच्छासनम् । (अनुद्वामटी प ३४)

जो अनुशासित करता है, वह शासन है ।

१६३४. सासय (शाश्वत)

शश्वद्भवतीति शाश्वतः । (सूचू २ पृ ३३९)

जो निरन्तर होता है, वह शाश्वत है ।

१६३५. सासु (सासु)

असवः प्राणाः सह असवो यस्य येन वा तत् सासुः ।

(व्यभा ६ टी प ६६)

जो असु/प्राणों सहित है, वह सासु/सचित्त है ।

---

१. 'शालि' का अन्य निरुक्त—

श्रृणातीति शालिः ।

शालयो मधुराः शीता लघुपाका बलावहाः ।
पित्तघ्नाश्चानिलकफाः स्निग्धा बद्धाल्पवर्चसः ।। (शब्द ५ पृ ६४)

१६३६. साहम्मिय (सार्धमिक)

समाणा सरिसा वा धम्मिया साहम्मिया। (आचू १ पृ २८५)

जिनका धर्म/आचार सदृश है, वे सार्धमिक हैं।

१६३७. साहसिअ (साहसिक)

सहसा—असमीक्ष्य प्रवर्त्तत इति साहसिकः। (उशाटी प ५०७)

जो सहसा/बिना विचार किये कार्य में प्रवृत्त होता है, वह साहसिक है।

१६३८. साहारण (साधारण)

समानम्—एकं धारणम्—अङ्गीकरणं शरीराहारादेर्येषां ते साधारणाः। (आटी प ५८)

जिनका शरीर समान/एक है और जो आहार आदि का धारण/स्वीकरण एकरूप से करते हैं, वे साधारण (वनस्पति) कहलाते हैं।

१६३९. साहु (साधु)

णेव्वाणसाहणेण साधवः। (दअचू पृ ३३)

शान्तिं साधयन्तीति साधवः। (दजिचू पृ ६६)

जो निर्वाण/शांति की साधना करते हैं, वे साधु हैं।

साधयन्ति ज्ञानादिशक्तिभिर्मोक्षमिति साधवः।

जो रत्नत्रयी से मोक्ष की साधना करते हैं, वे साधु हैं।

समतां वा सर्वभूतेषु ध्यायन्तीति साधवः।

जो सब प्राणियों के प्रति समता का चिंतन करते हैं, वे साधु हैं।

साहायकं वा संयमकारिणां धारयन्तीति साधवः। (भटी प ४)

जो संयम में सहायक बनते हैं, वे साधु हैं।

१६४०. सिंगार (शृङ्गार)

शृंगं—सर्वरसेभ्यः परमप्रकर्षकोटिलक्षणमियर्ति गच्छतीति शृंगारः ।[1] **(अनुद्वामटी प १२४)**

जो सब रसो मे शृंगस्थ/प्रधान है, वह शृंगार (रस) है।

१६४१. सिक्ख (शैक्ष)

शिक्षामधीत इति शैक्षः ।[2] **(स्थाटी प १२४)**

जो शिक्षा ग्रहण करता है, वह शैक्ष है।

१६४२. सिक्खा (शिक्षा)

सिक्खाते शिक्ष्यन्ते वा तमिति शिक्षा ।[3] **(उचू पृ १९५)**

जो सिखाती है, वह शिक्षा है।

जिससे विद्या का ग्रहण होता है, वह शिक्षा है।

१६४३. सिक्खासील (शिक्षाशील)

शिक्षायां शीलः स्वभावो यस्य शिक्षां वा शीलयति—अभ्यस्यतीति शिक्षाशीलः । (उशाटी प ३४५)

जिसका शील/स्वभाव शिक्षा प्राप्त करना है, वह शिक्षाशील है।

जो शिक्षा का अनुशीलन/अभ्यास करता है, वह शिक्षाशील है।

१६४४. सिज्जाकर (शय्याकर)

सेज्जाकरणे सेज्जाकरो । (बृभा ३५२२)

सिज्जं करेति तम्हा सो सिज्जाकरो । (निचू २ पृ १३१)

जो शय्या/वसति का निर्माण करता है, वह शय्याकर है।

---

१. 'शृंगार' का अन्य निरुक्त—

श्रयति एन जनः शृंगारः । (अचि पृ ६६)

प्रत्येक व्यक्ति जिसका आश्रय लेता है, वह शृंगार (रस) है।

२. **शिक्षा शीलमस्य शैक्षः । (अचि पृ १४)**

१६४५. सिणेह (स्नेह)

स्निह्यतेऽनेनेति स्नेहः । (उचू पृ १७१)

जिससे प्रीति की जाती है, वह स्नेह है ।

१६४६. सित (सित)

सेतति—बध्नाति जीवमिति सितम् । (नंदि पृ १२३)

जो जीव को बांधता है, वह सित/बन्धन है ।

१६४७. सिद्ध (सिद्ध)

सितं—बद्धमष्टप्रकारं कर्मेन्धनं ध्मातं—दग्धं जाज्वल्यमानशुक्लध्यानानलेन यैस्ते सिद्धाः ।

शुक्लध्यान की आग के द्वारा जिन्होने कर्मरूपी इन्धन को जला दिया है, वे सिद्ध हैं ।

सेधन्तिस्म[1]—अपुनरावृत्त्या निर्वृतिपुरीमगच्छन् ।

जो सदा सदा के लिए मुक्तिनगर में चले गए हैं, वे सिद्ध हैं ।

सिध्यन्तिस्म[2]—निष्ठितार्था भवन्तिस्म ।

जिनके लिए सब अर्थ/कार्य निष्ठित/संपन्न हो गए हैं, वे सिद्ध हैं ।

सेधन्ते स्म[3]—शासितारोऽभवन् माङ्गल्यरूपतां वाऽनुभवन्ति स्मेति सिद्धाः ।

जो आत्मानुशासक हैं एवं मंगल/कल्याण का अनुभव करते हैं, वे सिद्ध हैं ।

सिद्धाः—नित्या अपर्यवसानस्थितिकत्वात् प्रख्याता वा भव्यैरुपलब्धगुणसन्दोहत्वात् । (प्रज्ञाटी प २,३)

जो शाश्वत/अपर्यवसित हैं, वे सिद्ध हैं। जो भव्य जनों द्वारा (ज्ञान आदि) गुणों के कारण प्रख्यात/प्रशंसित हैं, वे सिद्ध हैं ।

---

१. षिधु—गतौ ।

२. षिध—संराद्धौ ।

३. षिधु—शास्त्रे माङ्गल्ये च ।

१६४८. सिद्धंत (सिद्धान्त)

जेण उ सिद्धं अत्थं, अंतं णयतीति तेण सिद्धंतो।[1] (बृभा १७९)

जो सिद्ध/यथार्थ अर्थ को अंत/पार तक ले जाता है, वह सिद्धांत है।

१६४९. सिद्धि (सिद्धि)

सिध्यन्ति—कृतार्था भवन्ति यस्यां सा सिद्धिः। (स्थाटी प २२)

जिसमे प्राणी सिद्ध/कृतार्थ हो जाता है, वह सिद्धि है।

१६५०. सिर (शिरस्)

शीर्यते[2] **इति शिरः।** (उचू पृ ५९)

जो शीर्ण होता है, वह शिर/मस्तक है।

श्रृता तस्मिन् प्राणा इति शिरः। (दश्रुचू प ७४)

जिसमे प्राण अवस्थित—संगृहीत रहते हैं, वह शिर है।

१६५१. सिरज (शिरज)

सिरे जायंति शिरजा। (दश्रुचू प ४१)

जो सिर मे पैदा होते हैं, वे शिरज/केश हैं।

१६५२. सिलेस (श्लेष)

श्लेषयति श्लेष। (आटी प ५७)

जो श्लिष्ट करता है, वह श्लेष/गोद है।

१६५३. सिसिर (शिशिर)

सिणातीति[3] **सिसिरं।**[4] (आचू पृ ३१०)

जो प्रकम्पित करता है, वह शिशिर (ऋतु) है।

---

१. **सिद्धं—प्रमाणप्रतिष्ठितमर्थमन्तं—संवेदननिष्ठारूपं नयतीति सिद्धांतः।** (अनुद्वामटी प ३४)

२. **श्रृणाति वियुक्तमिति शिरः।** (अचि पृ १२८)

जो धड से वियुक्त होने पर शीर्ण हो जाता है, वह शिर है।

३. सिण्ता (स्नुह) हिमम्। (कालू स्मृति ग्रंथ पृ १०४)

४. 'शिशिर' के अन्य निरुक्त—

१६५४. सिसु (शिशु)

संशेति[1] च तेनेति शिशुः ।[2] (उचू पृ १३४)

जो सोता है, वह शिशु है ।

१६५५. सीमंकर (सीमङ्कर)

सीमां—मर्यादां करोतीति सीमङ्करः । (राटी पृ २४)

जो अपने अधीनस्थ व्यक्तियों के लिए सीमा/मर्यादा करता है, वह सीमकर है ।

१६५६. सीमंधर (सीमन्धर)

सीमां—मर्यादां धारयति पालयति न तु विलुम्पतीति सीमन्धरः । (राटी पृ २४)

जो प्राचीन और अर्वाचीन सीमाओं/परपराओं का धारण/निर्वहन करता है, वह सीमधर है ।

१६५७. सीय (शीत)

शृणाति इति शीतम् ।[3] (उशाटी प ८८)

जो क्षत-विक्षत करता है, वह शीत (ऋतु) है ।

शशति शीघ्रं गच्छति दिनमत्र शिशिरः । (अचि पृ ३५)
जिसमें दिन शीघ्रता से बीतता है, वह शिशिर (ऋतु) है ।
शशति गच्छति वृक्षादिशोभा यस्मात् शिशिरः । (शब्द ५ पृ १०७)
वृक्ष आदि जिससे शोभाहीन हो जाते हैं, वह शिशिर है ।

१. शस्—to sleep (आप्टे पृ १५४०)

२. 'शिशु' का अन्य निरुक्त—
श्यति कशयति मातरं शिशुः । (अचि पृ ७९)
जो माता का दुग्धपान करता है, वह शिशु है ।
शिशुः शंसनीयो भवति, शिशीते र्वा । (नि १०/३९)
जो शसंनीय/प्रशंसा के योग्य है, वह शिशु है ।
मनुष्य द्वारा जो स्त्री को दिया जाता है, वह शिशु है । (शि-दाने)

३. 'शीत' के अन्य निरुक्त—
श्यतेऽनेन श्यायते वा शीतः । (अचि पृ ३१०)
जो सघन करता है, वह शीत है ।

१६५८. सीस (शिष्य)

शासितु शक्यः शिष्यः । (उशाटी प ५६)

जिसे शासित/प्रशिक्षित किया जाता है, वह शिष्य है ।

१६५९. सीह (सिंह)

हिनस्तीति सिंहः । (प्रसाटी प ५१)

जो हिंसा करता है/मारता है, वह सिंह है ।

१६६०. सुंभक (शुम्भक)

सोभयतीति सुंभकः । (अनुद्वाचू पृ ४९)

जो सुशोभित करता है, वह शुम्भक/कुशुम्भक है ।

१६६१. सुकड (सुकृत)

सुट्ठु कतं सुकडं । (दअचू पृ १७५)

सुखं क्रियत इति सुकडं । (उचू पृ ६५)

जो सुख पूर्वक किया जाता है, वह सुकृत है ।

१६६२. सुक्क (शुक्ल)

सुत्ति-सुद्धं शोकं वा क्लामयति सुक्कं । (दअचू पृ १६)

शोधयत्यष्टप्रकारं कर्ममलं शुचं वा क्लमयतीति शुक्लम् ।
(स्थाटी प १८१)

जो कर्ममल को शुद्ध करता है, वह शुक्ल (ध्यान) है ।

जो शोक को नष्ट करता है, वह शुक्ल (ध्यान) है ।

१६६३. सुक्क (शुक्र)

शोभत इति शुक्रः ।[1] (उचू पृ १००)

जो शोभित होता है, वह शुक्र/देव, देवविमान है ।

जो शोभित होते हैं वे शुक्ल/चद्र, सूर्य आदि हैं ।

---

१. 'शुक्र' का अन्य निरुक्त—

शोचति दानवानिति शुक्रः । (अचि पृ २७)

जो दानवों को खिन्न करता है, वह शुक्र है ।

१६६४. सुयर (सुकर)

सुहं किरति सुकरणम् । (आचू पृ २०२)

जो सरलता से किया जाता है, वह सुकर है ।

१६६५. सुगइगामि (सुगतिगामिन्)

सुगतिं गमिष्यतीति सुगतिगामी । (स्थाटी प २४१)

जो सुगति की ओर जाता है, वह सुगतिगामी है ।

१६६६. सुजह (सुहान)

सुखेन—अनायासेन हीयन्त इति सुहानाः । (उशाटी प २६२)

जो बिना आयास के हीन/त्यक्त होते हैं, वे सुहान/सुत्याज्य हैं ।

१६६७. सुणइ (सुनति)

शोभना नतिर्—नामः अवसानो यस्मिन् तत् सुनतिः ।
(राटी पृ १३३)

जिस नाटक की नति/अन्त सुखमय है, वह सुनति/सुखान्त है ।

१६६८. सुत्त (सूत्र)

सूयइ त्ति सुत्तं ।[1]

जो अर्थ को सूचित करता है, वह सूत्र है ।

सिव्वइ त्ति सुत्तं ।[2]

जो अनेक अर्थपदो को स्यूत/संयुक्त करता है, वह सूत्र है ।

सुवइत्ति सुत्तं ।[3]

जो अर्थ का प्रादुर्भाव करता है, वह सूत्र है ।

अणुसरइ त्ति सुत्तं ।[4] (बृभा ३११)

---

१. सूच्यत इति अर्थस्य सूचनात् सूत्रम् ।

२. अर्थपदान्यनेकानि सीव्यतीत्यर्थस्य सीवनात् सूत्रम् ।

३. अर्थं प्रसवतीति सूत्रम् ।

४. सूत्रमनुसरन् रजः अष्टप्रकारं कर्म अपनयति ततः सरणात् सूत्रम् ।
(बृटी पृ ९५)

जिसके अनुसरण से कर्मों का सरण/अपनयन होता है, वह सूत्र है।

सिंचति खरइ[1] जमत्थ तम्हा सुत्तं निरुत्तविहिणा। (विभा १३६८)

जो अर्थ का सिंचन/क्षरण करता है, वह सूत्र है।

सूत्र्यन्ते अनेनेति सूत्रम्। (स्थाटी प ४६)

जिससे अर्थ सूत्रित/गुम्फित किया जाता है, वह सूत्र है।

१६६९. सुत्त (सुप्त)

पासुत्तसमं सुत्तं अत्थेणाबोहियं न तं जाणे।[2] (बृभा ३१२)

जो व्याख्या के बिना सुप्त की तरह सुप्त होता है, वह सुप्त/सूत्र है।

१६७० सुत्त (सूक्त)

सुवुत्तमिह वा भवे सुत्तं। (बृभा ३१०)

सुष्ठूक्तत्वाद्वा सूक्तम्।

जो सुभाषित है, वह सूक्त/सूत्र है।

सुस्थितत्वेन व्यापित्वेन च सूक्तम्। (स्थाटी प ४६)

जो व्यवस्थित और व्यापक अर्थ बोध देता है, वह सूक्त/सूत्र है।

१६७१. सुत्तफासिय (सूत्रस्पर्शिक)

सुत्तं फुसतीति सुत्तफासिय। (निचू २ पृ २)

जो सूत्र का स्पर्श/अनुगमन करती है, वह सूत्रस्पर्शिक (व्याख्या) है।

१६७२. सुदुल्लह (सुदुर्लभ)

सुष्ठु दुर्लभः सुदुर्लभः। (उचू पृ १७६)

जिसे पाना अत्यत कठिन है, वह सुदुर्लभ है।

---

१. षिच—क्षरणे। (बृटी पृ ९५)

२. अर्थेन अबोधितं सुप्तमिव सुप्तं प्राकृतशैल्या सुत्तं। (बृटी पृ ९४)

१६७३. सुद्द (शूद्र)

शोचनाद् रोदनाच्च शूद्रः ।[1] (आटी प ७)

जो शोक करते हैं, रोते हैं, वे शूद्र हैं ।

१६७४. सुपट्ठिय (सुप्रस्थित)

सुष्ठु प्रस्थितः सुप्रस्थितः । (उशाटी प ४७७)

जिसने अच्छे ढग से प्रस्थान किया है, वह सुप्रस्थित है ।

१६७५. सुपडिबुद्ध (सुप्रतिबुद्ध)

सुट्ठु पडिबुद्धं सुपडिबुद्धं । (आचू पृ १७०)

जो सम्यक् प्रकार से प्रतिबुद्ध है, वह सुप्रतिबुद्ध है ।

१६७६. सुप्पडियार (सुप्रतिकार)

सुखेन प्रतिक्रियते—प्रत्युपक्रियत इति सुप्रतिकारम् ।
(स्थाटी प ११३)

जिसका प्रतिकार सुखपूर्वक किया जाता है, वह सुप्रतिकार है ।

१६७७. सुप्पणिहाण (सुप्रणिधान)

सुष्ठु—प्रकर्षेण नियते आलम्बने धानं—धरणं मनः प्रभृतेरिति सुप्रणिधानम् । (नटि पृ १०१)

निश्चित आलम्बन पर मन आदि को प्रकृष्ट रूप मे स्थापित करना सुप्रणिधान है ।

१६७८. सुप्पणिहिय (सुप्रणिहित)

सुष्ठु प्रणिहितानि—असन्मार्गात् प्रच्याव्य सन्मार्गे व्यवस्थापितानी-न्द्रियाण्यनेनेति सुप्रणिहितः । (उशाटी प ५८१)

जिसने इन्द्रियो को अच्छी तरह प्रणिहित/व्यवस्थापित किया है, वह सुप्रणिहित/स्थिरयोगी है ।

---

१. शीयते इति शूद्रः । (अचि पृ १९७)
जिसे उत्पीड़ित किया जाता है, वह शूद्र है । (शद्लृ—शातने)

१६७९. सुप्पभा (सुप्रभा)

सुष्ठु—प्रकर्षेण च भाति—शोभते या सा सुप्रभेति ।

(औटी पृ २१९)

जो सुन्दर रूप मे सुशोभित होती है, वह सुप्रभा/मुक्ति है ।

१६८०. सुफणि (दे)

सुखं फणिज्जति जत्थ सा भवति सुफणी । (सूचू १ पृ ११७)

जिसमे सुखपूर्वक पकाया/राधा जाता है, वह सुफणी (पात्र) है ।

१६८१. सुभ (शुभ)

शोभते सर्वावस्थास्वनेनात्मेति शुभम् । (उशाटी प ६४४)

जिसमे आत्मा सब अवस्थाओ मे सुशोभित होती है, वह शुभ है ।

१६८२. सुभासिय (सुभाषित)

सोभणाणि भासिताणि सुभासिताणि । (दअचू पृ २११)

जो सुन्दर भाषण/कथन हैं, वे सुभाषित हैं ।

१६८३. सुमुणित (सुज्ञात)

सुट्ठु मुणितं सुमुणितं । (नंचू पृ ११)

जो अच्छे प्रकार से ज्ञात होता है, वह सुज्ञात है ।

१६८४. सुय (श्रुत)

सुणतीति सुयं । (बृभा १४७)

तस्सुणोति, तेण वा सुणेति, तम्हा वा सुणेति, तम्हि वा सुणेतीति सुतं ।

जो/जिससे/जिसमें या जिसको सुना जाता है, वह श्रुत है ।

आत्मैव वा श्रुतोपयोगपरिणामनन्यत्वाच्छृणोतीति श्रुतम् ।

(नंचू पृ १३)

श्रुतोपयोग मे परिणत आत्मा अनन्य होकर जो सुनती है, वह श्रुत है ।

१६८५. सुयग्गाहि (श्रुतग्राहिन्)

सुतं गाहयतीति सुयग्गाही । (दजिचू पृ ३१४)

जो श्रुत/आगम ज्ञान को ग्रहण करता है, वह श्रुतग्राही है।

१६८६. सुयनिघस (श्रुतनिघर्ष)

श्रुतं निघर्षयन्तीति श्रुतनिघर्षाः ।[1] (व्यभा ४/२ टी प २८)

जो श्रुत का निघर्षण करते हैं, वे श्रुतनिघर्षक हैं।

१६८७. सुर (सुर)

सुष्ठु राजन्ते ये ते सुराः । (उपाटी पृ १२४)

जो सम्यक् प्रकार से सुशोभित होते हैं, वे सुर/देव हैं।

सुरन्ति—विशिष्टमैश्वर्यमनुभवन्तीति सुराः ।[2]

जो विशिष्ट ऐश्वर्य का अनुभव करते हैं, वे सुर/देव हैं।

सुष्ठु रान्ति—ददति प्रणतानामीप्सितमर्थं इति सुराः ।

(नक १ टी पृ ३८,३९)

जो पूजा से प्रसन्न हो इच्छित वस्तु प्रदान करते हैं, वे सुर/देव हैं।

१६८८ सुरइ (सुरति)

शोभना रतिर्यस्मिन् श्रोतॄणां सत् सुरतिः । (राटी पृ १३३)

जिसमें श्रोताओं की अच्छी रति/प्रेम है, वह सुरति/मधुर ध्वनि है।

१६८९. सुरक्खित (सुरक्षित)

सुट्ठु सव्वपयत्तणेण पावविप्पियत्तीए रक्खितो सुरक्खितो ।

(दजचू पृ २७०)

जो सब प्रकार के पापों से रक्षित है, वह सुरक्षित है।

---

1. स्वसमयपरसमयान् परीक्षन्ते ते श्रुतनिघर्षाः ।

(व्यभा ४/२ टी प २८)

2. सुरत् ऐश्वर्यदीप्त्योः सुरन्तीति सुराः । (अचि पृ २७)

१६६०. सुरम्म (सुरम्य)

सुष्ठु मनांसि रमयतीति सुरम्यः । (राटी पृ २३)

जो मन को भलीभांति रमण कराता है, वह सुरम्य है ।

१६६१. सुरहि (सुरभि)

सौमुख्यकृत् सुरभिः । (अनुद्वाहाटी पृ ६०)

जो मुख को सु/प्रसन्न करती है, वह सुरभि है ।

सुष्ठु रमते[1] सुरभिः । (प्राक १ टी पृ ४८)

जिसका सम्यक् आसेवन किया जाता है, वह सुरभि है ।

जिसकी अधिक कामना की जाती है, वह सुरभि है ।

१६६२. सुवण्ण (सुवर्ण)

शोभनवर्णं सुवर्णम् । (उचू पृ १८५)

जिसका वर्ण श्रेष्ठ है, वह सुवर्ण/स्वर्ण है ।

१६६३. सुविण (स्वप्न)

सुप्यते स्वप्नमात्रं वा स्वप्नम् । (उचू पृ १७५)

जो सोये सोये लिया जाता है, वह स्वप्न है ।

जिसमे स्वप्नमात्र का वर्णन है, वह स्वप्न (शास्त्र) है ।

१६६४. सुविसुद्ध (सुविशुद्ध)

मण-वयण-कायजोगेहिं सुट्ठु विसुद्धो सुविसुद्धो । (दअचू पृ २२८)

जो मन, वचन और काया से विशुद्ध है, वह सुविशुद्ध है ।

१६६५. सुसंभिय (सुसभृत)

सुष्ठु—अतिशयेन संभृताः—संस्कृताः सुसंभृताः ।

(उशाटी प ४०५)

जो अत्यधिक रूप में संभृत/संस्कृत हैं, वे सुसंभृत हैं ।

१६६६. सुसमा (सुषमा)

सुष्ठु समा सुषमा । (स्थाटी प २५)

---

१. रम्—Embrace, to long for (आप्टे पृ १३२६)

या सुन्दर समा/समय है, वह सुषमा/कालचक्र का एक भाग है।

१६९७. सुसाण (श्मशान)

सवसयणं सुसाणं।[1] (आचू पृ ३१२)

शवानां शयनं श्मशानम्। (आटी प २७०)

जहां शव सुलाए जाते हैं, वह श्मशान है।

१६९८. सुसीला (सुशीला)

सुष्ठु शीलं—स्वभावो यस्याः सा सुशीला। (उशाटी प ४९०)

जिसका शील/स्वभाव सुन्दर है, वह सुशीला है।

१६९९. सुस्सर (सुस्वर)

सुखेन—अनायासेन स्वर्यते—उच्चार्यत इति सुस्वरः।

(सूटी पृ ७३१)

जिसके उच्चारण में आयास नहीं करना पड़ता, वह सुस्वर है।

१७००. सुहमोय (सुखमोच)

सुखेन मोच्यन्त इति सुखमोचाः। (सूटी पृ ७०८)

जिनका सुखपूर्वक मोचन/त्याग किया जाता है, वे सुखमोच/सुत्याज्य हैं।

१७०१. सुहसाय (सुखशात)

सुखं—वैषयिकं शातयति—तद्गतस्पृहानिवारणेनापनयतीति सुखशातः। (उशाटी प ५८६)

जो वैषयिक सुखों का शातन/अपनयन/विनाश करता है, वह सुखशात/निस्पृह है।

---

१. श्मशब्देन शवः प्रोक्तः शानं शयनमुच्यते।
निर्वचन्ति श्मशानार्थं मुने! शब्दार्थकोविदाः॥ (शब्द ५ पृ १४५)
श्मानः—शवाः शेरतेऽत्र इति श्मशानम्। (आप्टे पृ १५७१)

१७०२. सुहसायय (सुखस्वादक)

सुहं सायति—पत्थयतित्ति सुहसाययो । (दजिचू पृ १६३)

जो सुख की प्रार्थना करता है, वह सुखस्वादक है ।

१७०३. सुहसील (सुखशील)

सुहं सीलेति—अणुट्ठेति सुहसीले । (दअचू पृ ८६)

जो सुविधावादी है, वह सुखशील है ।

१७०४. सुहावह (सुखावह)

सुहमावहतीति सुहावहं । (दजिचू पृ ३२८)

जो सुख का आवहन करता है, वह सुखावह/सुखकर है ।

१७०५. सुहुम (सूक्ष्म)

सूयणीया सुहुमा ।[1] (आचू पृ २८५)

जिनका प्रयत्नपूर्वक सूचन किया जाता है, वे सूक्ष्म हैं ।

१७०६. सुहुय (सुहुत)

सुष्ठु हुतं-क्षिप्तं घृतादीनि गम्यते यस्मिन् स सुहुतः ।

(स्थाटी प ४४४)

जिसमे अच्छी तरह से घृत आदि डाले गये हो, वह सुहुत (अग्नि) है ।

१७०७. सूर (शूर)

शपति शप्यते वा शूरः । (सूचू १ टी पृ ७८)

जो आह्वान करते हुए आगे बढ़ता है, वह शूर/योद्धा है ।

शक्यसौ युद्धं मुचति वा तमिति शूरः ।[2] (उचू पृ ५८)

जो युद्ध मे शक्ति को प्राप्त होता है, वह शूर है ।

जो युद्ध मे शक्ति का प्रयोग करता है, वह शूर है ।

---

१. सूच्यते सूक्ष्मम् । (अचि पृ ३१८)

२. (क) शवति वीर्यं प्राप्नोतीति शूरः ।

(ख) 'शूर' का अन्य निरुक्त—

शूरयति विक्रामति इति शूरः । (शब्द ५ पृ १२८)

जो वीरता दिखाता है, वह शूर है ।

१७०८. सेउकर (सेतुकर)

सेतुः मार्गस्तं करोतीति सेतुकरः । (राटी पृ २५)

जो सेतु/मार्ग का निर्माण करता है, वह सेतुकर/मार्गदर्शक है ।

१७०९. सेज्जंस (श्रेयांस)

श्रेयः श्रेयसि तस्मिन्निति श्रेयांसः । (आचू पृ ३७५)

जिसमे श्रेय/कल्याण निहित है, वह श्रेयांस है ।

१७१०. सेज्जा (शय्या)

शेरते आस्विति शय्याः । (प्रसाटी प २३७)

जिनमे शयन किया जाता है, वे शय्या हैं ।

१७११. सेज्जातर (शय्यातर)

गोवाइऊण वसहिं तत्थ वि ते यावि रक्खिउं तरइ ।[1]
तद्दाणेण भवोघं च तरति सेज्जातरो तम्हा ।। (बृभा ३५२३)

जो शय्या/वसति का तरण/संरक्षण करने मे समर्थ है, वह शय्यातर है ।

जो शय्या/उपाश्रय मे स्थित साधुओ का रक्षण करता है, वह शय्यातर है ।

जो शय्या/वसति के दान से ससार को तरता है, वह शय्यातर है ।

१७१२. सेज्जादाउ (शय्यादातृ)

सेज्जं ददाति तेण सेज्जादाता । (निचू २ पृ १३१)

जो शय्या/वसति देता है, वह शय्यादाता है ।

१७१३. सेज्जाधर (शय्याधर)

जम्हा धारइ सिज्जं पडमाणिं छज्जलेवमाईहिं ।
जं वा तीए धरेति नरगा आयं धरो तम्हा । (बृभा ३५२४)

१. 'तत्र' तस्यां—शय्यायां स्थितान् साधून् स्तेनादिप्रत्यपायेभ्यो रक्षितुं तरति शय्यातरः । (बृटी पृ ९८१)

जो शय्या/मकान का धारण/रक्षण करता है, वह शय्याधर है।

जो शय्यादान के द्वारा आत्मा का धारण/रक्षण करता है, वह शय्याधर है।

१७१४. सेणा (सेना)

सिनोति असिना सेना।[1]

जो तलवार के द्वारा शत्रुओ को वश मे करती है, वह सेना है।

सीयते बाऽसौ दानमानसत्कारादिभिः सेना।[2] (उचू पृ २०६)

जिसका बन्धन सूत्र है दान, मान और सत्कार, वह है सेना।

१७१५. सेय (श्रेयस्)

सेयं इति पसंसे अत्थे, सेयंति तमिति सेओ।[3] (आचू पृ १२४)

जिसकी प्रशंसा की जाती है, वह श्रेय/मोक्ष है।

१७१६. सेय (दे)

सीदंति तस्मिन्निति स्वेदः। (सूचू २ पृ ३११)

जहां प्राणी अवसाद/पीड़ा को प्राप्त होते हैं, वह सेय/कीचड़ है।

सीयन्ते—अवबध्यन्ते यस्मिन्नसौ सेयः। (सूटी २ प ७)

जिसमे (प्राणी) लिप्त होते हैं, वह सेय/कीचड़ है।

१७१७. सेह (सेध)

सेध्यते—निष्पाद्यते यः स सेधः। (स्थाटी प १२४)

जिसे ज्ञान, दर्शन और चारित्र मे निष्पन्न किया जाता है, वह सेध/शैक्ष है।

---

१. सिनोति शत्रुमिति सेना। (शब्द ५ पृ ४०६) षि—बन्धने।
२. 'सेना' का अन्य निरुक्त—
इनेन प्रभुणा सह वर्तते या सा सेना। (शब्द ५ पृ ४०६)
जो इन/स्वामी से युक्त है, वह है सेना।
३. अतिशयेन प्रशस्यं श्रेयः। (अचि पृ १३)

१७१८. सेहंब (सेधाम्ल)

सेधे—सिद्धौ सति यानि अम्लेन—तीमनादिना संस्क्रियन्ते तानि सेधाम्लानि। (उपाटी पृ २२)

जो पकने के बाद अम्ल-द्रव्य—तीमन आदि से संस्कृत किए जाते हैं, वे सेधाम्ल हैं।

१७१९. सोइंदिय (श्रोत्रेन्द्रिय)

श्रूयते अनेनेति श्रोत्रेन्द्रियं। (आवचू १ पृ ५२९)

जिसके द्वारा सुना जाता है, वह श्रोत्रेन्द्रिय/कान है।

१७२०. सोत (स्रोतस्)

स्रवतीति स्रोतः। (सूचू १ पृ २०२)

जो झरता है, वह स्रोत/निर्झर है।

१७२१. सोत्तिया (स्रोतसिका)

स्रवतीति सोत्तिया। (आचू पृ २५)

जो अनुकूल बहती है, वह स्रोतसिका है।

१७२२. सोदरिय (सोदर्य)

सोदरे शयिताः सोदर्याः।[1] (उशाटी प ४०६)

जो एक ही उदर में शयन करते हैं/उत्पन्न होते हैं, वे सोदर्य (भाई) हैं।

१७२३. सोय (शौच)

शुद्ध्यतेऽनेनेति सोयम्। (उचू पृ २१५)

जिससे शुद्धि होती है, वह शौच (धर्म) है।

१७२४. सोय (श्रोत्र)

शृणोति भाषापरिणतान् पुद्गलानिति श्रोत्रम्। (आटी प १०३)

जो भाषा मे परिणत शब्दों को सुनता है, वह श्रोत्र/कान है।

---

1. समानोदरे शयितः सोदरः। (शब्द ५ पृ ४१५)

१७२५. सोयकारि (श्रोतस्कारिन्)

श्रोतसि करोतीति श्रोतःकारी ।

जो कानो से सुनता है, वह श्रोतस्कारी है ।

श्रोत्रेण गृहीत्वा हृदि करोतीति श्रोतःकारी ।

जो कानो से सुनकर हृदय मे धारण करता है, वह श्रोतस्कारी है ।

श्रुत्वा वा करोतीति श्रोतःकारी । (सूचू १ पृ २३२)

जो सुनकर करता है, वह श्रोतस्कारी है ।

१७२६. सोयरिय (शौकरिक)

शूकरेण सन्निहितेन शूकरवधार्थं चरन्ति शौकरिकाः ।

जो अपने पास वाले शूकर से अन्य सूअर का वध करता है, वह शौकरिक है ।

शूकरान् वा घ्नन्तीति शौकरिकाः । (अनुद्वामटी प ११६)

जो सूअरो का वध करता है, वह शौकरिक है ।

१७२७. सोल्ल (शूल्य)

शूले पच्यन्ते इति शूल्यानि । (उपाटी पृ १४७)

जो मास खड शूल मे पिरोकर पकाए जाते है, वे शूल्य/मांस खड हैं ।

१७२८. सोवाग (श्वपाक)

साणं पचंतीति सोवागा । (आचू पृ ३२३)

जो कुत्तो को पकाते हैं, वे श्वपाक/चाडाल हैं ।

१७२९. सोहि (शोधि)

सोधयति कम्मं तेण सोही । (दश्रुचू प २९)

जो कर्मों का शोधन करती है, वह शोधि है ।

१७३०. सोहि (शोधिन्)

शोधयत्यात्मपराविति शोधी । (ज्ञाटी प ७७)

जो स्व और पर की शुद्धि करता है, वह शोधी/शोधि करने वाला है।

१७३१. हंस (हंस)

हसन्तीति हंसाः ।[1] (जंबू पृ २१४)

जो सदा प्रसन्न रहते हैं, वे हंस हैं।

१७३२. हक्कार (हाकार)

ह इत्यधिक्षेपार्थस्तस्य करणं हक्कारः । (स्थाटी प १८२)

(तिरस्कार पूर्वक) हाय ! शब्द उच्चारण करना हाकार (नीति) है।

१७३३. हट्ठकारग (हठकारक)

हठेन कुर्वन्ति ये ते हठकारकाः । (प्रटी प ४६)

जो हठपूर्वक चोरी करते हैं, वे हठकारक/चोर हैं।

१७३४. हण (हन)

हणतीति हणो । (आचू पृ २३०)

जो हनन करती है, वह हन/हिंसा है।

१७३५. हणुय (हनुक)

हंतीति हणुया ।[2] (आचू पृ २७६)

जो चबाता है, वह हनुक/ऊपर का जबड़ा है।

१७३६. हत्थ (हस्त)

हन्यतेऽनेनेति हस्तः ।[3]

---

१. 'हंस' का अन्य निरुक्त—
हन्ति सुन्दरं गच्छतीति हंसः । (शब्द ५ पृ ४९९)
जो सुन्दर गति से चलता है, वह हंस है।

२. हन्ति कठोरद्रव्यादिकमिति हनुः । (शब्द ५ पृ ५०३)

३. 'हस्त' का अन्य निरुक्त—
हसति विकसतीति हस्तः । (अचि पृ १३३)
जो बढ़ता है, वह हाथ है।

जिससे हनन/मारा जाता है, वह हस्त/हाथ है।

हसति वा मुखमावृत्येति हस्तः। (निचू २ पृ २)

जिससे मुख ढांक कर हंसा जाता है, वह हस्त है।

१७३७. हत्थितावस (हस्तितापस)

हस्तिनं व्यापाद्यात्मनो वृत्ति कल्पयन्तीति हस्तितापसाः।
(सूटी २ प १४६)

जो हाथी मारकर आजीविका चलाते हैं, वे हस्तितापस हैं।

१७३८. हय (हय)

हिनोति[1] हीयते हयः।[2] (सूचू २ पृ ३५४)

जो तेज और विशेष गति से चलता है, वह हय/घोड़ा है।

१७३९. हयजोहि (हययोधिन्)

हयेन—अश्वेन युध्यत इति हययोधी। (ओटी पृ १६४)

जो हय/अश्व के द्वारा युद्ध करते हैं, वे हययोधी हैं।

१७४०. हर (हर)

हरतीति हरः। (उचू पृ २२४)

जो हरण करती है, वह हर/मृत्यु है।

१७४१. हरिएस (हरिएस, हरिकेश)

हरति ह्रियते वा हरिः। हरिं एसतीति हरिएसो।[3] (उचू पृ २०३)

जो हरण करता है, जिसके द्वारा हरण किया जाता है, वह हरि/यमदूत कहलाता है। हरि की एषणा करने वाला हरिएस है।

१७४२. हव्ववाह (हव्यवाह)

हव्वं वहतीति हव्ववाहो। (आचू पृ १४६)

जो हवन को वहन करता है, वह हव्यवाह/अग्नि है।

---

१. हि—वर्द्धने गतौ च।

२. हयति गच्छतीति हयः। (शब्द ५ पृ ५०५)

३. हरि—कपिल वर्ण की जटावाला हरिकेश है।

१७४३. हसिर (हसितृ)

हसनशीलो हसिरो । (उचू पृ १९७)

जिसे हंसने की आदत है, वह हसिता है ।

१७४४. हायणी (हायनी)

हायत्यस्यां बाहुबलं चक्षुर्वा हायणी । (दशचू प ३)

जिसमें बाहुबल और चक्षुबल क्षीण होते हैं, वह हायनी दशा है ।

छुट्ठी उ हायणी नाम जं नरो दसमस्सिओ ।
विरज्जइ य कामेसु इंदिएसु य हायई ॥[1] (दटी प ८)

जो पुरुष की इन्द्रियों को अर्थग्रहण में हीन बनाती है, वह हायनी (छठी दशा) है ।

१७४५. हास (हास)

हस्यतेऽनेनेति हासः । (दटी प ७८)

जिसके द्वारा हंसा जाता है, वह हास/हास्यमोहनीय कर्म है ।

१७४६. हिंस (हिंस्र)

हिंसयतीति हिंस्रः । (उचू पृ १६०)

जो हिंसा करता है, वह हिंस्र है ।

१७४७. हिंसप्पेहि (हिंसाप्रेक्षिन्)

हिंसां—वधं साध्वादेः प्रेक्षते—गवेषयतीति हिंसाप्रेक्षी ।
(स्थाटी प २६०)

जो मारने की टोह देखता है, वह हिंसाप्रेक्षी है ।

१७४८. हिंसय (हिंसक)

हिनस्तीति हिंसकः । (आटी प १६५)

जो हिंसा करता है, वह हिंसक है ।

---

१. हापयति पुरुषमिन्द्रियेष्विति—इन्द्रियाणि मनाक् स्वार्थग्रहणापटूनि करोतीति हापयति आकृतत्वेन च हायणिति । (स्थाटी प ४६७)

१७४९. हिंसा (हिंसा)

हिंस्यत इति हिंसा । (प्रटी प ६)

जो हनन करती है, वह हिंसा है ।

१७५०. हियभासि (हितभाषिन्)

हितं परिणामसुंदरं तद्भासते, इत्येवंशीलो हितभाषी । (व्यभा १ टी प २६)

जो हितकारी भाषण करता है, वह हितभाषी है ।

१७५१. हिययग्गाहि (हृदयग्राहिन्)

हृदयं गृह्णाति हृदये सम्यग्निवेशिते इत्येवंशीलो हृदयग्राही । (व्यभा १ टी प ३०)

जो हृदय/हार्द को पकड़ लेता है, वह हृदयग्राही है ।

१७५२. हियाणुपेही (हितानुप्रेक्षिन्)

हितं—पथ्यम् अनुप्रेक्षते—पर्यालोचयतीत्येवंशीलो हितानुप्रेक्षी । (उशाटी प ३८६)

जो हित का अनुप्रेक्षण/पर्यालोचन करता है, वह हितानुप्रेक्षी है ।

१७५३ हीयमाण (हीयमान)

हीयमाणं पुव्वावत्थातो अधोऽधो ह्रस्समाणं । (नचू पृ १९)

हीयते—तथाविधसामग्र्यभावतो हानिमुपगच्छतीति हीयमानम् । (नक १ टी पृ २०)

जो हीन/क्षीण होता चला जाता है, वह हीयमान (अवधिज्ञान) है ।

जो हानि/विनाश को प्राप्त होता है, वह हीयमान है ।

१७५४. हेउ (हेतु)

हिनोतीति हेतुः ।[1] (उचू पृ १५५)

हिनोति—गमयति जिज्ञासितधर्मविशिष्टानर्थानिति हेतुः । (दटी प ३३)

जो अर्थ की ओर प्रेरित करता है, वह हेतु है ।

---

१. हिनोति व्याप्नोति कार्यमिति हेतुः । (शब्द ५ पृ ५४७)

परिशिष्ट

१. कृदन्तव्युत्पन्न निरुक्त

२. तीर्थंकर-अभिधान निरुक्त

परिशिष्ट १

(कृदन्तव्युत्पन्न निरुक्त)

१. अइयार (अतिचार)

अतिचरणमतिचारः । (आवचू २ पृ ९९)

मर्यादा का अतिक्रमण करना अतिचार है ।

२. अइसय (अतिशय)

अतिशयनमतिशयः । (ओटी प १४)

जो विशेषता आपादित करता है, वह अतिशय है ।

३. अक्कोस (आक्रोश)

आक्रोशनमाक्रोशः । (प्रसाटी प १६३)

क्रुद्ध होना आक्रोश है ।

४. अणुकंपा (अनुकम्पा)

अणुकंपणमणुकंपा । (निचू १ पृ ७६)

करुणा से कंपित होना अनुकंपा है ।

५. अणुगम (अनुगम)

अनुगमनं अनुगमः । (अनुद्वामटी प ४०)

सूत्र का अनुगमन/अनुसरण करना अनुगम/व्याख्या है ।

६. अणुओग (अनुयोग)

अनुयोजनमनुयोगः । (स्थाटी प ३)

जो (सूत्र को अर्थ से) अनुयोजित करता है, वह अनुयोग/व्याख्या है ।

७. अणुण्णा (अनुज्ञा)

अनुज्ञानं अनुज्ञा । (नंदी पृ १७०)

आज्ञा देना अनुज्ञा है ।

८. अणुप्पेहा (अनुप्रेक्षा)

अनुप्रेक्षणमनुप्रेक्षा । (स्थाटी प ३३५)

अनुप्रेक्षण/चिंतन करना अनुप्रेक्षा है ।

९. अणुभाव (अनुभाव)

अनुभवनमनुभावः । (सूचू १ पृ १२६)

जिसका अनुभव किया जाता है, वह अनुभाव है ।

१०. अणुवाद (अनुवाद)

अणुवदणं अणुवादो । (आचू पृ २२९)

कथन का अनुवदन करना अनुवाद है ।

११. अणुसिट्ठि (अनुशिष्टि)

अनुशासनमनुशास्तिः । (स्थाटी प २४९)

अनुशासन करना अनुशास्ति/अनुशिष्टि है ।

१२. अतिवाय (अतिपात)

अतिवातणं अतिपातो । (आचू पृ ७५)

प्राणों का वियोजन करना अतिपात/हिंसा है ।

१३. अत्था (आस्था)

आस्थानमास्था । (सूटी २ प ७)

पूर्ण रूप से स्थिर रहना आस्था है ।

१४. अभयंकर (अभयङ्कर)

अभयं करोतीति अभयङ्करः । (सूचू १ पृ १४९)

जो अभय करता है, वह अभयङ्कर है ।

१५. अभाव (अभाव)

अभवनं अभावः । (नचू पृ ८०)

न होना अभाव है ।

१६. अभूइभाव (अभूतिभाव)

अभूतिभवनं अभूतिभावो । (दअचू पृ २०६)

भूति/ऋद्धि का नहीं होना अभूतिभाव/विनाश है ।

१७. अलंकार (अलङ्कार)

अलंकरणं अलंकारः । (दजिचू पृ ८०)

जो अलङ्कृत करता है, वह अलंकार है ।

१८. अवग्गह (अवग्रह)

अत्थाणं उग्गहणं अवग्गहो । (विभा १७६)

प्रथम दर्शन के पश्चात् अर्थ/पदार्थ का अवग्रहण अवग्रह/मतिज्ञान का एक भेद है ।

१९. अवद्धंस (अपध्वस)

अपध्वंसनमपध्वंसः । (स्थाटी प २६५)

विनाश करना अपध्वंस है ।

२०. अहिलाव (अभिलाप)

अभिलपनं अभिलापः । (बृटी पृ ५)

जिससे वस्तु का अभिलपन/कथन किया जाता है, वह अभिलाप है ।

२१. आउज्ज (आवर्ज)

आवर्जनं आवर्जः । (प्रज्ञाटी प ६०४)

अभिमुख होना/उपयोजन करना आवर्ज है ।

२२. आएस (आदेश)

आदेशनमादेशः । (स्थाटी प २१६)

अधिकृतरूप में कथन करना आदेश/आज्ञा है ।

२३. आगइ (आगति)

आगमनमागतिः । (स्थाटी प १६)

कहीं से आना आगति है ।

२४. आगम (आगम)

आगमनमागमः । (नंटी पृ ६६)

आना आगम है ।

२५. आगाल (आगाल)

आगालनमागालः । (आटी प ५)

आगालन/सम प्रदेशों में/शुद्ध आत्मा में अवस्थान करना आगाल/ज्ञान आदि आचार है ।

२६. आजाइ (आजाति)

आजननमाजातिः । (स्थाटी प ४८६)

प्रादुर्भाव होना आजाति/उत्पत्ति है ।

२७. आणंद (आनन्द)

आणंदणमाणदो । (दशचू पृ २७१)

जो आनन्दित करता है, वह आनन्द है ।

२८. आपुच्छा (आपृच्छा)

आपृच्छनमापृच्छा । (प्रसाटी प २२२)

जिज्ञासा करना आपृच्छा है ।

२९. आयंक (आतङ्क)

आतङ्कनं आतङ्कः । (आटी प ७५)

जो कष्टप्रद है, वह आतंक है ।

३०. आयव (आतप)

आतपनमातपः । (प्राक १ टी पृ ३३)

जो तप्त करता है, वह आतप है ।

३१. आयार (आचार)

आयरण आयारो । (नंचू पृ ६१)

जिसका आचरण किया जाता है, वह आचार है ।

३२. आरंभ (आरम्भ)

आरंभणं आरंभो । (आचू पृ २२६)

जो पचन-पाचन की प्रवृत्ति है, वह आरंभ/हिंसा है ।

३३. आलोयणा (आलोचना)

आलोचनं आलोचना। (पंटी प ४०७)

गुण-दोष का विचार करना आलोचना है।

३४. आस (आश)

अशनं आशः। (सूटी २ प ३९)

अशन/भक्षण करना आश/भोजन है।

३५. आसंसा (आशंसा)

आशंसनमाशंसा। (स्थाटी प ४९२)

आकांक्षा करना आशंसा है।

३६. आसव (आश्रव)

आश्रवणं आश्रवः। (स्थाटी प ३०५)

जो आश्रवित होता है, झरता है, वह आश्रव है।

३७. आसास (आश्वास)

आश्वसन आश्वासः। (आटी प २४६)

जो आश्वस्त करता है, वह आश्वास है।

३८. आहाकम्म (आधाकर्मन्)

आधानमाधा।[1] (पिटी प ३५)

साधु को देने का विचार कर भोजन आदि बनाने के लिए जो पचन आदि क्रिया की जाती है, वह आधाकर्म है।

३९. इज्जा (इज्या)

यजनमिज्या। (अनुद्वामटी प २६)

देवताओं को यजन/बलि देना इज्या/यज्ञ है।

४०. इरिया (ईर्या)

ईरणं गमनमीर्या। (आटी प ४२७)

सावधानी से चलना ईर्या (समिति) है।

---

१. आधया कर्म-पाकादि क्रिया, यद्वा आधाय—साधुं चेतसि प्रणिधाय यत्क्रियते भक्तादि तदाधाकर्म। (पिटी प ३५)

४१. ईहा (ईहा)

ईहनं ईहा । (आवहाटी १ पृ ७)

जानने मे प्रवृत्त होना ईहा (मतिज्ञान का एक भेद) है ।

४२. उक्कोय (उत्कोच)

उत्कोचनं उत्कोचः । (ज्ञाटी प ८६)

घूस देना उत्कोच/रिश्वत है ।

४३. उग्गम (उद्‌गम)

उद्‌गमनमुद्‌गमः । (प्रसाटी प १३७)

जो उद्‌गमन/उत्पत्ति स्थल है, वह उद्‌गम है ।

४४. उज्जोय (उद्योत)

उद्योतनमुद्योतः । (प्राक १ टी पृ ३३)

जो प्रकाशित करता है, वह उद्योत है ।

४५. उपेहा (उपेक्षा)

उपेक्षणमुपेहा । (सूचू २ पृ ३२४)

अन्यमनस्क होना उपेक्षा है ।

४६. उप्पाय (उत्पात)

उत्पतनमुत्पातः । (स्थाटी प ४६१)

ऊपर की ओर गति करना उत्पात है ।

४७. उम्मग्ग (उन्मार्ग)

उम्मग्गणं उम्मग्गो । (आचू पृ ११८)

जो उत्/ऊंचा मार्ग है, वह उन्मार्ग/श्रेष्ठ मार्ग है ।

४८. उवएस (उपदेश)

उपदेशनमुपदेशः । (नंचू पृ ४७)

जो उपदिष्ट होता है, वह उपदेश है ।

४९. उवओग (उपयोग)

उपयोजनमुपयोगः । (अनुद्वामटी प १४)

विवक्षित अर्थ में मन का उपयोजन/नियोजन करना उपयोग है।

५०. उवक्कम (उपक्रम)

उपक्रमणमुपक्रमः। (स्थाटी प ३)

उपक्रमण करना/समीप जाना उपक्रम है।

५१. उवयार (उपचार)

उवचरणं उवचारः। (निचू १ पृ २९)

जो उपचरित होता है, वह उपचार है।

५२. उवरम (उपरम)

उवरमणं उवरमो। (आचू पृ १०८)

किसी पदार्थ या वृत्ति से उपरमण करना/दूर होना उपरम है।

५३. उवलद्धि (उपलब्धि)

उपलम्भनमुपलब्धिः। (बृटी पृ २५)

जो प्राप्त होती है, वह उपलब्धि है।

५४. उववात (उपपात)

उववज्जणमुववातो। (नंचू पृ ६९)

उपपतन/जन्म उपपात है।

५५. उवसंपय (उपसम्पत्)

उपसम्पादनमुपसम्पत्। (प्रसाटी प २२२)

निकटता से आचरण करना उपसंपत् है।

५६. उवसम (उपशम)

उवसमणं उवसमो। (आचू पृ २२९)

उपशांत होना उपशम है।

५७. उवालंभ (उपालम्भ)

उपालम्भनं उपालम्भः। (स्थाटी प २४९)

अनौचित्य का निकटता से भान कराना उपालम्भ/उलाहना है।

५८. उस्सय (उच्छ्रय)

उच्छ्रयनमुच्छ्रयः। (सूचू १ पृ १७७)

जो मन मे उच्छ्रयन/बड़प्पन का भाव पैदा करता है, वह उच्छ्रय/मान है।

५९. ऊसास (उच्छ्वास)

उच्छ्वसनमुच्छ्वासः। (प्राक १ टी पृ ३३)

श्वास लेना उच्छ्वास है।

६०. एसणा (एषणा)

एषणं एषणा। (पटी प ३५१)

खोजना एषणा है।

६१. ओगाह (अवगाह)

अवगाहणमवगाहः। (निचू १ पृ २७)

भीतर तक अवगाहन करना/पैठना अवगाह है।

६२. ओहि (अवधि)

अवधानमवधिः। (अनुद्वामटी प २)

जो अवधान/समाधान देता है, वह अवधि (ज्ञान) है।

जो अवधान/एकाग्रता से उत्पन्न होता है, वह अवधि ज्ञान है।

६३. कअ (क्रय)

किणणं कओ। (आचू पृ ७८)

खरीदना क्रय है।

६४. कप्प (कल्प)

कल्पनं कल्प। (नटी पृ ७०)

जो विधि/करणीय है, वह कल्प/आचार है।

६५. कसि (कृषि)

कर्षणं कृषिः । (प्रटी प १२)

कर्षण करना/खेत को जोतना कृषि है ।

६६. कहा (कथा)

कथनं कथा । (ओटी प ९)

जो कही जाती है, वह कथा है ।

६७. काम (काम)

कम्मं कामः । (सूटी २ प १४५)

जो अभिलषणीय है, वह काम/इच्छा है ।

६८. कार (कार)

करणं कारः । (आटी प १०१)

जो किया जाता है, वह कार/कार्य है ।

६९. काल (काल)

कलनं कालः । (प्रसाटी प २८९)

जो कलना/गणना करता है, वह काल है ।

७०. किरिया (क्रिया)

करणं क्रिया । (स्थाटी प ३७)

करना क्रिया है ।

७१. केत (केत)

केतनं केतः । (स्थाटी प ४७७)

जो चिह्नित करता है, वह केत/चिह्न है ।

७२. कोह (क्रोध)

क्रोधनं क्रोधः । (ओटी प ५)

क्रुद्ध होना क्रोध है ।

७३. खंति (क्षान्ति)

क्षमणं खंती । (दअचू पृ २३४)

क्रोध आदि का क्षय क्षांति है ।

७४. खय (क्षय)

क्षपण क्षयः । (उचू पृ १५५)

क्षीण होना क्षय है ।

७५. खाय (खाद)

खादन खादः । (स्थाटी प १०३)

जो खाया जाए, वह खाद/खाद्य है ।

७६. खार (क्षार)

क्षरणं क्षारः । (स्थाटी प ४१०)

क्षरण/विनाश होना क्षार है ।

७७. गइ (गति)

गमनं गतिः । (स्थाटी प ३२१)

गमन करना गति है ।

७८. गंथ (ग्रन्थ)

गंथणं गंथो । (आचू पृ ११८)

जिसमे तत्त्व ग्रथित होते हैं, वह ग्रंथ है ।

७९. गम (गम)

गमनं गमः । (आटी प १२३)

गमन करना गम/गति है ।

८०. गरिहा (गर्हा)

गर्हणं गर्हा । (स्थाटी प ४०)

अनौचित्य की निन्दा करना गर्हा है ।

८१. गुण (गुण)

गुणणं गुणः । (अनुद्वाचू पृ ७४)

जिसका गुणन/वृद्धि होती है, वह गुण है ।

८२. गुत्ति (गुप्ति)

गोवणं गुत्तिः । (स्थाटी प १०५)

गोपन करना गुप्ति है ।

८३. चयण (च्यवन)

च्युतिः च्यवनम् । (स्थाटी प १६)

च्युत होना च्यवन है ।

८४. चरिया (चर्या)

चरिया चरणं । (आचू पृ १६३)

जिसका आचरण किया जाता है, वह चर्या है ।

८५. चाग (त्याग)

त्यजनं त्यागः । (स्थाटी प २८७)

छोडना त्याग है ।

८६. चिइ (चिति)

चयनं चितिः । (आवहाटी २ पृ १४)

चयन करना चिति/संग्रह है ।

८७. छंद (छन्दस्)

छन्दनं छन्दः ।[1] (आटी प १२६)

जो आल्हादित करता है, वह छंद/अभिप्राय है ।

८८. जम्म (जन्म)

जननं जन्म । (उचू पृ २३२)

पैदा होना जन्म है ।

८९ जाति (जाति)

जयणं जाती । (आचू पृ ११०)

जो उत्पत्ति है, वह जाति/जन्म है ।

---

१. छन्दयत्याह्लादयति छन्दः । (अचि पृ ११०)

९०. जोग (योग)

योजनं योगः । (नक ४ टी पृ ११३)

जो (आत्मा को कर्म से) योजित करता है, वह योग/चंचलता है ।

९१. ठवणा (स्थापना)

स्थापनं स्थापना । (नटी पृ ५१)

स्थापित करना स्थापना/धारणा है ।

९२. ठिति (स्थिति)

स्थानं स्थितिः । (स्थाटी प ३२१)

ठहरना स्थिति है ।

९३. णंदि (नन्दि)

नन्दनं नन्दिः । (स्थाटी प २११)

जो आनन्दित करता है, वह नन्दि/आनन्द है ।

९४. णमुक्कार (नमस्कार)

नमस्करणं नमस्कारः । (बृचू प १)

नमन करना नमस्कार है ।

९५. णय (नय)

नयनं नयः । (स्थाटी प ४)

जिससे/जिसमे ले जाया जाता है, वह नय है ।

९६. णिक्खम्म (निष्क्रम)

निष्क्रमणं निष्क्रमः । (स्थाटी प ४६७)

घर से निकलना निष्क्रम/प्रव्रज्या है ।

९७. णिक्खेव (निक्षेप)

णिक्खिवणं णिक्खेवो । (अनुद्वाचू पृ १६)

न्यास करना निक्षेप है ।

९८. णिग्गम (निर्गम)

निर्गमनं निर्गमः । (ओटी प १४)

बाहर निकलना निर्गम है ।

९९. णिग्गह (निग्रह)

निग्रहणं निग्रहः । (ओटी प ५)

निग्रहण करना निग्रह है ।

१००. णिज्जरा (निर्जरा)

निर्जरणं निर्जरा । (स्थाटी प १७)

कर्मों का निर्जरण/क्षय होना निर्जरा है ।

१०१. णिद्दा (निद्रा)

निद्राणं निद्रा ।[1] (प्रज्ञाटी प ४६७)

शयन करना निद्रा है ।

१०२. णिद्देस (निर्देश)

निर्देशनं निर्देशः । (स्थाटी प ४०६)

जो निर्दिष्ट होता है, वह निर्देश है ।

१०३. णियम (नियम)

नियमनं नियमः । (पटी प १४६)

जो नियन्त्रित/संयमित करता है, वह नियम है ।

१०४. णिरोह (निरोध)

निरुंभणं णिरोहो । (बृटी पृ २५)

रोकना निरोध है ।

१०५. णिवाय (निपात)

निपतनं निपातः । (आटी प २०६)

नीचे गिरना निपात है ।

---

१. द्रै—स्वप्ने ।

१०६. णिव्वेय (निर्वेद)

निर्वेदनं निर्वेदः । (उचू पृ ६७)

निर्विण्ण/विरक्त होना निर्वेद है ।

१०७. णिसट्ठ (निसृष्ट)

निसर्जनं निसृष्टम् । (स्थाटी प ३६)

निसर्जन/छोड़ना निसृष्ट है ।

१०८. णिसिज्जा (निषद्या)

निसीयणं निसिज्जा । (आचू पृ ३१७)

जहां बैठा जाता है, वह निषद्या/स्वाध्याय भूमि है ।

१०९. णिसेह (निषेध)

निषेधन निषेधः । (प्रसाटी प १६३)

निषेध करना निषेध है ।

११०. तक्क (तर्क)

तर्कणं तर्कः । (स्थाटी प १६)

कैसे ? क्यो ? इस रूप मे तर्कणा करना तर्क है ।

१११. तहक्कार (तथाकार)

तथाकरणं तथाकारः । (स्थाटी प ४७८)

आज्ञा के अनुरूप करना तथाकार है ।

११२. ताड (ताड)

तलणं ताडः । (सूचू २ पृ ३६०)

ताडित करना ताडन है ।

११३. तिगिच्छा (चिकित्सा)

चिकित्सन चिकित्सा । (प्रसाटी प १४७)

रोग का प्रतिकार करना चिकित्सा है ।

११४. थंभ (स्तम्भ)

थभणं थभो । (दअचू पृ २०६)

जो जड़ीभूत करता है, वह स्तम्भ/मान है ।

११५. दंड (दण्ड)

दण्डनं दंडः । (निचू १ पृ ७६)

जो दण्डित करता है, वह दंड/हिंसा है ।

११६. दिक्खा (दीक्षा)

दीक्षणं दीक्षा । (ओटी प ६)

व्रतों का स्वीकरण दीक्षा है ।

११७. देस (देश)

दिसणं देसो । (आचू पृ १६७)

जो दिष्ट/कथित होता है, वह देश/कथन है ।

११८. दोस (द्वेष)

द्वेषणं द्वेषः । (स्थाटी प २४)

द्विष्ट होना द्वेष है ।

११९. दोस (दोष)

दूषणं दोषः । (नंटी प ३३७)

जो दूषित करता है, वह दोष है ।

१२०. पइट्ठा (प्रतिष्ठा)

प्रतिष्ठापनं प्रतिष्ठा । (नंटी पृ ५१)

जो अर्थ बोध को प्रतिष्ठित करती है, वह प्रतिष्ठा/धारणा है ।

१२१. पइण्णा (प्रतिज्ञा)

प्रतिज्ञानं प्रतिज्ञा । (दटी प ७५)

संकल्पबद्ध होना प्रतिज्ञा है ।

१२२. पओग (प्रयोग)

प्रयोजनं प्रयोगः । (स्थाटी प १०१)

प्रयुक्त करना प्रयोग है ।

१२३. पक्खेवय (प्रक्षेपक)

प्रक्षेपणं प्रक्षेपकः । (बृटी पृ १८६)

जो फेंकता है, वह प्रक्षेपक है ।

१२४. पगइ (प्रकृति)

प्रकरणं प्रकृतिः । (प्राक १ टी पृ ४)

स्वभाव का निर्णय करना प्रकृति (बन्ध) है ।

१२५. पज्जय (पर्यय)

पज्जयणं पज्जयः । (नंचू पृ १३)

जो गतिशील है, वह पर्यय/पर्याय है ।

१२६. पडिबंध (प्रतिबन्ध)

पडिबंधणं पडिबंधो । (दअचू पृ २६८)

प्रतिबन्धनं प्रतिबन्धः । (बृटी पृ ५८३)

जो प्रतिबधित करता है/रोकता है, वह प्रतिबंध है ।

१२७. पडिमा (प्रतिमा)

पडिमाणं पडिमा । (निचू १ पृ १२५)

प्रतिमान/प्रतिकृति प्रतिमा है ।

१२८. पडिलेहणा (प्रतिलेखना)

प्रतिलेखनं प्रतिलेखना । (प्रसाटी प १३७)

प्रतिलेखन/प्रत्येक का निरीक्षण करना प्रतिलेखना है ।

१२९. पडिसेहणा (प्रतिषेधना)

प्रतिषेधनं प्रतिषेधना । (बृटी पृ २८५)

निषेध करना प्रतिषेधना/निवारणा है ।

१३०. पणाम (प्रणाम)

प्रणमनं प्रणामः । (उचू पृ २)

प्रकृष्ट रूप से नमन करना प्रणाम है ।

१३१. पणिहाण (प्रणिधान)

प्रणिहितिः प्रणिधानम् । (स्थाटी प ११५)

एक आलम्बन पर चित्त का स्थापन प्रणिधान/एकाग्रता है।

१३२. पण्णत्ति (प्रज्ञप्ति)

पण्णवण पण्णत्ती । (निचू १ पृ ३१)

प्रतिपादित करना प्रज्ञप्ति है।

१३३. पण्णा (प्रज्ञा)

प्रज्ञानं प्रज्ञा । (नंटी पृ ५८)

जो विशेष रूप से जानती है, वह प्रज्ञा है।

१३४. पत्थार (प्रस्तार)

पत्थरण पत्थारो । (निचू ३ पृ २०१)

विस्तृत करना प्रस्तार है।

१३५. पभव (प्रभव)

प्रभवनं प्रभवः । (पंटी प ३४१)

प्रादुर्भूत होना प्रभव/उत्पत्ति है।

१३१. पमाय (प्रमाद)

प्रमदनं प्रमादः । (स्थाटी प ३४६)

प्रमत्त होना प्रमाद है।

१३७. पयार (प्रचार)

प्रचरणं प्रचारः । (दटी प २२)

प्रचरण/अत्यन्त गतिशीलता प्रचार है।

१३८. परिग्गह (परिग्रह)

परिग्रहणं परिग्रहः । (स्थाटी प २४)

परिग्रहण/स्वीकार करना परिग्रह/मूर्च्छा है।

१३६. परिण्णा (परिज्ञा)

परिज्ञानं परिज्ञा । (स्थाटी प ३०६)

सब प्रकार से जानना परिज्ञा है।

१४०. परिभासा (परिभाषा)

परिभाषणं परिभाषा। (स्थाटी प ३८२)

किसी बात को नियमबद्ध कर कथन करना परिभाषा है।

संक्षेप मे समग्रता से कथन करना परिभाषा है।

१४१. परिहार (परिहार)

परिहरणं परिहारः। (पटी प २८६)

परिहरण/छोडना परिहार है।

१४२. पलिउंचणा (परिकुञ्चना)

परिकुंचणं परिकुंचना। (व्यभा १ टी प १५)

सर्वत. कुंचन/छिपाना परिकुंचना/माया है।

१४३. पलोयणा (प्रलोकना)

प्रलोकनं प्रलोकना। (ओटी प १३)

प्रकृष्ट रूप से देखना प्रलोकना है।

१४४. पसाय (प्रसाद)

प्रसीदनं प्रसादः। (उचू पृ ३५)

प्रसन्न होना प्रसाद/प्रसन्नता है।

१४५. पसूइ (प्रसूति)

प्रसवनं प्रसूतिः। (पंटी प ३४१)

प्रसव करना/जन्म देना प्रसूति/जन्म है।

१४६. पाय (पात)

पतनं पातः। (निचू १ पृ ११)

गिरना पात है।

१४७. पिंड (पिण्ड)

पिण्डनं पिण्डः। (प्रसाटी प १३७)

पिंडित/एकत्रित करना पिंड है।

२४८. पेक्खणा (प्रेक्षणा)

प्रेक्षणं प्रेक्षणा । (ओटी प १३)

प्रेक्षण/निरीक्षण करना प्रेक्षा है ।

२४९. बंध (बन्ध)

बंधणं बंधो । (दअचू पृ २५१)

जो बांधता है, वह बन्ध है ।

२५०. बोहि (बोधि)

बोहणं बोही । (आचू पृ १६)

बोध/जानना बोधि है ।

२५१. भव (भव)

भवनं भवः । (आवहाटी १ पृ १६)

जो विद्यमान रहता है, वह भव/संसार है ।

२५२. भव (भव)

भवनं भवः । (स्थाटी प २१३)

उत्पन्न होना भव/जन्म है ।

२५३ भासा (भाषा)

भाषणं भाषा । (बृटी पृ ६१)

जो बोली जाती है, वह भाषा है ।

२५४. भिक्खा (भिक्षा)

भिक्षणं भिक्षा । (दटी प १४)

भीख मांगना भिक्षा है ।

२५५. भोग (भोग)

भोजनं भोगः । (पंटी प ३६६)

जो भोगा जाता है, वह भोग है ।

१५६. मइ (मति)

मननं मतिः । (आटी प १२)

जो मनन करती है, वह मति है ।

१५७. मच्चु (मृत्यु)

मरणं मृत्युः । (उचू पृ २१८)

प्राणो का त्याग मृत्यु है ।

१५८. मण (मनस्)

मननं मनः । (सूचू २ पृ ३६८)

जो मनन मे प्रवृत्त होता है, वह मन है ।

१५६. मणोम (मनोम)

मनसो मतः मनोमः । (सूचू २ पृ ३२६)

जो मन को प्रिय/मान्य है, वह मनोम/मनोज्ञ है ।

१६०. मुंड (मुण्ड)

मुण्डनं मुण्डः । (स्थाटी प ३२२)

केशो तथा कषाय का मुण्डन/अपनयन करना मुंड है ।

१६१. मुच्छा (मूर्च्छा)

मूर्च्छनं मूर्च्छा । (जीटी प १६३)

मूर्च्छित/मूढ होना मूर्च्छा है ।

१६२. मोक्ख (मोक्ष)

मोचनं मोक्षः । (स्थाटी प १५)

मुक्त होना मोक्ष है ।

१६३. याग (याग)

यजनं यागः । (आटी प ४२)

जिसमे यजन/देवपूजा की जाती है, वह याग/यज्ञ है ।

१६४. रइ (रति)

रमणं रतिः । (प्रसाटी प १६३)

रमण/आनन्दानुभव रति है ।

१६५. राग (राग)

रंजणं रागो । (निभा २९६१)

जो रंजित/आसक्त करता है, वह राग है ।

१६६. रोहण (रोधक)

रोधनं रोधकः । (बृटी पृ २०२)

जो रुकावट डालता है, वह रोधक है ।

१६७. लाह (लाभ)

लम्भनं लाभः । (प्रसाटी प १९४)

जो प्राप्त होता है, वह लाभ है ।

१६८. ववहार (व्यवहार)

व्यवहरणं व्यवहारः । (नंटी पृ १७३)

जो व्यवहृत होता है, वह व्यवहार है ।

१६९. वाद (वाद)

वदनं वादः । (नंचू पृ ४७)

जिसका कथन किया जाता है, वह वाद है।

१७०. वास (वर्ष)

वर्षणं वर्षः । (बृटी पृ ४१५)

बरसना वर्ष/वृष्टि है ।

१७१. विउस्सग्ग (व्युत्सर्ग)

व्युत्सर्जनं व्युत्सर्गः । (पंटी प ४०७)

व्युत्सर्जन/छोड़ना व्युत्सर्ग है ।

१७२. विक्कय (विक्रय)

विक्रीणणं विक्कयो । (आचू पृ ७८)

बेचना विक्रय है ।

१७३. विणय (विनय)

विनयणं विणओ । (निचू १ पृ १८)

जो कर्मों का विनयन/नाश करता है, वह विनय है ।

१७४. विण्णत्ति (विज्ञप्ति)

विज्ञानं विज्ञप्तिः । (नटी पृ ४३)

विशिष्ट ज्ञान विज्ञप्ति है ।

१७५. विभत्ति (विभक्ति)

विभयणं विभत्ती । (नचू पृ ५८)

विभाग करना विभक्ति है ।

१७६. विभूसा (विभूषा)

विभूसण विभूसा । (दअचू पृ १५७)

सज्जित होना विभूषा है ।

१७७. विराग (विराग)

विरमणं विरागो । (आचू पृ १२०)

भोगों से विरत होना विराग है ।

१७८. विवेग (विवेक)

विवेजणं विवेगो । (आचू पृ १७६)

जो विवेचन/पृथक् करता है, वह विवेक है ।

१७९. विहार (विहार)

विहरणं विहारो । (नंचू पृ ५८)

जिसमें विहरण होता है, वह विहार है ।

१८०. वुड्ढि (वृद्धि)

वर्द्धनं वृद्धिः । (अनुद्वाचू पृ ९०)

जो बढ़ती है/विस्तृत होती है, वह वृद्धि/व्याख्या है ।

१८१. वेढ (वेष्ट)

वेष्टनं वेष्टः । (स्थाटी प २७६)

जो लपेटा जाता है, वह वेष्ट/पट्टा है ।

१८२. वेयणा (वेदना)

वेदनं वेदना । (स्थाटी प १७)

वेदन/अनुभव करना वेदना है ।

१८३. सइ (स्मृति)

स्मरणं स्मृतिः । (नंटि पृ १५२)

जिससे स्मरण किया जाता है, वह स्मृति है ।

१८४. संकंति (सङ्क्रान्ति)

संक्रमणं सङ्क्रान्तिः । (बटी प ४३)

संक्रमण/गमन करना संक्रान्ति है ।

१८५. संका (शङ्का)

संकणं संका । (निचू १ पृ १५)

संदेह करना शंका है ।

१८६. संखा (संख्या)

संख्यानं संख्या । (दटी प ७)

गिनना संख्या है ।

१८७. संग (सङ्ग)

संजनं सक्तिर्वा संगः । (सूत्र २ पृ ४२५)

आसक्त होना संग/आसक्ति है ।

१८८. संगह (संग्रह)

संग्रहणं संग्रहः । (स्थाटी प ४७४)

संचयन करना संग्रह है ।

१८९. संजम (संयम)

संजयणं संजमो । (आचू पृ ७७)

जो सम्यक् प्रकार से नियमन करता है, वह संयम है ।

१९०. संजोयणा (संयोजना)

संयोजनं संयोजना ।[1] (प्रसाटी प २१३)

संयुक्त करना संयोजना/आहार का एक दोष है।

१९१. संणिहि (सन्निधि)

सन्निधानं सन्निधिः । (उचू पृ १५६)

जो सम्यक् प्रकार से निहित/संचित होती है, वह सन्निधि/संग्रह है।

१९२. संति (शान्ति)

शमनं शान्तिः । (आटी प ७३)

शमन करना शान्ति है।

१९३. संधि (सन्धि)

सन्धानं सन्धिः । (सूचू १ पृ २४१)

जिसमे दो को एक किया जाता है, वह संधि है।

१९४. संवर (सवर)

संवरणं संवरः । (स्थाटी प ३०५)

सवरण/रुकावट करना सवर है।

१९५. संवास (सवास)

संवसनं संवासः । (स्थाटी प २६५)

साथ-साथ रहना संवास है।

१९६. संसार (संसार)

ससरणं संसारः । (आवहाटी १ पृ २१७)

जिसमे ससरण/गमन-आगमन किया जाता है, वह संसार है।

१९७. सण्णा (सज्ञा)

सज्ञानं सज्ञा । (आचू पृ ६)

सम्यक् प्रकार से जानना संज्ञा है।

---

१. उत्कर्षतोत्पादनार्थं द्रव्यस्य द्रव्यान्तरेण मीलनं संयोजना । (प्रसाटी प २१३)

१९८. सण्णा (संज्ञा)

संज्ञानं संज्ञा। (स्थाटी प २६७)

जानना/अभिलाषा करना संज्ञा/चैतन्य/जीव का परिणाम-विशेष है।

१९९. सन्निवाय (सन्निपात)

सन्निपतनं सन्निपातः। (प्रसाटी प ३७१)

अनेक वस्तुओं का मिलन सन्निपात है।

२००. समवाय (समवाय)

समवायणं समवायः। (सूचू २ पृ ३१६)

संयुक्त करना समवाय है।

२०१. समायार (समाचार)

समाचरणं समाचारः। (आटी प ६३)

जिसका समाचरण/व्यवहरण किया जाता है, वह समाचार/समाचारी है।

२०२. समास (समास)

समसन समासः। (ओटी प ५)

विभिन्न पदों को संयुक्त करना समास है।

२०३. समाहि (समाधि)

समाहाणं समाही। (आचू पृ ३५७)

चित्त का समाधान/सम्यक् स्थापन समाधि है।

२०४. सवण (श्रवण)

श्रवणं श्रुतम्। (प्राक १ टी पृ १०)

सुनना श्रुत है।

२०५. सवण्ण (सवर्ण)

सवर्णनं सवर्णः। (स्थाटी प ४७५)

सदृश होना सवर्ण है।

२०६. साय (स्वाद)

स्वादनं स्वादः । (स्थाटी प १०३)

जिसका आस्वाद लिया जाता है, वह स्वाद है ।

२०७. हास (हास्य)

हसणं हासो । (आचू पृ १२३)

हंसना हास्य है ।

२०८. हिंसा (हिंसा)

हिंसनं हिंसा । (सूटी २ प ४५)

हनन करना हिंसा है ।

परिशिष्ट २

(तीर्थंकर-अभिधान निरुक्त)

तीर्थंकर स्वतंत्र धर्म-परम्परा के प्रवर्तक होते हैं, फिर भी उनकी भाषा मे धर्म का मौलिक रूप एक होता है। इस कालचक्र में ऋषभ पहले तीर्थंकर और महावीर चौबीसवें तीर्थंकर हुए हैं। तीर्थंकरों के नामकरण का भी एक इतिहास है, जिसे निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु ने मूलरूप मे सुरक्षित रखा है। उनके अन्वर्थ नामो के निरुक्त इस परिशिष्ट मे उपलब्ध हैं। चूर्णिकार और टीकाकारो ने इस अन्वर्थ नाम निरुक्तो की श्रृंखला को और अधिक विकसित रूप मे प्रस्तुत किया है। प्रथम कोटि मे उन निरुक्तों को रखा गया है जो नामकरण की मौलिकता एवं विशिष्टता के संवाहक हैं। दूसरी श्रेणी मे वे निरुक्त हैं, जो सामान्य रूप से सभी तीर्थंकरों के लिए व्यवहृत हो सकते हैं।

> इहार्हतां नामानि अन्वर्थमधिकृत्य सामान्यलक्षणतो विशेषलक्षणतश्च वाच्यानि। (आवहाटी २ पृ ८)
>
> एते सामण्णं, विसेसो ·····। (आवचू २ पृ ६)

विशेष बात यह है कि प्रायः ये सभी नाम मातृइच्छा से प्रभावित हैं।

१. उसभ (वृषभ/ऋषभ)

ऊरूसु उसभलंछणं उसभं सुमिणंमि तेण उसभ जिणो ।[1]

(आवनि १०८०)

दोनों ऊरुओं/जंघाओं पर वृषभ का चिह्न होने के कारण वे (प्रथम तीर्थंकर) वृषभ/ऋषभ कहलाए ।

माता मरुदेवी ने सर्वप्रथम (चौदह स्वप्नों में) वृषभ/बैल का स्वप्न देखा, इसलिए उनका नामकरण वृषभ/ऋषभ हुआ ।

वृष्—उद्वहने, उव्वूढं तेन भगवता जगत्संसारमग्गं अतुलं णाणदंसण-चरित्तं वा तेन ऋषभ इति । (आवचू २ पृ ६)

समग्रसंयमभारोद्वहनाद् वृषभः । (आवहाटी २ पृ ८)

जो संसार का उद्वहन/उद्धार करता है, वह वृषभ है ।

जो अतुल ज्ञान, दर्शन और चारित्र को धारण करता है, वह वृषभ है ।

२. अजिअ (अजित)

अक्खेसु जेण अजिआ जणणी अजिओ जिणो तम्हा ।

(आवनि १०८०)

जब वे गर्भ मे आए, तब उनकी माता विजया द्यूतक्रीडा में विजित हुई, इसलिए उनका नाम अजित रखा गया ।

अजितो परीसहोवसग्गेहिं । (आवचू २ पृ ६)

परीषहोपसर्गादिभिर्न जितोऽजितः । (आवहाटी २ पृ ८)

जो परीषह और उपसर्गों से अजेय है, वह अजित है ।

३. संभव (सम्भव)

अभिसंभूआ सासत्ति संभवो तेण वुच्चई भयवं । (आवनि १०८१)

जब वे (तृतीय तीर्थंकर) गर्भ मे थे, तब उनके प्रभाव से अत्यधिक शस्य/धान्य संभूत/उत्पन्न हुआ, अतः उनका नाम संभव रखा गया ।

---

१. उसभोत्ति वा वसभोत्ति वा एगट्ठं । (आवहाटी २ पृ ८)

संभवन्ति प्रकर्षेण भवन्ति चतुस्त्रिंशदतिशयगुणा अस्मिन्निति सम्भवः । (आवहाटी २ पृ ८)

जिसमें चौंतीस अतिशय सम्भव/प्रकृष्टरूप में विद्यमान हैं, वह संभव है ।

४. अभिणंदण (अभिनन्दन)

अभिणंदई अभिक्खं सक्को अभिणंदणो तेण । (आवनि १०८१)

गर्भकाल से लेकर निरन्तर शक्र ने जिनका अभिनंदन किया, वे (चतुर्थ तीर्थंकर) अभिनंदन की अभिधा से अभिहित हुए ।

अभिनन्द्यते देवेन्द्रादिभिरित्यभिनन्दनः । (आवहाटी २ पृ ८)

जो देवेन्द्र आदि द्वारा अभिनंदित है, वह अभिनंदन है ।

५. सुमइ (सुमति)

जणणी सव्वत्थ विणिच्छएसु सुमइत्ति तेण सुमइजिणो ।
(आवनि १९२)

जब वे (पंचम तीर्थंकर) गर्भ में थे, उस समय माता मंगला ने प्रत्येक व्यवहार मे सुमति/प्रभूत बुद्धिमत्ता का परिचय दिया (दो माताओं के षाण्मासिक कलह का कुशलता से उपशमन किया) । इस कारण से उनका नाम सुमति रखा गया ।

शोभना मतिरस्येति सुमतिः । (आवचू २ पृ १०)

जिसकी मति श्रेष्ठ है, वह सुमति है ।

६. पउम (पद्म)

पउमसयणंमि जणणीइ डोहलो तेण पउमाभो । (आवनि १०८२)

गर्भवती माता सुसीमा को पद्मशय्या में शयन करने का दोहद उत्पन्न हुआ, इसीलिए उन (छट्ठे तीर्थंकर) का नाम पद्म रखा गया ।

पउमवण्णो य भगवं तेण पउमप्पहोत्ति ।[1] (आवहाटी २ पृ ९)

---

१. इह निष्पङ्कतामङ्गीकृत्य पद्मस्येव प्रभा यस्यासौ पद्मप्रभः ।
(आवहाटी २ पृ ९)

जिसका वर्ण पद्म के समान पीत/स्वर्णाभ है और जो पद्म की भांति निर्लिप्त है, वह पद्म है।

पउमगब्भ सुकुमाला। (आवचू २ पृ १०)

जो पद्मगर्भ की भांति सुकुमार है, वह पद्म है।

७. सुपास (सुपार्श्व)

गब्भगए जं जणणी जाय सुपासा तओ सुपासजिणो।[1]

(आवनि १०८३)

जब वे (सप्तम तीर्थंकर) गर्भस्थ हुए, तब माता पृथ्वी के पार्श्वभाग सु/सम/सुन्दर हो गये (वे पहले विषम/असुन्दर थे), अत उन्हे सुपार्श्व कहा गया।

शोभनानि पार्श्वान्यस्येति सुपार्श्वः। (आवहाटी २ पृ ९)

जिसके पार्श्वभाग श्रेष्ठ हैं, वह सुपार्श्व है।

८. चंदप्पह (चन्द्रप्रभ)

जणणीए चंदपियणंमि डोहलो तेण चंदाभो। (आवनि १०८३)

माता लक्ष्मणा को चंद्रपान का दोहद उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसने अपने पुत्र को 'चन्द्रप्रभ' कहकर पुकारा।

चाद जैसी प्रभा/आभा के कारण वे चन्द्रप्रभ कहलाये।

चन्द्रस्येव प्रभा—ज्योत्स्ना सौम्याऽस्येति चन्द्रप्रभः।

(आवहाटी २ पृ ६)

जिसकी प्रभा/आभामण्डल चाद की भाति सौम्य है, वह चन्द्रप्रभ है।

९. सुविहि (सुविधि)

सव्वविहीसु अ कुसला गब्भगए तेण होइ सुविहि जिणो।

(आवनि १०८४)

नौवें तीर्थंकर के गर्भ मे आते ही जननी रामा ने सब विधि-विधानो मे अत्यधिक कुशलता अर्जित की, इसलिए उनका नामकरण सुविधि हुआ।

---

१. सव्वेसिं सोभणा पासा तित्थकर मातूणं च, विसेसो माताए गुब्बिणीए सोभणा पासा जातत्ति, पढमं विकुब्बिया आसी। (आवचू २ पृ १०)

शोभनो विधिरस्येति सुविधिः । (आवहाटी २ पृ ६)

जो सब विधियों/नीतियों में कुशल है, वह सुविधि है ।

१०. सीयल (शीतल)

पिउणो दाहोवसमो गब्भगए सीयलो तेणं । (आवनि १०८४)

(दसवे तीर्थंकर के) पिता दृढ़रथ की पित्तदाहजन्य पीड़ा औषधि से शात नही हुई, पर गर्भवती माता नन्दा के स्पर्शमात्र से पित्तदाह का शमन हो गया, अतः शिशु का नाम शीतल रखा गया ।

सकलसत्त्वसन्तापकरणविरहादाह्लादजनकत्वाच्च शीतल इति, तस्य सव्वेऽवि अरिस्स मित्तस्स वा उवरिं सीयलघरसमाणा ।

(आवहाटी २ पृ ६)

जो सब प्राणियो का सताप दूर कर आह्लाद उत्पन्न करता है, सबके लिए शीतगृह की भाति सुखकर है, वह शीतल है ।

११. सेज्जंस (श्रेयास)

महरिहसिज्जारुहणंमि डोहलो तेण सिज्जंसो । (आवनि १०८५)

माता विष्णुदेवी को देवतापरिगृहीत शय्या पर बैठने का दोहद उत्पन्न हुआ । वह उस शय्या पर बैठी पर गर्भ के प्रभाव से देवता उसका कुछ भी अश्रेय/अहित नही कर सके, इसलिए उनका श्रेयास अभिधान हुआ ।

श्रेयान्—समस्तभुवनस्यैव हितकरः ····श्रेयांसः ।

(आवहाटी २ पृ ६)

जो तीनो लोकों का श्रेय/कल्याण करता है, वह श्रेयास है ।

१२. वसुपुज्ज (वासुपूज्य)

पूएइ वासवो जं अभिक्खणं तेण वसुपुज्जो । (आवनि १०८५)

बारहवें तीर्थंकर जब माता जया की कुक्षि में अवतरित हुए, तब वासव/इन्द्र ने पुन· पुन· जननी की पूजा की, इसलिए उनका नामकरण 'वासुपूज्य' हुआ ।

वसूणि—रयणाणि, वासवो—वेसमणो सो वा अभिगच्छति ।

(आवचू २ पृ १०)

उन के गर्भस्थ होने पर वासव/वैश्रमण ने पुनः पुनः राज-कोश को वसु/रत्नों से भरा, अतः उनका नाम वासुपूज्य रखा गया।

वसूनां पूज्यो वसुपूज्यः, वसवो—देवाः। (आवहाटी २ पृ ६)

जो वसु/देवो का पूज्य है, वह वासुपूज्य है।

१३ विमल (विमल)

विमलतणुबुद्धि जणणी गब्भगए तेण होइ विमलजिणो।

(आवनि १०८६)

जिनके गर्भ मे आने पर माता श्यामा की बुद्धि और शरीर अत्यत विमल/निर्मल हो गये, वे 'विमल' नाम से अभिहित हुए।

विगतमलो विमलः, विमलानि वा ज्ञानादीनि यस्य स विमलः।

(आवहाटी २ पृ १०)

जिसके ज्ञान आदि विमल/निर्मल हैं, वह विमल है।

१४. अणंत (अनन्त)

रयणविचित्तमणंतं दामं सुमिणे तओऽणंतो। (आवनि १०८६)

माता सुयशा ने स्वप्न मे रत्नखचित अनत/विशाल माला देखी, अत. पुत्र का नाम रखा अनंत।

अनन्तकर्मांशजयादनन्तः, अनन्तानि वा ज्ञानादीन्यस्येति अनन्तः।

(आवहाटी २ पृ १०)

जो अनन्त कर्मांशो को जीतता है, उनका क्षय करता है, वह अनन्त है।

जो अनन्त चतुष्टयी से सपन्न है, वह अनत है।

१५. धम्म (धर्म)

गब्भगए जं जणणी जाय सुधम्मत्ति तेण धम्मजिणो।

(आवनि १०८७)

अम्मापितरो सावगधम्मे भुज्जो भुज्जो बलंति, उववण्णे दढव्वताणि।

(आवचू २ पृ ११)

जब वे गर्भ में आये, तब माता सुव्रता और पिता भानु श्रावक धर्म मे विशेष रूप से उपस्थित हुए, इसलिए उनका नाम रखा—धर्मजिन।

दुर्गतौ प्रपतन्तं सत्त्वसङ्घातं धारयतीति धर्मः।

(आवहाटी २ पृ १०)

जो दुर्गति में गिरते हुए प्राणियों को धारण करता है, वह धर्म है।

१६. संति (शान्ति)

जाओ असिवोवसमो गब्भगए तेण संति जिणो। (आवनि १०८७)

जिनके गर्भ में आने पर सर्वत्र व्याप्त अशिव/महामारी का प्रकोप शांत हो गया, उनका अभिधान हुआ—शांतिजिन (सोलहवें तीर्थंकर)।

शान्तियोगात् तदात्मकत्वात् तत्कर्तृत्वाद् वा शान्तिः।

(आवहटी २ पृ १०)

जो शांति/सुख प्रदान करता है, वह शांति है।

१७. कुथु (कुन्थु)

थूहं रयणविचित्तं कुथु सुमिणंमि तेण कुथु जिणो।[1]

(आवनि १०८८)

गर्भवती माता श्री देवी ने स्वप्न में कु/भूमि पर स्थित थु/रत्नों का विशाल स्तूप देखा, इसलिए बालक का नामकरण हुआ 'कुंथु' (१७ वें तीर्थंकर)

कुः पृथ्वी तस्यां स्थितवानिति कुस्थः। (आवहाटी २ पृ १०)

जो कु/पृथ्वी पर स्थित है, वह कुस्थ/कुंथु है।

१८. अर (अर)

सुमिणे अरं महरिहं पासइ जणणी अरो तम्हा।

(आवनि १०८८)

---

१. माताए थूमो सब्वरतणामतो सुविणे दिट्ठो भूमित्थो तेण कुथू। (आवचू २ पृ ११)

माता देवी ने स्वप्न मे अतिसुंदर, अतिविशाल रत्नमय अर/चक्र देखा, अतः शिशु का नाम रखा 'अर' (१८ वें तीर्थंकर)।

सर्वोत्तमे महासत्त्व कुले य उपजायते ।
तस्याभिवृद्धये वृद्धैरसावर उदाहृतः ॥ (आवहाटी २ पृ १०)

जो सर्वोत्तम और महान् शक्तिशाली कुल मे उत्पन्न हो वृद्धि करता है, वह अर है।

१९. मल्लि (मल्लि)

वरसुरहिमल्लसयणम्मि डोहलो तेण होइ मल्लिजिणो ।
(आवनि १०८९)

माता प्रभावती को सदा सुरभित पुष्पमाला की शय्या का दोहद उत्पन्न हुआ, इसलिए अपनी पुत्री का नामकरण किया—मल्लि (१९ वें तीर्थंकर)।

सव्वेहिंपि परीसहमल्लरागदोसा य णिहयत्ति ।
(आवहाटी २ पृ १०)

जो परीसह तथा राग-द्वेष आदि मल्लो को जीतता है, वह मल्लि है।

२०. मुणिसुव्वय (मुनिसुव्रत)

जाया जणणी जं सुव्वयत्ति मुणिसुव्वओ तम्हा । (आवनि १०८९)

जिनके गर्भ मे आने पर माता-पिता (पद्मा, सुमित्र) सुव्रती बने, उनका नाम रखा गया मुनि सुव्रत, (२०वें तीर्थंकर)।

मन्यते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिः, तथा शोभनानि व्रतान्यस्येति सुव्रतः, मुनिश्चासौ सुव्रतश्चेति मुनि सुव्रतः ।

सव्वे सुमुणियसब्भावा सुव्वया यत्ति । (आवहाटी २ पृ १०)

जो त्रैकालिक अवस्थाओ को जानता है और सुंदर व्रतों से परिपूर्ण है, वह मुनि सुव्रत है।

२१ णमि (नमि)

पणया पच्चंतनिवा दंसियमित्ते जिणंमि तेण नमी ।

(आवनि १०९०)

(शत्रु राजाओ ने नगर को घेर रखा था ।) ज्योंही राजाओं ने अट्टालिका पर खड़ी गर्भवती रानी 'वप्रा' को देखा, गर्भ के प्रभाव से वे सभी राजे तत्काल प्रणत हो गये, अतः शिशु का नामकरण हुआ—नमि (२१ वें तीर्थंकर) ।

परीषहोपसर्गादिनमनान्नमिः ।
सव्वेहिंवि परीसहोवसग्गा णामिया कसाय त्ति ।

(आवहाटी २ पृ ११)

जो परीषह, कषाय आदि को नमित/नष्ट करता है, वह नमि है ।

२२. रिट्ठनेमि (अरिष्टनेमि)

रिट्ठरयणं च नेमिं उप्पयमाणं तओ नेमी । (आवनि १०९०)

गर्भवती माता शिवा ने स्वप्न मे अत्यन्त विशाल अरिष्ट-रत्नमय नेमि/चक्र को ऊपर उठते हुए देखा, अतः बालक का नाम रखा—अरिष्टनेमि (२२ वें तीर्थंकर) ।

धर्मचक्रस्य नेमिवन्नेमिः । सव्वेवि धम्मचक्कस्स णेमीभूयत्ति ।

(आवहाटी २ पृ ११)

जो धर्मचक्र के नेमिभूत/धुरा के समान है, वह नेमि है ।

२३. पास (पश्यक/पार्श्व)

सप्पं सयणे जणणी तं पासइ तमसि तेण पासजिणो ।

(आवनि १०९१)

माता वामा ने अपनी शय्या पर लेटे-लेटे (गर्भ के प्रभाव से) अंधेरे मे भी सर्प को देख लिया, इसलिए अपने पुत्र को 'पार्श्व' नाम से संबोधित किया । (पास-पश्य-दृश्) ।

पश्यति सर्वभावानिति पार्श्वः, पश्यक इति चान्ये ।
सव्वेऽवि भावाणं जाणगा पासगा यत्ति पासा ।

(आवहाटी २ पृ ११)

जो सब भावों की पश्यना/परिज्ञान करता है, वह पार्श्व है ।

२४. वद्धमाण (वर्द्धमान)

वड्ढइ णायकुलंति अ तेण वद्धमाणुत्ति । (आवनि १०९१)

भगवान् जब त्रिशला के गर्भ में आये, तब ज्ञातकुल में धनसंपदा की अतिशय वृद्धि हुई, अतः उनका नाम वर्धमान/महावीर रखा गया । (२४ वें तीर्थंकर) ।

उत्पत्तेरारभ्य ज्ञानादिभिर्वर्धत इति वर्धमानः । तस्य सव्वेवि णाणादिगुणेहिं वड्ढइत्ति । (आवहाटी २ पृ ११)

जन्म से लेकर जिसके ज्ञान आदि बढ़ते रहते हैं, वह वर्धमान है ।

शुद्धाशुद्धि पत्र

पृष्ठ	निरुक्त-संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
१२	६१	सत्र	सूत्र
१४	६६	ऊत्तर	उत्तर
३५	१६०	जाना आता	जानता
४७	२५४	सम्यकत्व	सम्यक्त्व
४८	२५६	आश्वासयीति	आश्वासयतीति
५७	३०८	उर्घ्वं	ऊर्घ्वं
५७	३०८	एह	वह
५७	३०८	अघिक	अधिक
६२	३२८	तस्मिन्नति	तस्मिन्निति
८५	४४२	(केय)	(केत)
८८	४६१	(खादिम)	(खाद्य)
९१	४७३	गर्जति·	गर्जति
९३	४८४	गगनम	गगनम्
१००	५१६	बशात्	वशात्
११०	५७०	मोक्षायेतिस्य	मोक्षायेति
११८	६०७	भवन्त्यास्याम्	भवन्त्यस्याम्
१२६	६६५	लोषान्	लोपान्
१२६	६६५	निर्युक्त	निर्युक्ति
१५३	७९७	दिठ्ठिवातो	दिट्ठिवातो
१५६	८०७	दीपिक्क	दीपित
१६३	८५०	(धनुष)	(धनुष्)
१७७	९१८	(···आदी)	(···आदि)
१७८	९३०	पडोयर	पडोयार
१७८	९३१	गिराता	गिराते
१८४	९६७	प्रचलान	प्रचला

१८५	६७१	वहू	वहू
१८६	६८४	(…थंयत)	(…संयत)
१६४	१०२४	थिह्लव	निह्लव
२००	१०६०	(पावक)	(पापक)
२०७	१०६५	पुरि…पृ २०७	पुरि…पृ २०६
२०७	१०६८	प्राप्यत	प्राप्यते
२१५	११४२	।[१]	।[२]
२१६	११४५	वाचनार्चा	वाचनाचार्य
२१६	११५०	११५१	११५०
२२०	११६६	भास्वरा	भास्वरा
२३२	१२३३	(अचू…)	(आचू…)
२४०	१२६८	धली	धूली
२४३	१२८५	राचक (सम्यकत्व)	रोचक (सम्यक्त्व)
२४५	१२६७	लिङ्गं	लिङ्गं
२४८	१३१२	वको	वंको
२७२	१४४५	त्यजते	त्यज्यते
२७६	१४६४	बेदनायम्	वेदनीयम्
२७६	१४६५	सा	सो
२७७	१४७१	वयालिग	वेयालिग